पण्डितप्रवर श्रीआशाधर विरचित

प्रतिष्ठासारोद्धार

संक्षिप्त हिंदी भाषाटीकासहित ।

जिसको

पाढमनिवासी पं० मनोहरलाल शास्त्रीने तैयारकर

श्रीजैनग्रंथ-उद्धारक कार्यालय द्वारा

प्रकाशित किया ।

प्रथमवार १००० प्रति ।

वि० संवत् १९७४.

न्योंछावर गत्ते-सहित १॥) रु०
कपडेकी जिल्द २) रु०

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay

AND

Published by Pandit Manoharlal Shastri, Malik, Jain Grantha Uddharak Karyalaya, Khattar Lane, Houdwadi, Bombay, No 4

ॐ नमः परमेष्ठिभ्यः

प्रस्तावना।

प्रिय पाठकगण! अब मैं श्री जिनेंद्रदेवकी कृपासे उस अपूर्व ग्रंथ **प्रतिष्ठासारोद्धार**को भाषाटीकासहित बनाके आपके सामने उपस्थित करता हू कि जिसकेलिये आप सब साधर्मीगण उत्कंठित होरहे थे। गृहस्थ श्रावकोंका देवपूजा करना नित्य कर्मोंमेंसे पहला कर्तव्य कहा है, उसकेलिये जिनदेवकी प्रतिमा तथा मंदिरकी स्थापना होना बहुत आवश्यक है। उसी स्थापनाकी पंचकल्याणक आदि विधियां इस महान ग्रंथमें स्पष्ट रीतिसे वर्णनकी गई हैं। इसका फल ग्रंथकारने स्वयं दिखलाया है कि पहले महाराज भरतचक्रवर्ती आदि महान पुरुष भी इसी जिन प्रतिष्ठाके करनेसे निराकुल मोक्षसुखको प्राप्त हुए हैं। परंतु कालकी कुटिलगतिसे आजकल बहुत कुछ विपरीतपना फैल गया है। पहले तो प्रतिष्ठाकरानेवाले धनिक यजमानोंको यही खबर नहीं कि प्रतिष्ठाकरानेका क्या फल है तथा हमको

प्रतिष्ठाचार्यके साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये। दूसरी वात यह है कि प्रतिष्ठाचार्यको भी अत्यत लोभके वशीभूत होकर इसवातका ध्यान नहीं रहता कि मैं यजमानके साथ अयोग्य वर्ताव तो नहीं करता। वस यजमान और प्रतिष्ठाचार्य इन दोनोंके अयोग्य वर्ताव होनेसे प्रतिष्ठाके समय अनेक विघ्न आकर उपस्थित होजाते हैं तव प्रतिष्ठाका फल निष्फल होजाता है॥ यही विचारकर मेरा मन सक्षिप्त भाषाटीका सहित इस **प्रतिष्ठापाठ**को प्रकाशित करनेका हुआ है। जिससे सब साधारण भव्यजीवोंको यह वात मालूम होजावे कि प्रतिष्ठा करानेमें किन २ चीजोंकी आवश्यकता है और यजमान तथा प्रतिष्ठाचार्यको कैसा वर्ताव रखना चाहिये ॥

यह महान् ग्रंथ पडितप्रवर श्री आशाधर गृहस्थाचार्यका वनाया हुआ है। इन्होने श्री **वसुनंदि** आचार्यकृत **प्रतिष्ठासार सग्रह**के विषयका उद्धार करनेके लिये विस्तारसहित पूर्वोक्त प्रतिष्ठासारोद्धार नामका ग्रथ रचकर भव्यजीवोंका उपकार किया है। इन्हीं विद्वद्वरने धर्मामृत आदि अनेक अपूर्व ग्रथोंकी रचना की है, उसका उल्लेख प्रशस्तिमें किया गया है। और जीवनचरित्र भी संक्षेपमें प्रशस्तिमें है तथा सागार धर्मामृतमें मुद्रित हो चुका है इसलिये यहां लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। इस ग्रथकी भाषाटीका अवतक देखनेमें नहीं आई और न मैंने अवतक कोई प्रतिष्ठा करानेका काम ही किया। उसमें भी प्रतिष्ठाकी क्रिया करानेवालोंको लोभकपायके वश चित्तमलिनता होनेके कारण विधि वतलानेमें सहायता देना असमव समझ उनके पास भी जाना व्यर्थ समझा। इसलिये मूल सस्कृतपरसे ही शुद्धिके अनुसार भाषाटीका सक्षेपसे लिखी गई है।

इस ग्रथकी एक हस्तलिखित प्रति तो पूर्ण मिली तथा दूसरी अधूरी मिली। ये दोनों प्रतियां लेखकोंकी कृपासे प्राय अशुद्ध मिलीं, इसलिये अर्थकरनेमें वहुत कठिनाई हुई। अस्तु। ‘न कुछसे कुछ होना अच्छा’ इस कहावतको लेकर यह उद्यम किया गया है।

इस ग्रंथके साथ प्रतिष्ठासारसंग्रहका भी कुछ भाग लगादिया है । तथा समयके अनुकूल विषयसूची, मंत्रसाधनके समय आवश्यक चीजोंका नकशा, और मंत्रव्याकरणके कुछ नियमोंको बतलानेवाले श्लोक भी लगादिये गये हैं कि जिससे कर्णपिशाचिनी आदि विद्याके साधनेमें सफलता हो । मंत्र सिद्ध करनेकी विस्तारसे विधि **मंत्रसंग्रह** में बहुत अच्छी तरहसे बतलाई जावेगी ।

इस ग्रंथके उद्धारमें श्रीमान् सेठ **भेरूदानजी** लाडनू निवासीने जो पचास रुपये भेजकर सहायता की है, इस अपूर्व उपकारके हम बहुत आभारी होके कोटिश धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि इस तरहकी आर्थिक सहायता देकर अन्य सज्जन भी जिनवाणीका प्रचारकर पुण्यउपार्जन करेंगे । अंत में यह प्रार्थना है यदि हमारे पाठकोंको इस ग्रंथसे संतोष हुआ और सहायता मिली तो **अष्टांग-निमित्तसंग्रह** तथा **मंत्रसंग्रह** आदि अपूर्व ग्रंथ भाषा-टीका सहित प्रकाशित करके उपस्थित करूंगा । शुद्ध प्रति न मिलनेसे कहीं अशुद्धियां रह गई हों तो पाठक महाशय मुझपर क्षमा करें । जब शुद्ध प्रति मिलजावेगी तब शुद्धिपाठ छपाकर भेजदिया जावेगा । इसतरह प्रार्थना करता हुआ इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूं । अलं विज्ञेषु ।

खत्तरगली हौदावाडी
पो. गिरगाव—बंबई
जेठ वदि १२ वीर सं० २४४३

जैनसमाजका सेवक
मनोहरलाल
पाढम (मैनपुरी) निवासी

मंत्रसाधनके समय आवश्यक नियम ।

शांतिकर्म १	पौष्टिककर्म २	वश्यकर्म ३	आकर्षणकर्म ४
वरुणदिशा	नैऋत्यदिशा	कुबेरदिशा	यमादिक्
अर्धरात्रि	प्रभातकाल	पूर्वाह्नकाल	पूर्वाह्नकाल
ज्ञानमुद्रा	ज्ञानमुद्रा	सरोजमुद्रा	अंकुशमुद्रा
पंकजासन	स्वस्तिकासन	पंकजासन	कुंडासन
(नमः) स्वाहा पल्लव	स्वधा पल्लव	वषट् पल्लव	वौषट् पल्लव
श्वेतवस्त्र	श्वेतवस्त्र	रक्त वस्त्र	उदयार्कवस्त्र
श्वेतपुष्प	श्वेतपुष्प	अरुण पुष्प	अरुणपुष्प
श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण	रक्तवर्ण	उदयार्कवर्ण
पूरकयोग	पूरकयोग	पूरकयोग	पूरकयोग
दीपनआदि नाम	दीपनआदि	संपुट आदि	ग्रंथनवरुण
स्फटिकमणि माला	मुक्ताफल माला	प्रवालमणि	प्रवालमणि
मध्यमांगुलि	मध्यमांगुलि	अनामिका	कनिष्ठिका
दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	वामहस्त	वामहस्त
वामवायु	वामवायु	वामवायु	वामवायु
जलमंडल	जलमंडल	अग्निमंडल	अग्निमंडल

स्तंभनकर्म ५	मारणकर्म ६	विद्वेषणकर्म ७	उच्चाटनकर्म ८
पूर्वाभिमुख	ईशानदिशा	अग्निदिक्	वायव्यदिशा
पूर्वाह्णकाल	संध्याकाल	मध्याह्नकाल	अपराह्णकाल
शंखमुद्रा	वज्रमुद्रा	प्रवालमुद्रा	प्रवालमुद्रा
वज्रासन	भद्रासन	कुर्कुटासन	कुर्कुटासन
ठ ठ पल्लव	घे घे पल्लव	हूं पल्लव	फट् पल्लव
पीतवस्त्र	कृष्णवस्त्र	धूम्रवस्त्र	धूम्रवस्त्र
पीतपुष्प	कृष्णपुष्प	धूम्रपुष्प	धूम्रपुष्प
पीतवर्ण	कृष्णवर्ण	धूम्रवर्ण	धूम्रवर्ण
कुंभकयोग	रेचकयोग	रेचकयोग	रेचकयोग
विदर्भमध्य	रोधनआदि	पल्लवांतिनाम	पल्लवांतिनाम
स्वर्णमणि	पुत्रजीवीमणि	पुत्रजीवीमणि	पुत्रजीवीमणि
कनिष्ठिका	तर्जनी	तर्जनी	तर्जनी
दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त	दक्षिणहस्त
दक्षिणवायु	दक्षिणवायु	दक्षिणवायु	दक्षिणवायु
पृथ्वीमंडल	वायुमंडल	वायुमंडल	वायुमंडल

साकल्येनैकदेशेन कर्मारातिजितो जिनाः । पंचार्हदादयोऽत्रेष्टाः श्रुतं चान्यच्च तादृशम् ॥२॥
जिनानां यजनं यज्ञस्तस्य कल्पः क्रियाक्रमः । तद्वाचकत्वाच्च जिन-यज्ञकल्पोऽयमुच्यते ॥३॥
तत्र विश्वोपकारार्थजन्मनां यज्ञमर्हताम् । प्रागाहुस्तस्य भेदाः स्युः पंच नित्यमहादयः ॥४॥
तेषु नित्यमहो नाम स नित्यं यज्जिनोर्च्यते । नीतैश्चैत्यालयं स्वीयगेहाद्गंधाक्षतादिभिः ॥५॥
अतो नित्यमहोद्युक्तैर्निर्माप्यं सुकृतार्थिभिः । जिनचैत्यगृहं जीर्णमुद्धार्यं च विशेषतः ॥६॥

ल्पका विस्तारसे व्याख्यान करता हू ॥१॥ समस्त अथवा थोडेसे कर्मरूपी वैरियोंको जिसने जीत लिया हे वह जिन कहलाता है इसलिये यहापर अर्हंत सिद्धादि पाच परमेष्टी तथा उनका कहा हुआ द्वादशांग शास्त्र–जिन जानना चाहिए । उन जिन शब्द वाच्य अर्हतादिकका जो पूजन उसे जिनयज्ञ कहते हैं उसकी क्रियाओंके क्रमको कल्प कहते हैं इसलिये जिन-पूजाकी क्रियाओंके क्रमको जो कहे उसीको 'जिनयज्ञकल्प' इस नामसे कहते हैं। यह जिनयज्ञकल्पका अक्षरार्थ हुआ ॥ २ । ३ ॥ उनमें सबसे पहले अर्हंतकी पूजाका क्रम कहा जाता हे क्योंकि मुख्यतासे उन तीर्थंकर अर्हंतका ही जन्म जगतजीवोंके उपकारके लिए होता है । उस पूजाके नित्यमह चतुर्मुख रथावर्त कल्पवृक्ष इंद्रध्वज–ये पाच भेद आचार्योंने कहे हैं ॥ ४ ॥ उन पाचोंमेंसे नित्यमह नामकी पूजा वह है कि जो अपने घरसे चंदन अक्षतादि अष्टद्रव्यको चैत्यालय (जिनमंदिर) में लेजाकर उससे जिनेन्द्रका पूजन किया जावे ॥ ५ ॥ इसलिये पुण्यके चाहनेवालोंको नित्यमह पूजनमें उद्यमी होके जिनमंदिर बनवाना चाहिये

जिने यज्ञं करिष्याम इत्यध्यवसिताः किल। जित्वा दिशो जिनानिष्ट्वा निर्वृता भरतादयः॥७॥
शक्यक्रियेष्टफलतां दृष्ट्वाष्टांगनिमित्ततः। स्वशक्तया स्वाञ्च पृष्ट्वाप्तान् प्रारभेत जिनालयम्॥८॥
मुनिगोऽश्वेभभूपाढ्ययोपिच्छत्रादिदर्शनम्। तत्प्रश्ने वेदपाठार्हन्नुत्यादिश्रवणं शुभम्॥९॥
विमूर्धा हसतीस्तोमः सोहं मध्ये स्थितोऽततः। चतुरोंकारयुक् सव्येतरमायाद्वयावृत्तम्॥१०॥

और जहातक होसके जीर्ण जिनमदिरका उद्धार कराना बहुत उत्तम है ॥ ६ ॥ जिनेन्द्र देवकी पुजा तो अवश्य करेंगे ऐसा दृढनिश्चय रखनेवाले भरत सगर राम पाडव आदिक बडे २ महाराजा जो पूर्वसमयमें होगये है वे भी जिनेन्द्रदेवकी पूजाकरनेसे ही सब दिशाओंको जीतकर अतमे मोक्षके अविनाशीक सुखको प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ अपनी शक्ति और इष्ट सिद्धिको विचार कर तथा पिता माता मत्रीआदिक सज्जनोंको पूछकर अष्टाग निमित्तके द्वारा शुभतिथि आदि पचाग शुद्ध लग्नमे जिनमंदिर बनवाना शुरू करे ॥ ८ ॥ जिनमदिरके उद्धार करनेके संबधमे पूछनेके समय दिगबर मुनि (साधु) बछडेवाली गाय या बैल घोडा हाथी सधवा स्त्री छत्र और आदि शब्दसे चमर ध्वजा सिहासन दही दूध इत्यादिका देखना तथा वीणाका शब्द जैन शास्त्रोका पाठ अर्हतको नमस्कार आदि शब्दोका सुनना शुभ है ॥ ९ ॥ अब कर्णपिशाचिनी यंत्र मत्रका उद्धार बतलाते है,—हकार सकार तोंकारके ऊपर बिंदु रख सकार और हकारके बीचमे तों अक्षरको लिखे उसके चारों कोनोंमे चार ओंकार

प्रदोषैः कटसंरुद्धसमीराया च तद्भुवि । ओंहूं फडित्यस्त्रमंत्रत्रातायामामभाजने ॥ २० ॥
आमकुंभोर्ध्वगे सर्पिःपूर्णे पूर्वादितःसिताम्।रक्तां पीतां शितिं न्यस्य वर्तिसर्वाः प्रबोध्य ताः २१
अनादिसिद्धमंत्रेण मत्रयेदाघृतक्षयात् । शुद्धं ज्वलंतीषु शुभं विध्यातीष्वशुभं वदेत्॥२२॥
एवं सगृह्य सद्भूमिं सुदिनेऽभ्यर्च्य वास्त्वधः। संशोध्याध्यर्धमभोश्मप्राग्धरावधि वा तथा २३
पातालवास्तु संपूज्य प्रपूर्याधाप्य तां समाम्।प्रासादं लोकशास्त्रज्ञो दिशः संसाध्य सूत्रयेत् २४

होवे–गढा न भर सके तो खराब-अशुभ करनेवाली जमीन समझनी चाहिये ॥ १९ ॥ सूर्य छिपनेके बाद चटाईके परकोटेसे हवाको रोककर उस जगहकी 'ओं हूं फट्' इस कुदालादि अस्त्रमत्रसे रक्षा करे ॥ २० ॥ पुनः उसकी पूर्वादि चारों दिशाओंमें कच्चे मट्टीके चार घड़ रक्खे उनपर कच्चे सरवे घीसे भरे हुए रक्खे उनमें सफेद लाल पीली काली वत्ती पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे डालैं फिर सबको जलावै ॥ २१ ॥ जबतक घी रहै तबतक अनादि सिद्धमत्रसे मत्रित करै। वत्तिया साफ जलती हो तो शुभफल कहना और यदि बुझतीं हुई मालूम पड़ें तो अशुभ फल कहना चाहिये ॥ २२ ॥ इसप्रकार उत्तम भूमिको तलाशकर शुभ दिनमें उसकी खोदी हुई नींवकी पूजा करके उसे शुद्ध करे। फिर पत्थर वगैरः के टुकडोंसे भरकर पहली भूमिके बराबर करले इस तरह व्यवहार शास्त्रका जाननेवाला दिशाओंको विचार कर जिन भवनका निर्माण करावे ॥ २३ ॥ २४ ॥

चतुरस्रे कृते पंचवर्णचूर्णेन मंडले । चतुर्द्वारेऽष्टपत्राब्जगर्भे न्यस्यांबुजोदरे ॥ २५ ॥
जिनादीन् मंगलैर्लोकोत्तमैश्च शरणैर्युतान् । अनादिसिद्धमंत्रेण पूजयेद्दिग्दलेष्वनु ॥ २६ ॥
देवीर्जयाद्या जंभाद्या विदिक्पत्रेषु तद्बहिः । लोकपालान् यजेद्दिक्षु स्वस्वमंत्रैस्तथा ग्रहान्२७
तत्र संस्थाप्य सत्पीठे जिनार्चां समहोत्सवाम् । प्रीतः प्रीतेन संघेन संयुक्तो याजकोत्तमः२८
संस्नाप्यादाय गंधांबुचरुपुष्पाक्षतादिकम् । दद्याद्बलिं स्वमंत्रेण विश्वविघ्नोपशांतये ॥ २९ ॥
एवं स्थंडिलपातालवास्तुपूजाद्वयोत्तरम् । विधाप्य मसृणं क्षेत्रमित्थं तद्वास्तु पूजयेत् ॥३०॥

इति स्थंडिलपातालवास्तुद्वयपूजाविधानम् ।

उस जिन मंदिरके चारों दरवाजोंके सामने पांच रंगके चूर्णसे चौकोन मांडला बनावे और आठ पांखुडीके कमलके आकार तांबेके पात्रमें लोकोत्तम शरणरूप जिन आदिको अनादि सिद्ध मंत्रसे पूजे ॥ २५ ॥ २६ ॥ उसके बाद दिशाओंके चार पत्रोंपर जया आदि देवियोंका और विदिशाओंके चार पत्रोंपर जंभा आदि देवियोंका तथा उसके बाहर चार लोकपालोंका और नव ग्रहोंका अपने २ मंत्रोंसे पूजन करे ॥ २७ ॥ फिर उत्तम सिंहासनपर जिन भगवानकी प्रतिमाको विराजमान करके वह उत्तम यजमान (पूजा करानेवाला) प्रेमयुक्त श्रावकादि समूहसे घिरा हुआ प्रसन्न चित्तसे जिन पूजा करे ॥ २८ ॥ पहले तो सुगंधित जलसे अभिषेक करे पश्चात् जल चंदन अक्षतादि आठ द्रव्य लेकर अपने २ मंत्रसे सब विघ्नोंकी शांतिके लिये पूजा करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार चबूतरा और

रेखाभिस्तिर्यगूर्ध्वाभिर्वज्राग्राभिः सुलेखिते । एकाशीत्यष्टपत्राब्जगर्भकोष्ठेऽत्र मंडले ॥ ३१ ॥
यजेन्मध्यांबुजेऽनादिसिद्धमंत्रेण सद्गुरून् । जयादिदेवीः स्वैर्मंत्रैः पद्मेषु बहिरष्टसु ॥ ३२ ॥
षोडशस्वर्चयेद्विद्यादेवीः शासनदेवताः । द्विर्द्वादशेषु द्वात्रिंशत्पद्मेष्विंद्रानतो बहिः ॥ ३३ ॥
इंद्रादीन् दिक्षु यज्यांश्च वज्राग्रेषु ततो ग्रहान् । जिनार्चां तत्र पीठस्थां संस्नाप्याभ्यर्च्य पूर्ववत् ३४
सर्वौषधीपंचरत्नमिश्रतीर्थांबुपूरितान् । पंचताम्रमयान् कुंभान् दधिदूर्वाक्षतार्चितान् ॥३५॥

नींवकी भूमि—इन दोनोंकी पूजाकरके चीकनी जगह करावे ॥ ३० ॥ इस प्रकार चबूतरा और नींवकी भूमि—इन दोनोंकी पूजाका विधान समाप्त हुआ । उसके बाद बृहत्शांति नाम एक चोकोण मंडल बनावे उसकी विधि इस प्रकार है कि पहले तो उसके चारो तरफ इक्यासी लकीरे अग्रभागमें वज्र चिह्न वाली खींचे फिर उस कोठेके बीचमे आठ पत्तेवाला कमल बनावे ॥ ३१ ॥ उस कमलके मध्यमे पच परमेष्ठियोंको स्थापन करके अनादि सिद्ध मत्रसे पूजा करे। उसके बाद आठ कमलपत्रोंपर स्थित जया आदि आठ देवियोंकी पूजा करे॥३२॥ पश्चात् रोहिणी आदि सोलह विद्या देवियोंके चक्रेश्वरी आदि चौबीस शासन देवताओंके कोठे तथा बत्तीस यक्षोंके कोठे खींचे । उसके बाद चारो दिशाओंमे इंद्र वरुण आदि चार दिक्पालोंको स्थापन करे फिर वज्रके आगेके भागमे नव ग्रह स्थापन करना चाहिये । उस मध्य कमलके ऊपर सिंहासन रखे उसपर जिनप्रतिमा रखकर उसका अभिषेक पूर्वक पूजन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उसके बाद चारो कोनोंमे चार शिला तथा एक

तत्रारोप्यैकशोनादिसिद्धमंत्रेण मंत्रयेत्। ततस्तन्न्यासदेशेषु सूतश्रीखंडकुंकुमम् ॥ ३६ ॥
क्षित्वा प्रागेकमुत्क्षिप्य क्षेत्रगर्भे न्यसेत्तथा । पृथक्कोणेषु चतुरस्ततः पंच शिलाः पृथक् ॥३७॥
जिनादिमंत्रैरध्यास्य सुलग्ने तेषु विन्यसेत् । ततः प्रतोष्य शिल्प्यादीन् स्वक्षेत्रे भ्रामयेद्बलिम् ३८
पीठबंधेप्यसावेव विधिः कृत्स्नो विधीयताम् । विष्कुंभो देहलीपद्मशिलयोश्च निवेशने ॥३९॥

इति पीठबधाविनयप्रतिष्ठाविधानम् ।

भीतर (सिंहासनके पास) इस तरह पाच शिला अथवा पकी हुई ईंट रक्खे । उसके ऊपर शुभ लग्नमें पाच तांबेके कलशोंको क्रमसे रखे उनके अंदर सर्वौषधी, पांच तरहके रत्नोंसे मिला हुआ नदी या कुएका जल भरा रहना चाहिये और घडोंके रखनेके स्थानपर पारा-घिसा हुआ चंदन कुंकु रखे और सबको अनादिसिद्ध जिनादि(णमोकार)मंत्रसे मंत्रित करे । उसके बाद कारीगरोंको द्रव्यादिसे प्रसन्न करके अपने मंडलके आगे पूजाकरे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥३८॥ इस प्रकार जिनादि मंत्र तथा शिला रखनेकी विधि पूर्ण हुई । वेदीके बांधनेमें (रचनामें) भी यही विधि करनी चाहिये और देहलीकी शिला तथा वेदीकी कमलाकार गुमठीकी शिलाके रखनेमें भी पूर्वकथित विधि करनी चाहिये । परंतु देहलीके दरवाजे की तथा गुमठीकी कमलाकार शिलाके पिछले भागमें जया आदिके देवियोंकर सहित

---

१ ओं ह्रॉं नमोऽर्हद्भ्य स्वाहा, ओं ह्रीं नम सिद्धेभ्य स्वाहा, ओं ह्रूं नम सूरिभ्य. स्वाहा, ओं ह्रौं नम पाठकेभ्य स्वाहा, ओं ह्र नम सर्वसाधुभ्य. स्वाहा । जिनादिमंत्रा न्यस्शिलानिवेशन ।

सद्वर्णात्यंततेजस्का विंदुरेखाद्यदूषिता । सुस्वादा सुस्वरा चार्हद्विंवाय प्रवरा शिला ॥ ५१ ॥
ता प्राप्य भूवत् कृत्वार्चां प्रोक्ष्यमंत्रेण पूजिताम् । विभिद्योंहूं फट् स्वाहेद्धशस्त्राग्रेणार्चयेत् पुनः ५२
गृहमेत्य ततो भूवत्तां शुभामशुभामपि । स्वस्य ज्ञातुं निशारंभे निमित्तमवलोकयेत् ॥ ५३ ॥
स्नात्वैकांते शुचौ देशे लिप्त्वा गंधैः शुभैः करौ । विधाय सिद्धभक्तिं च ध्यायेन्मंत्रामिमं हृदि ५४
ओं नमोस्तु जिनेंद्राय ओं प्रज्ञाश्रवसे नमः । नमः केवलिने तुभ्यं नमोस्तु परमेष्ठिने ॥ ५५ ॥

अच्छे रंगवाली हो अधिक चमकवाली हो, विंदुरेखा आदि दोषोंसे रहित हो अच्छा स्वाद तथा अच्छी ध्वनि जिसमें हो–ऐसी शिला होनी चाहिये॥५०॥५१॥उसको लेकर और उससे भूमिकी तरह पूजकर प्रोक्षणमंत्रसे उसे धोकर ओं हूं फट् स्वाहा इस शस्त्रमंत्रसे शिला तराशनेके हथियारसे उसे निकाले ॥ ५२ ॥ फिर घरपर जाकर जिनमंदिरकी भूमिकी तरह उस शिलाके शुभ अशुभ जाननेके लिये रात्रिके आरंभमें अष्टांग निमित्तोंको विचारै ॥५३॥ स्नान करके एकांत शुद्ध स्थानमें शुभ गंध द्रव्यको हाथपर लगाके सिद्धभक्ति पढकर इस आगे कहेजानेवाले] मंत्रश्लोकका मनमें ध्यानकरे ॥ ५४ ॥ वह इस प्रकार है—ओं जिनेंद्र देवको नमस्कार है ओं प्रज्ञाश्रवण केवली परमेष्ठिन् तुमको नमस्कार है। दिव्य शरीरवाली हे देवी मुझे स्वप्नमें शुभ अशुभ कार्यको कह । इस दिव्यमंत्रसे उस शिलाको शुभ (कल्याण-

---

१ ओं ह्रः व ह्रः प स्वीं क्ष्वीं स्वाहा । प्रोक्षणमंत्र । ओं हूं फट् स्वाहा इति शस्त्रमंत्र ।

स्वप्ने मे देवि दिव्यांगे ब्रूहि कार्यं शुभाशुभम् । अनेन दिव्यमंत्रेण शुभां ज्ञात्वा नयेच्च ताम्५६
प्रातस्तत्र पुनर्गत्वा कृत्वा प्राग्वाद्विधिं रथे । सप्तकृत्वोऽभिमंत्र्याधिरोपितां तां प्रचालयेत् ॥५७॥
यथा कोटिशिला पूर्वं चालिता सर्वविष्णुभिः । चालयामि तथोत्तिष्ठ शीघ्रं चल महाशिले॥५८॥

इति शिलाभिमंत्रणमंत्रः ।

जिनालयं परीत्य त्रिःप्रवेशयात्युत्सवेन ताम् । स्वह्नि सिक्त्वा स्वौषधीभिःसिद्धशांतिस्तुती भजेत्
क्रमो यथार्ह योज्योऽयं दारुधात्वादिनापि च । निर्मापयिष्यमाणेऽर्हद्बिंबे सिद्धेथवाऽऽगते ॥६०॥

इति शिलानयनविधानम् ।

कारिणी) जानकर लाना चाहिये ॥ ५५ । ५६ ॥ प्रातः कालके समय रथको लेजाकर वहां पूजनादिविधि करक सातवार उस शिलाको अनादि सिद्ध मंत्रसे मंत्रित करे । फिर उसको वहासे आगे कहे हुए मंत्रको पढकर उठावे ॥ ५७ ॥ हे महाशिले ! जिस तरह लक्ष्मण कृष्ण आदि नौ नारायणोंने कोटि (करोडमन वजनवाली) शिला पूर्वसमयमें उठाई थी । उसी तरह मैं भी तुझे मूर्ति वनवानेके लिये उठाता हूं । सो तू जल्दी उठ ,, ऐसा मत्र कहकर उस शिलाको उठाके रथमें विराजमान करे ॥ ५८ ॥ इस प्रकार शिलाभिमंत्रण मंत्र कहा । वहासे उत्सवके साथ जिनमंदिरमें लावे और उसकी तीन प्रदक्षिणा देकर शुभ दिनमें उत्तम औपधियोंसे शिलाको धोकर मंदिरमें रक्खे उसके वाद सिद्धस्तुति शांति विधान करे ॥ ५९ ॥ जैसा क्रम (विधि)

सुलग्ने शांतिकं कृत्वा सत्कृत्य वरशिल्पिनम्। तां निर्मापयितु जैनं विंबं तस्मै समर्पयेत्॥६१॥
सद्दृष्टिर्वास्तुशास्त्रज्ञो मद्यादिविरत शुचिः।पूर्णांगो निपुणःशिल्पी जिनार्च्यायां क्षमादमान्६२
शांतप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारदृक् । संपूर्णभावरूढानुविद्धांगं लक्षणान्वितम् ॥ ६३ ॥
रौद्रादिदोषनिर्मुक्तं प्रातिहार्यांकयक्षयुक् । निर्माप्य विधिना पीठे जिनार्विंबं निवेशयेत्॥६४॥

पत्थरकी शिलाका कहागया है वैसा ही काष्ठ और धातु वगैर के अर्हतविंब व सिद्धादविं- बोंके तयार करानेमे व तयार होके दूसरे स्थानसे आये हुए विंवमें । जानना इसप्रकार शिला वगैरःके लानेका विधान पूर्ण हुआ ॥ ६० ॥ उसके बाद शुभलग्नमे शांति विधान करके चतुर कारीगरको आदरपूर्वक लाकर जिनविंब तयार करानेके लिये शिलाको उसे सुपुर्द करदे ॥ ६१ ॥ जो अच्छी निगाहवाला हो शिल्प शास्त्रको जानने वाला, मदिरा मास आदि निंद्य वस्तुओंका त्यागी हो, मनवचन कायसे शुद्ध हो शरीरके अवयवोंसे पूर्ण हो चतुर हो क्षमा आदि गुणोंवाला हो वह शिल्पी जिन प्रतिमाके वनाने योग्य कहा गया है ॥ ॥ ६२ ॥ जो शांत, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्रस्थित अविकारी दृष्टिवाली हो जिसका अंग वीतरागपने सहित हो अनुपम वर्ण हो और शुभ लक्षणो सहित हो । रौद्र आदि बारह

---

१ उक्तंच—नात्यंतोन्मीलितास्तद्धा न विस्फारितमीलिता । तिर्यगूर्ध्वमधोदृष्टिं वर्जयित्वा प्रयत्नतः ॥ नासाग्रनिहिता शांता प्रसन्ना निर्विकारिका । वीतरागस्य मध्यस्था कर्तव्या दृष्टिरुत्तमा ॥२ रौद्र, कृशांग, संक्षिप्तांग, चिपिटनासिक, विरूपकनेत्र, हीनमुख, महोदर, महाहृदय, महाअंस, महाकटी, महापाद, हीनजंघा, शुष्कजंघा—ये दोष हैं ।

स्थापितस्याचलस्थान पीठस्याक्षूणलक्ष्मणः । नयेत्समीपं प्रतिमां तत्रारोपयितुं स्थिराम्॥६५॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं शैलं वा चतुरस्रकम् । रम्यं पत्रं विनिर्माप्य सदलं मसृणं तथा ॥६६॥
तिर्यगूर्ध्वाष्टरेखाभिर्वज्राग्राभिः समालिखेत् । मंडलं न्येकपंचाशत्कोष्ठकं श्लक्ष्णरेखकम्॥६७॥
अकारादि हकारांतं कोष्ठेष्वेकैकमक्षरम्।वाह्यकोणस्थितात्कोष्ठात् प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥६८॥
मध्यमे कोष्ठके तत्र हंकारं सोर्ध्वरेफकम् । जयादिदेवताधिष्ठपत्रपद्मस्य मध्यगम् ॥ ६९ ॥
वज्राग्रे प्रणवं दद्यात्कामबीजं तदंतरे । त्रिर्मायामात्रयावेष्ट्य निरुंध्यादंकुशेन तु ॥ ७० ॥

दोषोंसे रहित हो अशोक वृक्षादि प्रातिहार्योंसे युक्त हो और दोनो तरफ यक्ष यक्षीसे वेष्टित हो ऐसी जिन प्रतिमाको बनवाकर विधि सहित सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ६३ । ६४ ॥ वह विधि इसतरह है कि निश्चल स्थानमें रखे हुए सिंहासनके ऊपर निर्दोष लक्षणवाली प्रतिमाको स्थिर रूपसे विराजमान करे ॥ ६५ ॥ फिर सोना चांदी तांबा पत्थर–इनमेंसे किसी एकका चौकोन चिकना पत्र बनवावे उसपर सीधी तिरछी अग्रभागमें वज्र चिन्हवाली आठलकीर खींचे उसमें उनचास कोठांवाला सीधी रेखाओंकर युक्त एक मंडल खींचे ॥ ६६ ॥६७॥ उन कोठोंमे अकारसे लेकर हकारतक एक एक अक्षरको लिखे ॥ ६८ ॥ बीचके कोठेमें ' र्हं ' लिखकर उसके चारों तरफ आठदलका कमल बनावे उसमें जया आदि आठ देवताओंका स्थापन करे ॥ ६९ ॥ वज्रके अगाडीके भागमें ' ओं ' लिखे दो वज्रोंके मध्यमे ' क्लीं ' लिखे और ह्रींकारसे तीनवार चारों तरफसे घेरकर ' क्रों ' इस अंकु

एव विलिख्य संस्नाप्य यंत्रं क्षीरेण चांबुना । सुगंधिद्रव्यमिश्रेण चंदनेनानुलेपयेत् ॥७१॥
सत्पुष्पाक्षतनैवेद्यदीपधूपफलैर्यजेत् । सुगंधिप्रसवैस्तत्र जप्यमष्टोत्तरं शतम् ॥ ७२ ॥
संजप्य मातृकावर्णमालामत्रेण तत्त्वतः । ओं नमोऽर्हंमुखं ह्रीं क्लीं क्रौं स्वाहांतेन तत्स्मरेत् ॥७३॥
पत्रमध्ये च यत्पद्मं पीठे गंधेन तल्लिखेत् । कर्पूरं कुंकुमं गंधं पारदं रत्नपंचकम् ॥ ७४ ॥
क्षिप्त्वातपत्रमारोप्य प्रतिमां स्थापयेत्ततः । स्थिरप्रतिष्ठाविधये दिने लग्ने च शोभने ॥ ७५ ॥

शसे ढक्कन लगावे ॥ ७० ॥ इस प्रकार यत्रको लिखकर सुगधी द्रव्यसे युक्त दूध और जलसे यत्रका अभिषेक कर चदनका लेप करे ॥ ७१ ॥ अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल-इन आठ द्रव्योसे यत्रकी पूजा करे और सुगंध वाले चमेली आदिके फूलोसे एकसौ आठवार आगे कहे जाने वाले मत्रका जाप करे ॥ ७२ ॥ वह मत्र इस तरह है कि " ओ नमो र्हं " इस पदको पहले रक्खे वीचमे अकारादि वर्ण मालाके अक्षरोंको और अंतमे "ह्रीं क्लीं क्रौं स्वाहा" इस पदको रखे—तव " ओ नमो र्हं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ व भ म य र ल व श ष स ह ह्रीं क्लीं क्रौं स्वाहा " ऐसा जपनेका मत्र हुआ ॥ ७३ ॥ उस तावेके पत्रमें लिखा हुआ जो कमल है उसे घिसे हुए चंदनसे सिंहासनपर भी लिखे और कपूर कुंकु चदन पारा पांचतर-

---

१ ओं नमोऽर्हं अ आ इई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः । क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न । प फ ब भ म । य र ल व । श ष स ह ह्रीं क्लीं क्रौं स्वाहा ॥ इति जपमत्र ॥

स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णकम् । पीठं भामंडलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुंदुभिम् ॥ ७६ ॥
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्याधो यथायथम् । लांछनं दक्षिणे पार्श्वे यक्ष यक्षी च वामके॥७७॥
गौर्गजोश्वः कपिः कोक कमलं स्वस्तिकः शशी । मकरः श्रीद्रुमो गंडो माहिषः कोलसेधिकौ ॥७८
वज्रं मृगोऽजष्टगरं कलशः कूर्म उत्पलम् । शंखो नागाधिपः सिंहो लांछनान्यर्हतां क्रमात् ७९
सितौ चंद्रांकसुविधी श्यामलौ नेमिसुव्रतौ । पद्मप्रभसुपूज्यौ च रक्तौ मरकतप्रभौ ॥ ८० ॥

हके रत्न उसम डाले ऊपर छत्र लगावे तब प्रतिमाको सिंहासनपर विराजमान करे । यह विधि प्रतिष्ठाके निर्विघ्न समाप्तिकेलिये कही गई है । सो इसे शुभदिन और शुभ लग्नमें करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ इसप्रकार वेदीपर सिंहासनमें प्रतिमा विराजमान करनेकी विधि पूर्ण हुई । फिर अर्हत प्रतिमाको तीन छत्र दो चमर अशोक वृक्ष दुंदुभी बाजा सिंहासन भामंडल दिव्य भाषा पुष्पवर्षा—इन आठ प्रातिहार्योंसे शोभित करे ॥७६॥ उसके बाद स्थिर और चल दोनों प्रतिमाओंमें सिंहासनके नीचे जैसा शास्त्रमें कहा है वैसे ही सीधी बाजूमें भगवानके चिन्हको और बाईं तरफ यक्ष और यक्षीको खडा करे ॥ ७७ ॥ अर्हतोंके शरीरके चिन्ह क्रमसे बैल १ हाथी २ घोडा ३ बंदर ४ चकवा ५ कमल ६ साथिया ७ चन्द्रमा ८ मगर ९ श्रीवृक्ष १० गेंडा ११ भैंसा १२ सूअर १३ सेही १४ वज्र १५ हरिण १६ बकरा १७ मच्छ १८ कलश १९ कछुआ २० कमलकी पांखुरी २१ शंख २२ सर्प २३ सिंह २४—ये चौवीस हैं । इनमेंसे जिस भगवानका जो चिन्ह है उसे सिंहासनके नीचे भागमें खुदाना चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ रूप-

सुपार्श्वपार्श्वौ स्वर्णाभान् शेषांश्चालेखयेत्स्मरेत्। न वितस्त्यधिकां जातु प्रतिमां स्वगृहेर्चयेत् ८१
स्थिरां स्थाने निवेश्यार्चां चलां वा यागमंडले। प्रतिष्ठाचार्ययष्टारौ स्थापयेतां यथाविधि ८२
नार्चां श्रितानिष्टरूपां व्यंगितां प्राक् प्रतिष्ठिताम्।पुनर्घटितसंदिग्धां जर्जरां वा प्रतिष्ठयेत् ॥८३॥

भावि चौवीसो तीर्थंकरोंका रग क्रमसे कहते है—चद्रप्रभ, पुष्पदंत-ये दोनों सफेद रगके हैं नेमिनाथ, सुव्रतनाथ-ये काले रगवाले है। पद्मप्रभु, वासुपूज्य इनका लालरग है। सुपार्श्व पार्श्वनाथ-नीले रगवाले है और वाकी वचे हुए सोलह तीर्थंकरोंका शरीर तपाये हुए सोनेके रगवाला है। अपने घरके चैत्यालयमे एक विलस्तसे अधिक परिमाणवाली प्रतिमा नही रखे जैनमदिरमे ही रखकर पूजनकरे ॥ ८० ॥ ८१॥ स्थिर प्रतिमाको अपने पूजनस्थानमे चलप्रतिमाको यागमडलमे रखकर इद्र और यजमान विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करे ॥ ॥ ८२ ॥ ऐसी प्रतिमा प्रतिष्ठायोग्य नहीं है कि जो पहलेकी प्रतिष्ठित हो, जिनलिंगके सिवाय दूसरा आकार हो, पहले शिव आदि आकार वना हो फिर फोडके जिनदेवका आकार किया गया हो, अथवा उसके आकारमे सदेह हो कि जिनविंव है या दूसरा आकार है, और विलकुल जीर्ण होगई हो ॥ ८३ ॥

१ अथात संप्रवक्ष्यामि गृहविंवस्य लक्षणम्। एकांगुलं भवेच्छ्रेष्ठं द्व्यंगुल धननाशनम्॥ त्र्यंगुले जायते वृद्धि पीडा स्याच्चतुरंगुले। पंचांगुले तु वृद्धि स्यादुद्वेगस्तु षडंगुले॥ सप्तांगुले गवा वृद्धिर्हानिरष्टांगुले मता। नवांगुले पुत्रवृद्धिर्धननाशो दशांगुले॥ एकादशांगुल विंवं सर्वकामार्थसाधकम्। एतत्प्रमाणमाख्यातमत ऊर्ध्वं न कारयेत्॥ इति ग्रंथांतरेप्युक्तम्।

२ द्वादशांगुलपर्यंते यवाष्टांशानतिक्रमात्। स्वगृहे पूजयेद्विंव न कदाचित्ततोधिकम्॥

श्रुतेन सम्यग्ज्ञातस्य व्यवहारप्रसिद्धये। स्थाप्यस्य कृतनाम्नोंतःस्फुरतो न्यासगोचरे ॥ ८४ ॥
साकारे वा निराकारे विधिना यो विधीयते। न्यासस्तदिदमित्युक्त्वा प्रतिष्ठा स्थापना च सा॥८५

इति प्रतिष्ठालक्षणम्।

स्थाप्यं धर्मानुबंधांगं गुणी गौणगुणोथवा। गुणो गौणगुणी तत्र जिनाद्यन्यतमो गुणी ॥ ८६ ॥
गुणो निःस्वेदतादिः स्याद्बाह्यो ज्ञानादिरांतरः। सोऽर्हतां पंचकल्याणद्वारेणादौ प्रपच्यते॥८७॥
गर्भावतारजन्माभिषेकनिष्क्रमणोत्सवान्। द्दत्तान् ज्ञानागिर्त्रोद्धर्यौ भाव्यौ विधेर्हतोर्पयेत्॥८८॥
कल्याणे प्रथमे श्रैदी रत्नवृष्टिस्तथोपदा। मातुःश्र्यादिकृतागर्भशोधनादिरुपासना ॥ ८९ ॥

जिसकी स्थापना करना हो उसका स्वरूप शास्त्रसे अच्छीतरह जानकर व्यवहारमें प्रसिद्धिकेलिये पाषाण आदिमें उसके गुणोंके स्मरण करनेको नाम रखना। चाहे वह उसी तरहके आकारवाली मूर्ति हो। या निराकार हो उसे ही प्रतिष्ठा अथवा स्थापना कहते हैं॥८४॥ ॥ ८५ ॥ जिसकी स्थापना की जावे वह गुणी धर्मका कारण हो। उसमें भी अर्हंतके गुण बाह्य निःस्वेदता (पसेव रहितपना) आदि हों तथा अंतरंग ज्ञानादि हों। इसी तरह जिसकी मूर्ति हो उसमें उसीके गुणोंकी स्थापना करनी चाहिये। यहांपर सबसे पहले तीर्थंकर प्रभुकी पंचकल्याणकोंके द्वारा प्रतिष्ठाविधि वर्णन करते हैं॥८६।८७॥ गर्भावतरण, जन्माभिषेक, तप कल्याणक ज्ञानकल्याणक, ओर मोक्षकल्याणक–ये पंचकल्याणक अर्हंतकी प्रतिमामें स्थापन करे। अर्थात् अप्रतिष्ठित अर्हंत प्रतिमाके पांचों कल्याणउत्सव विधिपूर्वक करे ॥ ८८ ॥ पहले गर्भा

स्वप्नानंदानुबंधश्च प्रभूण्णोर्गर्भसंक्रमः । स्वप्नावलोकनं मातुस्तत्फलश्रवणं तथा ॥ ९० ॥
गर्भशोधनशुश्रूषे देवीभिर्गर्भसंक्रमः । सांगसर्गक्रमः पित्रोः स्थाप्याचैंद्रेशतत्क्रिया ॥ ९१ ॥
द्वितीये स जगत्क्षोभानंदं जन्म जिनेशिनः । निःस्वेदत्वाद्यतिशया विजयाद्यमरीकृते ॥ ९२॥
जनन्युपासनाजातकर्मणी त्रिदशागमः । शच्यार्हतोर्पणं पत्युः सुमेरौ नयनं सुरैः ॥ ९३ ॥
स्नपनं चर्चनं भूषा नामकर्म स्तवक्रिया । नृत्यं नगर्यानयनं राजांगणनिवेशनम् ॥ ९४ ॥
संनिधापनमंबायाः स्तुतिः प्राभृतनर्तने । रक्षादिक राज्यभोगभुक्तिःस्थाप्येंद्रसेवया ॥ ९५ ॥

वतरण कल्याणकमें कुवेरकृत रत्नोंकी वर्षा, देवियोंसे की गई माताकी सेवा, श्री आदि पद् कुमारिका देवियोंसे की गई गर्भशोधना, स्वप्नोंके देखनेके वाद पतिके पास फल सुनना उसके सुननेसे माताको आनंद, होनेवाले तीर्थंकरका गर्भमें आना और इंद्रकर कीगई माता पिताकी पूजा—इतनी विधियां करनी चाहिये ॥ ८९।९०।९१ ॥ दूसरे कल्याणकमें—जगतमें क्षोभ होना आनंद होना, जिनेन्द्र तीर्थंकरका जन्म होना, निःस्वेदता आदि जन्मके दश अतिशयोंका प्रगट होना, विजया आदि देवियोंकर माताकी सेवा जातकर्म संस्कार देवोंका आना, इंद्राणीकर भगवान बालकको इंद्रकी गोदमें सौंपना, भगवान बालकको सुमेरु पर्वतपर लेजाना ॥ ९२।९३ ॥ वहां देवोंकर स्नान कराना, आभूषण पहराना, नाम रखना, प्रभुकी स्तुति करना, नृत्य करना नगरीमें लाना राजमहलके आंगनमें पहुंचना माताको बालक सुपुर्द करना फिर इंद्रको नृत्य करना प्रभुकी सेवाकेलिये देवोंको छोड

स्थाप्यस्तृतीये निर्वेदस्तत्प्रशंसा सुरर्षिभिः। दीक्षावृक्षाः सुरैः स्नानाद्युपकारो वनायनम् ९६
दीक्षाग्रहणमिंद्रेण केशप्रत्येपणादिकम्। वस्त्रादित्यजनं ज्ञानचतुष्कोद्भासनं क्रिया॥९७॥
कार्या कल्याणसंस्कारमालामंत्राधिरोपणम्। प्रियंगु सज्जनादीनि तिलकं चाधिवासना ९८
श्रीमुखोद्घाटनं तुर्ये नेत्रोन्मीलनमर्हतः। स्थाप्याश्चातगुणा घातिक्षयजातिशयास्तथा॥९९॥
आस्थानमंडलं देवोपनीतातिशयाः पुनः। प्रतिहार्याष्टकं चिह्नं यक्षः शासनदेवता॥१००॥
कल्याणपंचकारोपव्यक्तिः कंकणमोक्षणम्। सा जाह्नावक्रातिःकृत्या महार्घस्यावतारणम्१०१

तीसरे कल्याण- ...॥ ९४।९५ ॥ ...जाना प्रभुको राज्य भोगना—ये सब विधिया करनी चाहिये॥ ९४।९५॥ तीसरे कल्याण-
कर्मे भगवानको वैराग्य होना, लौकांतिक देवोंकर स्तुति, दीक्षावृक्ष, देवताओंकर कराया गया स्नान, पालकीमे बिठाके वनको लेजाना, भगवानकर स्वय दीक्षाग्रहण, इन्द्रकर लुंचितकेशोंको रत्नपिटारीमे रखके क्षीरसमुद्रमे क्षेपण करना वस्त्रादित्याग, चौथे (मनःपर्यय) ज्ञानका प्रगट होना ॥ ९६। ९७ ॥ अडतालीस मालामंत्रोंका जाप करना इत्यादि॥ ९८ ॥ चौथे कल्याणकर्मे—भगवानके मुखका उघाडना नेत्रोन्मीलनक्रिया घातिया कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न हुए अनत ज्ञानादिगुणोंका स्थापन समवशरण बनाना तथा अशोक वृक्षादि अतिशयोंका प्रगट करना आठ प्रातिहार्य यक्ष शासनदेवता—इनको समीप रखना महान अर्घ देना दिव्यध्वनि होना—इत्यादि क्रिया करनी चाहिये ॥ ९९ ॥ ॥ १००।१०१ ॥ पाचवें कल्याणकर्मे—आठ पत्रोंमे आठ गुणोंको लिखके और पूजके मोक्ष-

तत्कल्याणक्रिया चांत्ये मध्येऽज्वस्याभवं गुणान्।१ स्त्रेण्वष्टसु चाभ्यर्च्य क्ष्मावाचार्या शिवक्रिया॥
स्रपाळाद्युत्सवा कार्या ततश्चाभिपवक्रिया। मरुद्विसर्गबल्याशीर्दीक्षामोक्षक्षमापणाः ॥१०३॥
प्रतिष्ठोक्तविधिं सम्यग्विधायारोपयेद् ध्वजम्।प्रासादे तेन भात्येष सर्वेषां स्याच्छुभाय च१०४
स्थाप्यं तु विंबे सिद्धाना सम्यक्त्वादिगुणाष्टकम्।रत्नत्रयं च विधिवच्छेषाणा स्वस्वमंत्रतः१०५
सर्वज्ञवागभिव्यक्तानेकांतात्मार्थसार्थवत्। न्यसेद्वाग्देवताचार्यादावंगपूर्वप्रकीर्णकम् ॥ १०६ ॥

क्रिया करनी चाहिये ॥ १०२ ॥ फिर फूलमालाका उत्सव करके प्रभुका अभिषेक करे फिर देवताओंका विसर्जन रथयात्रा संघपतिको आशीर्वाद यज्ञ दीक्षाका छोडना और आये हुए सब सज्जनोंसे क्षमावनी करना ॥ १०३ ॥ इस तरह प्रतिष्ठाशास्त्रमें कही विधिको अच्छी तरह करके जिन मंदिरके ऊपर ध्वजा चढाये। उस ध्वजासे जिन मंदिरकी एक तो शोभा होती है दूसरे राजा प्रजा सबको कल्याण होता है ॥ १०४ ॥ इसप्रकार अर्हंत प्रतिमाकी विधि संक्षेपसे कही गई। इसका विस्तार आगे कहेंगे। अब सिद्ध आदिकी मूर्तिकी प्रतिष्ठाका विधान कहते हैं–सिद्धोंकी प्रतिमामें सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंका स्थापन करे और वाकी आचार्य आदि परमेष्ठियोंकी प्रतिमामें विधिपूर्वक अपने २ मंत्रसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र इन तीन रत्नोंका स्थापन करे ॥ १०५ ॥ सर्वज्ञके मुखकमलसे निकली हुई, गणधरोंकर प्रगट किया गया है अनेकांत स्वरूप पदार्थोंका समूह

१ शक्तिके माफिक द्रव्य देकर भगवानके नामसे फूलमाला लेकर चढाना।

अनंतार्थाक्षरात्मानं पुस्तकार्थमनुस्मरन् । संशोध्य पुस्तकं तच्च वाग्मंत्रेण प्रतिष्ठयेत्॥१०७॥
ध्यात्वा यथास्वं गुर्वादीन्न्यस्येत्तत्पादुकायुगे।निषेधिकाया संन्याससमाधिमरणादि च १०८
यक्षादिप्रतिबिंबेषु यंत्रं प्रार्च्य च विन्यसेत्।ग्रहे तार्कोदये ध्यायन् जात्यादीन् यक्षकर्दमम्१०९
सिद्धचक्रादिपत्रादिप्रतिष्ठाप्येवमूह्यताम् । ग्राह्यः प्राणो ग्रहश्चेंदोः शाते क्रूरे च भास्वतः ॥११०॥

इति प्रतिष्ठेयलक्षणम् ।

जिसका ऐसी सरस्वती देवीकी पूजामें अंग, पूर्व (चौदह पूर्व) प्रकीर्णक (बाह्य अंग) स्वरूप अनंत अर्थ अक्षर स्वरूप शास्त्राकार रचना कराके और उस शास्त्रको सुधवाके सरस्वतीमंत्रसे उसकी प्रतिष्ठा करे । यह शास्त्रप्रतिष्ठा हुई ॥ १०६।१०७ ॥ अब गुरुकी प्रतिमाकी *प्रतिष्ठा विधि कहते हैं,—निर्ग्रंथादि* गुरुओंका ध्यान करके और उनके संन्यास (समाधि) मरणकी छतरी (एक तरहका मठ) बनवाके उनके चरण युगल (दो) बनावे ॥१०८॥यक्षादि प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठामें पंचवर्णके चूर्णसे लिखे यंत्रको सूर्योदयमें चमेली आदि-के पुष्पोंसे पूजे और ध्यावे ॥१०९॥ पत्रपर लिखे हुए सिद्धचक्र यंत्र तथा आदि शब्दसे जंबूद्वीप त्रैलोक्य श्रुतस्कंध नंदीश्वर आदि लिखे यंत्रोंकी भी प्रतिष्ठा इसी तरह जानना चाहिये ।

---

१ कर्पूरमगुरुश्चैव कस्तूरी चंदनं तथा । कंकोलं च भवेदेभिः पंचभिर्यक्षकर्दमम् ॥ २ अनावृतादि यक्ष पद्मावती यक्षीकी प्रतिमा । ३. कपूर अगुरु कस्तूरी चंदन कंकोल–इन पांचोंको पीसके बनाया गया चूर्ण ।

पाक्षिकाचारसंपन्नो धीसंपद्बंधुबंधुरः। राजमान्यो वदान्यश्च यजमानो मतः प्रभुः॥ ११६ ॥
ऐदंयुगीनश्रुतधृद्धुरीणो गणपालकः। पंचाचारपरो दीक्षाप्रवेशाय तयोर्गुरुः॥ ११७ ॥

इति इन्द्रादिलक्षणम्।

निश्चित्य लग्नमासन्नं दिवसेषु कियत्स्वपि।सुमुहूर्ते प्रतिष्ठार्थं दातेंद्रं स्वग्रहं नयेत्॥ ११८ ॥

प्रतिष्ठाचार्य उत्तम गुणोंवाला ढूंढना चाहिये और उसीसे प्रतिष्ठा कराना चाहिये अयोग्योंसे कभी नहीं कराना ॥ ११५ ॥ अब प्रतिष्ठामें धन खर्चनेवाले यजमानका लक्षण कहते हैं—पांच पाप तीन मदिरा आदि मकार—इन आठोंको त्यागरूप आठमूलगुण स्वरूप पाक्षिक आचारका धारण करनेवाला हो ज्ञानवैराग्य सहित हो बहुतधन और बंधुजन जिसके अधिकारमें हों लोकमान्य हो राजासे जिसने समान (इज्जत) पाया हो उदार चित्तवाला दानी हो—ऐसा यजमान होना चाहिए॥ ११६ ॥ अब दीक्षा देनेवाले आचार्यका स्वरूप कहते हैं—व्यवहार शास्त्रको जानने वाला, श्रुतज्ञानियोंमें मुख्य, साधुसंघका पालनेवाला दर्शनाचार आदि पांच आचारोंके पालनेमें लीन—ऐसा आचार्य, यजमान और प्रतिष्ठाचार्यको इस प्रतिष्ठा करानेकी दीक्षा देनेवाला गुरु कहा गया है ॥११७॥ इस प्रकार इन्द्र (प्रतिष्ठाचार्य) यजमान (प्रतिष्ठामें धन खर्चनेवाला) और इस प्रतिष्ठाकार्य करनेकी दीक्षा देनेवाले आचार्यका

---

१ प्रियवाग् दानशीलश्च वदान्य परिकीर्तित ।

पुरोगाक्षतपात्रोद्धययोषित्साधार्मिकान्वितः।गत्वा गृहं महेंद्रस्य नत्वेदं पौर्तिको वदेत् ।११९।
न्यायेनोपार्ज्य संरक्ष्य संवर्ध्यार्हन्महे धनम् ।विनियुज्य परं श्रेयः प्राप्तुमिच्छामि संमति १२०
केतच्च सुमहत्साध्यं क चायं स्वल्पको जनः।तथाप्यत्र यते योग्या यदि स्युः सहकारिणः १२१
योग्यता चासकृद् दृष्टकर्मणां वोत्र गम्यते। किं परार्थैककार्यान् वः प्रत्यन्यद्वाच्यमस्त्यतः१२२

स्वरूप वर्णन किया। अब इन्द्रप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं–प्रतिमा आदिकी प्रतिष्ठा करानेमें धन खर्च करनेवाला यजमान, प्रतिष्ठाके सात आठ दिन बाकी रहनेपर जल्दी आनेवाली शुभ लग्नका निश्चय करके प्रतिष्ठाकी विधि करानेकेलिये शुभ मुहूर्तमें प्रतिष्ठाचार्य–इंद्रके घरको बुलानेके लिये जावे ॥ ११८ ॥ उससमय ऐसे ठाठसे जावे कि स्त्रियां तो अक्षत भरे हुए पात्र हाथमें लिये गाती हुई आगे जा रही हों और साथमें साधर्मी भाई हों। इसप्रकार यजमान प्रतिष्ठाचार्य–इंद्रके घर जाके उसे प्रणाम कर ऐसी प्रार्थना (वीनती) करे ॥११९॥ हे जितेंद्रिय ! मैंने न्यायसे धन पैदाकर इकट्ठा किया है और उसकी अच्छीतरह रक्षा की है अब मैं उसे अर्हंतबिंब प्रतिष्ठाके उत्सवमें लगाकर उत्तम सुख प्राप्त करना चाहता हूं ॥ १२० ॥ कहां तो महान् कठिन यह कार्य और कहां तुच्छ शक्तिवाला मैं, सुमेरु सरसोंका सा फरक है तौ भी आप सरीखे योग्य सत्पुरुष सहायक मिल जांयगे तो वाञ्छित कार्य अवश्य सिद्ध हो जाइगा ॥ १२१ ॥ आपका कईवार यह प्रतिष्ठाकार्य देखा

१ वापीकूपतडागदेवतागृहअन्नपानआराम इत्यादिकं पूर्तं तत्र नियुक्त पौर्तिकः यजमान.।

इत्यभ्यर्थनया कार्यमंगीकार्य तमालयम् । स्वमानीय चतुष्कोणज्वलद्दीपे सुपूरिते ॥ १२३ ॥
चतुष्के रक्तसद्वस्त्रमच्छादितसुविष्टरे । उपवेश्य नदद्वाद्यनादसंगीतमंगलैः ॥ १२४ ॥
कुल्याभी रक्तवस्त्रस्रग्भूषाकाश्मीरचारुभिः । युवतीभिश्चतसृभिश्चंदनं तस्य वर्धयेत्॥ १२५ ॥
ततः स तैलमारोप्य पीतोद्वर्तनपूर्वकम् । तीर्थमालापाठजिनाद्याशीर्वादरवाकुलम् ॥ १२६ ॥
पीतखल्यापोह्य तैलं परिषेच्य सुखांबुभिः ।सुभोज्यावर्ज्य भूषास्रग्वस्त्रचंदनवंदनैः ॥ १२७ ॥

जाना हुआ है इसलिये आपकी ही योग्यता बहुत अच्छी है । दूसरी बात यह है कि आप दूसरोंका वांछित प्रयोजन सिद्ध कर देते है इसलिये हम आपको अधिक क्या कह सकते है ॥ १२२ ॥ ऐसी प्रार्थना करके प्रतिष्ठाकार्य करनेकी स्वीकारता (मजूरी) कराके प्रतिष्ठाचार्य (इन्द्र) को अपने घर लाये । वहा चौकी विछाकर उसपर सिंहासन रक्खे और चौमुखी दीपक जलावे । सिंहासनपर लाल वस्त्र विछावे उसपर इन्द्रको विठाकर गीत नृत्य वाजोंके साथ लालवस्त्र माला आभूषण चदनसे शोभायमान चार सधवा जवान स्त्रियोंसे चदन अंगपर लगवावे ॥ १२३।१२४।१२५ ॥ फिर जिन आदिकी आशींवाद बुलवाता हुआ उस इंद्रके अगमे पीले उवटने सहित तैल लगवावे फिर पीली खलिसे अगका तेल दूरकर प्रासुक जलसे स्नान करावे । पुनः स्वादिष्ट भोजन कराके आभूषण कपड़े चंदन माला आदिसे सजावे । पश्चात् प्रतींद्र सहित उस इन्द्रको हाथी या घोडेपर चढाकर जैनमदिरमें लेजावे । उस समय ‘ निसिहि ’ ऐसा उच्चारण करके जिनमदिरमें प्रवेश करे (घुसे) और

समर्ताद्रं तमारोप्य द्विपं चैत्यालयं नयेत् ।निसिहीत्युच्चरन्नेप तं प्रविश्य जिनेश्वरम् ॥१२८॥
दर्शनस्तोत्रपाठेन त्रिःपरीत्य त्रिरानतः । कृतेर्यापथशुद्धिस्तं श्रुतं सूरिं समर्च्य च ॥ १२९ ॥
साधर्मिकैः परिवृतः सर्वसंघसमक्षतः । जिनाग्रे याजकतया सौधर्मेन्द्रोऽसि सोऽधुना ॥ १३० ॥
इत्युच्चैर्वदता दत्तान् समंत्रान् गुरुणाक्षतान् । स्वीकृत्यांजलिनोपांशु मंत्रमुच्चार्य नामितः १३१
स्वमूर्ध्नि विन्यसेत्सोऽहं सौधर्मेन्द्रं इति ब्रुवन् । प्रतिपद्येत चाष्टाहं सैकभक्तं सुनिर्मलम् ॥ १३२ ॥
ब्रह्मचर्यं विविक्ते च सुप्यात्सद्भावनारतः । शलाकापुरुषाख्यानध्यानस्वाध्यायभाग्भवेत् १३३

जिनेंद्र देवकी दर्शन स्तुतिपाठ पूर्वक तीन परिक्रमा देवे और तीनवार नमस्कार करे । फिर ईर्यापथशुद्धि करके शास्त्र और आचार्यकी पूजाकर साधर्मियोंकर घिरा हुआ सब संघके आगे जिनेन्द्रदेवके सामने पूजकपनेसे इंद्रको ऐसा कहे कि तुम अब सौधर्म इंद्र हो ऐसा ऊंचेस्वरसे बोले । उस समय इंद्र भी दीक्षागुरुसे दिये गये मंत्रित हुए अक्षतोंको अंजलिमें लेके फिर आप ओं ह्रीं आदि मंत्र पढके मैं वही सौधर्म इन्द्र हूं ऐसा कहता हुआ उन अक्षतोंको अपने मस्तकपर रखे ॥ १२६ । १२७ । १२८ । १२९ । १३० ॥ ॥ १३१ । १३२ ॥ वह इन्द्र आठदिनतक एकवार भोजन करे, निर्दोष ब्रह्मचर्य पाले और श्रेष्ठ

---

१ ओं ह्रीं ऽर्हं असिआउसा णमो अरहंताणं अनाहतपराक्रमस्ते भवतु ह्रीं नमः स्वाहा । एष मंत्रो गुरुणा प्रयोज्यः ।
२ इंद्रेण पुनरत्रैव ते स्थाने मे इति प्रयोज्यम् ।

परमेष्टिश्रुतगुरूनेव वंदेत वर्जयेत् । साधर्मिकसजातीयैरपि पंक्ति च भोजने ॥ १३४ ॥
तदा प्रभृति यष्टापि ब्रह्मयाजकवच्चरेत् । आयज्ञांतं विशेषेण तदाज्ञां न न लंघयेत् ॥ १३५ ॥
प्रतिष्ठासूचकैर्लेखैः संघं देशांतरादपि । आकारयेद् ब्रजेद् द्रष्टुं तां संघोपि यथाबलम्॥१३६॥
वेदीनिवेशादारभ्य यावद्यज्ञांतमात्मवान्। धर्मकारी गुणौचित्यकृपादानपरो भवेत् ॥१३७॥
गर्भरूपो विनेयोस्मीत्याक्षिप्तो गुरुभिर्वंदेत्।आक्रुष्टो याचकैश्चेष्टदाने योस्मि कियानिति॥१३८॥

भावनाओमे (विचारोमे) लीन हुआ एकात जगहमे सोवे और त्रेसठ शलाका पुरुषोके चरित्रका स्वाध्याय तथा शुभ ध्यानमे लीन रहे ॥१३३॥ पच परमेष्ठी जैन शास्त्र जैन गुरुओको ही नमस्कार करे । और अपनी जातिके साधर्मियोंके साथ भी एक पक्तिमें बैठकर भोजन न करे॥ १३४ ॥ उसी समयसे वह यजमान भी प्रतिष्ठाचार्यकी तरह एकवार भोजन ब्रह्मचर्यादिका आचरण करे और पूजाके उत्सवकी समाप्ति तक नियमसे इन्द्रकी आज्ञाको पाले, उलघन नहीं करे ॥१३५॥ वह यजमान प्रतिष्ठाको जाहिर करनेवाले लेखोसे (कुकुम पत्रिकाओसे) दूसरे देशोंसे भी सब साधर्मी भाइयोको बुलावे। पत्रीके पहुंचते समय वे साधर्मी भाई भी अर्हतप्रतिष्ठा देखनेकेलिये शक्तिके माफिक अवश्य जावें ॥ १३६ ॥ वह यजमान वेदी प्रतिष्ठासे लेकर बिंबप्रतिष्ठा तक आत्मज्ञानी होके धर्मके कार्य करता रहे और गुणी जनोंको यथायोग्य दानादि देता रहे और दुखितोंको करुणादान दे ॥ १३७ ॥ गुरुओके सामने ऐसा कहे कि मैं नया ही चेला हूं जो कुछ भूल हो

याजका यद्वत्सर्वे श्रावकैरपरैरपि। संभाव्या भक्तितः संघोप्याराध्यो धर्मकाम्यया॥ १३९॥
दातृसंघनृपादीनां शांत्यै स्नात्वा समाहिताः।शांतिमंत्रैर्जपं होमं कुर्युरिंद्रा दिने दिने ॥१४०॥
देशकालानुसारेण व्यासतो वा समासतः। कुर्वन् कृत्स्नां क्रियां शक्रो दातुश्चित्तं न दूषयेत् ॥
यथोक्तनिगदद्रव्यैः प्रयुक्तैर्व्यासतः क्रिया। मंत्रपात्रयथाप्राप्तद्रव्यैश्चेष्टा समासतः ॥ १४२ ॥

इति मंत्रमातिका।

वह क्षमा करें और याचकों (मांगनेवाले) से ऐसा कहे कि तुमको इच्छित दान देनेकी मुझमें शक्ति नहीं है ॥ १३८॥ अन्य श्रावक भी उस यजमानकी प्रशंसा करें कि तुमने बहुत अच्छा किया और यह यजमान भी धर्मकी इच्छा रखता हुआ आये हुए सब साधर्मियोंका भक्तिपूर्वक सत्कार करे ॥ १३९ ॥ वे इन्द्र भर्तींद्र भी दाता, श्रावकसंघ और राजा आदिको शांति (सुख) मिलनेके लिये प्रतिदिन स्नानकरके शांतिमंत्रोंसे जप और होम अवश्य करें ॥ १४० ॥ वह इंद्र देश और कालका विचार करके विस्तारसे या संक्षेपसे सब प्रतिष्ठाकी क्रियाओंको इसतरह करे कि जिसमें दाता (यजमान) का दिल न दुःखी हो अर्थात् दाताका उत्साह नष्ट न हो और न क्रोध (गुस्सा) उत्पन्न हो ॥ १४१ ॥ यदि शास्त्रमें विस्तारसे कही हुई सब चीजोंके लानेमें खर्च करनेकी सामर्थ्य हो तब तो विस्तारसे प्रतिष्ठाविधि करे अगर उसमें अधिक खर्च करनेकी शक्ति न हो तो शक्तिके माफिक जितना खर्च करसके

सज्जयित्वोपकरणान्याचार्यः कार्यसिद्धये। कृत्वा शातिविधानं च सूत्रयेन्मंडपादिकम्॥१४३॥
खोतेऽधःशोधिते पूर्णे समीकृत्य पवित्रिते। भूभागेऽर्हन्मृजांभोभिश्चारुक्षीरद्रुदारुभिः ॥१४४॥
शुभेह्नि मंडपं चित्रवस्त्रच्छन्नं विधापयेत्। त्र्यादित्रिवर्द्धिष्णुचतुर्विंशत्यतकरप्रमम् ॥ १४५ ॥
प्रोल्लसच्छल्लकीरंभास्तंभध्वजदलस्रजम्। चतुर्द्वारोर्ध्वेकोणस्थशुभ्रकुंभाष्टकोद्भटम् ॥ १४६॥

उसके अनुसार ही संक्षेपसे प्रतिष्ठाविधि करनी चाहिये ॥ १४२ ॥ इसप्रकार इंद्रप्रतिष्ठा-विधि समाप्त हुई। अब मडप आदि वनानेकी विधि कहते हैं—प्रतिष्ठाचार्य सव सामग्री तयार करके मडपादिकी निर्विघ्न रचना समाप्तिके लिये लघु या वृहत् शातिविधान करके मंडप वेदी आदिकी रचना करावे ॥ १४३ ॥ वह इसतरह है कि पहले तो जमीन खुदावे पीछे उसे सोधकर मट्टीसे भरके समतल करे फिर अर्हंत प्रतिमाके गधोदकसे छिडके। उसके वाद सुंदर—ऊपरसे सूखा कीडे आदिसे नहीं खाया हुआ ऐसा जो उदुम्वर पीपल आदि क्षीरवृक्ष उसकी लकडीसे तथा पांचरगोंवाले वस्त्रसे शुभ मुहूर्तमे मडफ तयार करावे और कमसे कम तीन हाथका मडप होना चाहिये और एक हाथकी वेदी वननी चाहिये। यह सक्षेप-विधि करनेमे जानना। और अधिक विधि करनी हो तो तीन तीन हाथ वढाते जाना अर्थात छह हाथका मडप ओर दो हाथकी वेदी करना। इसतरह सवसे अधिक चौवीस हाथका मंडफ और आठ हाथकी वेदी वनाना चाहिये। यह विस्तार विधि करनेके समय जानना ॥१४४॥ ॥ १४५ ॥ उस मडफमे सल्लकी वृक्ष और केलाके वृक्षके खभे हो, धुजा हरे पत्तोंकी माला-

तोरणोदारसौंदर्यं नानारत्नांशुकांचितम् । प्रलंबिमुक्ताकंभूपहारस्रकृतारिकोज्ज्वलम् ॥ १४७॥
चंदनच्छटया सिक्तं पुष्पप्रकरदंतुरम् । मुक्तास्वस्तिकविन्यासरंगावलिमनोहरम् ॥ १४८ ॥
कलशादर्शभृंगारयावारादिरमाकुलम् । संधूपधूमगंधांधभृंगझंकारकोमलम् ॥ १४९ ॥

इति मंडपनिर्मापणम् ।

पूते नवमतन्मध्यभागेऽर्हत्सवनाबुना । एकाद्यष्टांतहस्तासु नंदाद्याख्यासु वेदिषु ॥ १५० ॥

यें चकचकाट कर रही हो चार दरवाजे हों उन दरवाजोंके ऊपरकी चोटीपर चूनासे लेप किये गये आठ घडे रक्खे गये हो ॥ १४६ ॥ वह मंडप शोभायमान वंदनवारोंसे रमणीक हो, माणिक्य आदि पाचरत्नोंसे जडे हुए कपड़ेसे पूजित हो यानी जरी (सलमासितारा) के बने हुए चंदोएसे चमक रहा हो, मोतियोंके झूमका-हार-मालाओंसे तथा कांसे आदिकी वनी हुई घंटरियोंसे बहुत प्रकाशमान हो । घिसे हुए चंदनकी छींटोंसे युक्त, पुष्पोंसे शोभायमान, मोतियोंके सांतियोंकी रचनासे तथा अनेक रंगोंकी रचनाओंसे शोभित हो। कलश (घडा) दर्पण, झाडी, बोये हुए जौके अंकुर, छत्र चमर आदि सामग्रीसे सुंदर हो, काले अगर आदिकी वनी हुई दशांग धूपके धुंआंकी सुगंधीसे मस्त हुए भ्रमरोंकी झंकारध्वनीसे रमणीक होना चाहिये ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

इस प्रकार मंडप बनानेकी विधि समाप्त हुई ।

आगे वेदी बनानेकी विधि बतलाते हैं—अर्हतबिंबके गंधोदकसे नौमा मंडपको

यथास्वमामेष्टिकाभिः कार्या व्याससमायतिः। वेदीव्यासषडंशोच्चा चतुरस्रेशदिक्प्लुता॥१५१॥
शिलान्यासवदत्रार्चां कृत्वा पंचाममृद्धटान्। आक्रमंतीष्टिकाभिर्यद्वतानुगतिकैव सा॥ १५२॥

इति वेदीनिवर्तनम्।

पूतमृद्गोमयक्षीरद्रुक्षत्वक्काथहस्तया। संमार्ज्य प्रोक्ष्य लेप्यासौ स्नातालंकृतकन्यया ॥१५३॥

इति वेदीलेपनाविधानम्।

मध्यका भाग पवित्र करके उसकी आठों दिशाओमे नंदा १ सुनंदा २ प्रभा ३ सुप्रभा ४ मंगला ५ कुमुदा ६ पुंडरीका ७ इंद्रावेदी ८—इस तरह आठ वेदी एक हाथ चौडाईस लेकर आठहाथ तक मडपके अनुसार कच्ची ईंटोसे वनवावे, चौडाईके समान लंबाई रक्खे, चौड़ाईसे छठे भाग उचाई रक्खे तथा ईशानकोणमे कुछ नीची रक्खे–इस प्रकार चौकौन वेदी वनवावे॥ १५० ॥ १५१ ॥ यहांपर शिला रखनेकी तरह पूजा करे और पांच कच्चे मट्टीके घडे रक्खे॥ यह पाच घड़े रखनेकी रीति परंपरासे जानना ॥ १५२ ॥ इस प्रकार वेदी वनानेकी विधि पूर्ण हुई। अब वेदीके लीपनेकी विधि कहते है–नदीके किनारेकी वामी आदिकी पवित्र मट्टी, पृथ्वीपर नहीं गिरा हुआ पवित्र गोवर और ऊंमर आदि वृक्षोकी छालका वनाया काढा–इन तीनोको हाथमे लिये स्नान आभूपणसे तयार पैसी कन्याओसे उस वेदीको झड़वाकर और प्रोक्षणमंत्रपूर्वक जलसे छिडकवाकर लिपवाना

१ ओं क्ष्मां क्ष्मीं क्ष्मूं क्ष्मौं क्ष्मः प्रोक्षणजलाभिमन्त्रणम्।

त्रयोदशांगुलोद्देशे तुर्यवेद्यास्तु कारयेत् । हस्तमात्राणि पीठानि दिक्ष्वन्यासां यथोचितम् १५४
प्राग्मंडपसमं वेदीकर्णिमात्राध्वसंगतम् । ईशानदिशि निर्माप्य मंडपं तत्र कारयेत् ॥ १५५ ॥
वेदीं तस्यैव चार्धेन त्रिभागेणाथवा मिताम् । भांडध्वजस्तोरणाद्यैश्च भूषयेन्मूलवेदिवत् १५६

इति उत्तरवेदीनिवर्तनं ।

चाहिये ॥१५३॥ ओं क्ष्रां इत्यादि टिप्पणीमें मंत्र देखलेना । इस प्रकार वेदी लेपनकी विधि जानना । ईशानकोणकी वेदीको छोडकर सातवेदियोंके आगे तेरह २ अंगुल जमीन छोड़के पूर्वादि चारो दिशाओंमें जयादि आठ देवियोंके पूजनके लिये चार छोटीं वेदीं बनावे । और वीचकी वेदीसे ईशान दिशाकी तरफ छोटा मंडप बनवावे, और उस मंडपके तीसरे भाग प्रमाण उत्तर वेदी बनवावे और उसे मूलवेदीकी तरह ध्वजा छत्र तोरण आदिसे सजावे ॥ १५४ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ इस तरह उत्तरवेदीकी रचना हुई । इसके बाद वह इंद्र स्वच्छ कपडे माला आभूषण और चंदनका लेप-इन वस्तुओंसे सजा हुआ प्रतींद्र और प्रतिष्ठा करानेवाले दाताके साथ हाथी या घोड़ेकी सवारीपर चढके प्रतिष्ठाके पहले दिन सरोवर पर आवे । जिसके साथमें, आम्र पत्तोंसे ढके हुए दूब दही अक्षतसे पूजित फलसे भरे हुए कंठमें मालायें डाले हुए मजबूत नवीन ऐसे घडोंको ऊपर रखनेवाली सजी हुई प्रसन्नचित्त ऐसीं कुलीन स्त्रियां जा रहीं हों । और सब साधर्मी भाई तथा छत्र बाजे ध्वजा वगैर से घिरा हुआ जगतको आश्चर्य करता वह इंद्र शांतिके लिये जौ और सरसोंको मंत्रसे मंत्रित करके

अथेंद्रो दिव्यवस्त्रस्रग्भूषागोशीर्षसंस्कृतः । प्रतींद्रदातृयुग्धुर्ये गजं वास्त्रमधिष्ठितः ॥ १५७ ॥
सत्पल्लवच्छन्नमुखान् दूर्वादध्यक्षताचितान्। फलगर्भान्नवान् कुंभान् दधान् कंठलुठत्स्रजः१५८॥
बिभ्रतीभिः सुवेशाभिः सहर्षाभिः पुरंध्रिभिः । सर्वसंघेन च वृत्तश्छत्रतौर्यत्रिकध्वजैः१५९
विश्वं विस्मापयन् शांत्यै सर्वतो यवसर्षपान्। मंत्रांभ्यस्तान् किरन् गत्वा प्रतिष्ठाप्राग्दिने सरः
तस्मै दत्तार्घमाधाय तत्तीरे वास्तुवद्विधिम्। आह्वाननादिविधिना प्रसाद्य जलदेवताम्॥१६१॥
पूरयित्वा जलैरास्यस्थापितश्र्यादिदेवतान् । ताभिरेव पुरंध्रीभिर्महाभूत्या तथैव तान् १६२॥
कुंभानानाय्य संस्थाप्य चैत्यगेहे सुरक्षितान् । तथैवोत्तरकृत्याय दातृमंदिरमाश्रयेत्॥१६३॥

इति जलयात्राव्यावर्णनम् ।

चारो तरफ वखेर रहा हो ॥१५७। १५८। १५९ । १६० ॥ उस सरोवरको अर्घ देकर उसके किनारे पहलेकी तरह आह्वानादि विधिसे जलदेवताको प्रसन्न करे॥ १६१ ॥ उसके वाद उन घडोंको जलसे भरकर उनके मुखमें श्रीआदि देवियोंका स्थापनकर उन्हीं कुलीन स्त्रियोंके ऊपर रक्खे और उन घड़ोंको लाकर जिनमंदिरमें अच्छी तरह स्थापन करे। उसके वाद आगेकी क्रिया करनेके लिये यजमानके घरपर आवे ॥ १६२ । १६३॥ इस प्रकार जलयात्राविधि पूर्ण हुई। उसके वाद यजमान और वे इन्द्र स्नान तथा पूजा करके साधर्मी भाइयोंको स्वादिष्ट

---

१ ओं हूं क्षूं फट् किरिटि घातय २ परविघ्नान् स्फोटय २ सहस्रखंडान् कुरु २ परमुद्राश्छिंद २ परमंत्रान् भिंद २ क्ष क्ष हूं फट् स्वाहा । इति मंत्र ।

तत्रेंद्रा यजमानश्च स्नात्वाभ्यर्च्यार्हतोखिलम्। लोकं संतर्प्य भुक्त्वेष्टं सुस्वाद्वन्नं हितं मितम्॥
कृतारात्रिकमांगल्याः स्वारूढवरवाहनाः। तां यागभूमिं गच्छेयुः सयज्ञांगपरिच्छदाः १६५
अभीष्टसिद्धिरस्त्वेवं वादिन्याः पथि सुस्त्रियाः। पाणिपात्रात्फलादींद्रो गृह्णीयाच्छकुनेच्छया॥
चैत्यालयप्रवेशादिविधिं प्राग्वद्विधाय ते। कृत्वा गुरोर्बृहत्सिद्धयोगभक्ती तदाज्ञया॥१६७॥
त्रिधोपवासमादाय बृहदाचार्यभक्तितः। प्रणम्य चरणद्वन्द्वं तस्य गृह्णीयुराशिषः॥ १६८ ॥

इति उपवासादानविधानम्।

हितकारी भोजन करावें तथा आप भी जीमे ॥ १६४ ॥ पुनः मंगलदीपकसे आरती किये गये तथा अपनी २ उत्तम हाथी घोडा आदि सवारियोंपर बैठे हुए यज्ञांग और परिवार सहित वे इंद्रादिक उस यज्ञभूमिके पास जावें ॥१६५॥ मनो वांछित अर्थकी सिद्धि हो ऐसा रस्तेमें कहतीं हुई सौभाग्यवती स्त्रियोंके हाथसे शुभ शकुन होनेकी इच्छा करके फल लेवें ॥ १६६ ॥ वे इंद्रादिक चैत्यालयप्रवेश, परिक्रमा देना, ईर्यापथ शोधन, स्तुति पूजा इत्यादि विधि पहलेकी तरह करके गुरुकी आज्ञासे बृहत् सिद्ध भक्ति योग भक्ति करें ॥ १६७ ॥ फिर जलके छोडनेके सिवाय तीन प्रकार त्यागरूप उपवास करके तथा बृहत् आचार्य भक्ति करके गुरुके चरणकमलोंको नमस्कार करें और उनका आशीर्वाद ग्रहण करें ॥१६८॥ इस प्रकार उपवास ग्रहणविधि कही। इस प्रकार वे इंद्रादिक अपनी शुद्धिके लिये एकांतमें मंत्रस्नानादि करके पंच नमस्कार मंत्र एकसौ आठ वार जपें। उसके ॐ ह्रां आदि निसीही

अथो रहः पुरा कर्म कृत्वा जप्त्वापराजितम्। स्वशुद्धयेष्टाग्रशतं निगदंतो निषेधिकाम् ॥१६९॥
यागभूमिं प्रविश्येंद्रा जिनानभ्यर्च्य भक्तितः। सिद्धान्नत्वा महर्षीणां विदध्युः पर्युपासनम्॥
ततो याजकयष्टारो दध्युश्चंदनचर्चिताः। वराः स्रजो नवाऽस्यूतशुचिवस्त्राण्यलंकृतीः१७१॥
यज्ञदीक्षाध्वजं बिभ्रत्सौधर्मेंद्रोऽथ मंडपम्। प्रतिष्ठयेत् समतींद्रो वेदीं चोद्धृत्य मंडलम्१७२॥

इति प्रतिष्ठामहोद्योग ।

वेद्यामालिख्य चूर्णेन पंचवर्णेन कर्णिकाम्। बहिःषोडशपत्राणि चतुर्विंशतिमन्वतः ॥१७३॥

मंत्रको तीनवार बोलें ॥ १६९ ॥ फिर वे इंद्र यागस्थानमें प्रविष्ट होकर भक्ति सहित अर्ह-तकी पूजा करके व सिद्धोंको नमस्कार करके आचार्योकी पूजा करे ॥ १७० ॥ उसके बाद इंद्र और यजमान चंदनसे छांटीं हुई उत्तम चंपा चमेली आदिकी पुष्पमालाये बिना सिले नये शुद्ध कपडे और आभूषण धारण करे ॥ १७१ ॥ अनतर सौधर्म इंद्र प्रतींद्र सहित यज्ञ-दीक्षाके चिन्ह मौंजी बंधन आदिको धारण करके वेदीपर माण्डला बनाके मण्डपकी प्रतिष्ठा करे ॥ १७२ ॥ इस प्रकार प्रतिष्ठाका महान् उद्योग करे । उस वेदीमे पाच रंगके चूर्णसे बीचमे कर्णिका बनाकर बाहर सोलह पत्तोंवाला आकार बनावे। उसके चारों तरफ चौवीस पत्तोंवाला उसके बाद बतीस कमल पत्रोंवाला आकार खींचे और बाहर वज्रके चिन्ह बनावे तथा चार कोनोंमें चार दरवाजे हों ऐसी वेदीकी रचना करे ॥ १७३ । १७४ ॥ कई

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हं णमो अरहंताणं णिसिहिए स्वाहा। इति णिसीहीमंत्र ।

द्वात्रिंशतमतःपश्चात् वहिर्वज्राकितैर्युताम् । कोणैश्चतुर्भिः सचतुर्दिग्द्वारा वेदिमालिखेत्॥१७४॥
जयाद्यष्टदलान्येके कर्णिकावलयाद्बहिः । मन्यंते वसुनंद्युक्तमूनशैस्तदुपेक्ष्यते ॥ १७५ ॥
काश्मीरादिशुभद्रव्यलिखिताखंडमंडलम् । नवं चंद्रोपकं चोर्ध्वं तयोर्वेद्योर्वितानयेत् ॥१७६॥
हेमापामार्गदर्भान्यतमकृतशलाकया । चूर्णाकीर्णे वेदिपृष्टे वर्तयेद्यागमंडलम् ॥ १७७ ॥
भूर्जे गंधेन चालिख्य क्ष्मार्ह पीठाक्षरं तया । प्रणवं दक्षिणे भागे वामे सं सविसर्गकम् १७८

विद्वानोंका ऐसा कहना है कि कर्णिकाकी गोलार्द्धके बाहर जया आदिके आठ पत्र बनावे परंतु वसुनंदि आचार्य कथित प्रतिष्ठा सिद्धांतके जाननेवाले उस वचनको नहीं स्वीकार करते । क्योंकि उनका मानना अज्ञानताको लिये हुए है ॥ १७५ ॥ यागमंडल और ईशान वेदी—इन दोनोंके ऊपर नया चँदोआ बांधै । उस चंदोवेमें केशर आदि शुभ द्रव्योंसे,यागमंडल अभिषेकमंडल लिखा हो ॥ १७६ ॥ उस वेदीके पिछाड़ीके भागपर सोना अपामार्ग और डाभ इनमेंसे किसी एककी सलाई बनाकर उसमें रंग भरके वेदीके पृष्ठभागमें यागमंडलको लिखै ॥ १७७ ॥ फिर भोजपत्रपर घिसे हुए चंदन कपूर मिश्रित उस सलाईसे क्ष्मार्ह ऐसा मध्यबीज लिखे, दाहिने भागमें ओं लिखे बाएं भागमें स लिखे उसके ऊपर भागमें अर्हं लिखे उसे ओं णमो अरहंताणं ह्रौं स्वाहा इस मूलमंत्रसे घेर दे ।उसके बाद ओं अर्हं आदिमें तथा स्वाहा अंतमें है जिसके ऐसे केवलिमंत्रको अर्थात् ओं अर्हं अर्हत्सिद्धसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा इस मंत्रको लिखे ॥ उसके चारो तरफ नंद्यावर्तचक्र, यवचक्र और ओं आदिमें

तस्यार्हं बीजमूर्ध्वे च मूलमंत्रेण वेष्टयेत् । ततः केवलिमंत्रेण स्वाहांतोमर्हमादिना ॥ १७९ ॥
चक्रेण नंद्यावर्तानां यवानां चोंमुखेन च। चत्तारीत्यादिना स्वाहांतेनाऽर्जांतश्च तन्न्यसेत्१८०

अथ यागमंडलोद्धरणम् ।

यथार्हवर्णचूर्णौघैर्न्यस्याग्नेःक्षेत्रपं दिशि । ईशस्य वास्तुदेवादीन् न्यस्यातःकोणशो द्विशः १८१

स्वाहा अंतमें ऐसे चत्तारि इत्यादि टिप्पणीमेंसे देखकर लिखे । उस लिखे यंत्रको कमलके मध्यभागमें रक्खे ॥ १७८ । १७९ । १८०॥ अब यागमंडलका उद्धार बतलाते हैं । यथायोग्य रंगके अनुसार चूर्णसे आग्नेय दिशामें क्षेत्रपालका स्थापन करे, ईशानकोणमें वास्तुदेवका पुंज रखे, चारों कोनोंमें वायुकुमार मेघकुमार अग्निकुमार आदिके पुंज रखे और कोनोंके आगे दो २ वज्र बनावे । तथा अपने २ मन्त्रोंसे कमलके मध्यमें स्थित पंचपरमेष्ठी आदिकी पूजा करे । उसके बाद सोलह विद्यादेवी चौवीस जिनमाता बत्तीस इन्द्रादिकोंका पत्रमें

---

१ ओं नमो अरहंताणं ह्रीं स्वाहा । मूलमंत्र । ओं ह्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा । केवलिमंत्र । ओं अर्हं नंद्यावर्तवलयाय स्वाहा । नंद्यावर्तवलयस्थापन । ओं अर्हं यववलयाय स्वाहा । यववलयस्थापनम् । ओं चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि स्वाहा। इति मंगललोकोत्तमशरणमंत्र

२ वास्तुदेवका सफेद, वायुकुमारका हरा, मेघकुमारका काला, अग्निकुमारका लाल पुंज होता है । ईशान दिशासे आरंभ करे ।

वज्रान स्वमंत्रैः पश्चातः परब्रह्मादिकान यजेत्।ततश्च विघ्नादेव्यादीन् न्यस्य पत्रादिषु क्रमात् १८२
चत्वारि मंगलादीनि त्राणादित्रितयं शिला। भद्रासनं च संस्थाप्य ततो मेर्वां यथोचितम् १८३
पीठेपूत्तरवेद्यां च वर्तयित्वा यथायथम् । मंडलानि विधानेन वक्ष्यमाणेन चार्चयेत् १८४

इति मंडलार्चनम् ।

इति मूर्त्तिमाध्यायन् विधिं सम्यक्कृतक्रियः।श्रद्दधानो यथाशास्त्रं जिनबिंबं प्रतिष्ठयेत् १८५॥
या त्रिसंध्यं दिने द्वे वा चत्वारीशांयितासना। यथात्मविभवं कार्या सादेशाअनुरोधतः १८६

स्थापन करके क्रमसे पूजे ॥ १८१ । १८२ ॥ पुनः यागमंडलकी वेदीमें यथायोग्य छत्रादि आठ, आयुधादि आठ, पताका आठ और कलश आठ–इस तरह चार मंगलादि; त्राण सरसों जौके अंकुर–ये तीन चारों कोनोंमे तथा चंदनादि घिसनेकी शिला और सोने चांदी चंदन पीपल आदि क्षीरवृक्षका काठ–इत्यादिका बनाया हुआ पट्टारूप गर्भावतार कल्याणके लिये भद्रासन–ये सब वस्तुएं रक्खे ॥ १८३ ॥ उत्तर वेदी (ईशान वेदी) व जन्माभिषेक वेदीपर मांडला खींचकर आगे कहे जानेवाली विधिसे पूजा करे ॥ १८४ ॥ इस प्रकार मंडलकी पूजा कही गई। इस तरह याजकाचार्य शास्त्रमें कही गई विधिको विचारता हुआ गर्भ जन्मादि संबंधी क्रिया अच्छी तरह करता हुआ शास्त्रानुसार श्रद्धान करता हुआ जिनप्रतिमाको प्रतिष्ठित करे ॥ १८५ ॥ गुरुके उपदेशके अनुसार तीनों संध्या व एक दिन दो दिन चार दिनतक पूजा होम जपादिक क्रिया शक्तिके माफिक करे ॥ १८६ ॥ जिन

ततः कृत्वाभिषेकादि यज्ञदीक्षां विसृज्य च। मूलदीक्षास्थितः कुर्याद्राचार्याऽवभृथक्रियाम्॥
देवे क्षेत्रादितीर्थे च नियुज्यार्थं स्वशक्तितः। नत्वेन्द्रं स्वं समर्प्यास्मै दातागंतूंश्च मवदेत् १८८

इति जिनप्रतिष्ठाविधानम्।

सिद्धचक्रं गणधरवलयं माच्र्य तद्विशा। सारस्वतादियंत्रं च सिद्धार्चादि प्रतिष्ठपेत् ॥ १८९॥
जीर्णचैत्यालयोद्धारे मात्कने चैत्यमंदिरे। अपूर्वार्चाप्रवेशे च यथार्हं शांतिमाचरेत् ॥१९०॥

इति शेषप्रतिष्ठाविधानम्।

जिन प्रतिष्ठाके बाद प्रतिष्ठाचार्य अभिषेकादि यज्ञकी दीक्षा (वेश) को छोड़कर श्रावक व्रतरूप मूल दीक्षामें स्थित हुआ पंचगुरु भक्ति शांतिपाठ विसर्जनादि क्रियाको करे ॥ १८७ ॥ वह दाता यजमान अपनी सामर्थ्यके अनुसार जिनबिंबके निमित्त, क्षेत्र घर कुआ बगीचा आदि धर्मसाधनोंके निमित्त धनको लगाकर और उन (प्रतिष्ठाचार्य) को नमस्कारपूर्वक शक्तिके अनुसार धन देकर आये हुए सज्जनोंको यथायोग्य संतोषित करे १८८॥ इसप्रकार जिनबिंब प्रतिष्ठाविधि पूर्ण हुई। उसके बाद जिनप्रतिष्ठाशास्त्रोंमें कथित रीतिसे सिद्धचक्र गणधरवलयकी पूजा करके तथा सारस्वत श्रुतस्कंध आदि यंत्रको पूजकर सिद्ध आचार्य आदिकी प्रतिमाको प्रतिष्ठित करे ॥ १८९ ॥ जीर्ण (पुराने) जिनमंदिरके उद्धारमें अथवा पुराने जैनमंदिरमें अपूर्व प्रतिमाके आगमनमें यथायोग्य शांतिविधान करे ॥१९०॥ इस प्रकार शेष सिद्धादि प्रतिमाकी प्रतिष्ठाविधि जानना। मैंने (आशाधरने)

एतत्सूत्रं दृब्धमेतिलदृष्ट्या ग्रंथार्थाभ्यां धारयन् यः सुधीमान् ।
निर्मातीन्द्रः कर्म निर्देक्ष्यमाणं सद्गार्हस्थाशाधरैः पूज्यतेसौ ॥ १९१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सूत्रस्थापनीयो नाम प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

अनादि सिद्धांतोंको जानकर इस सूत्ररूप प्रतिष्ठाविधिको रचा है। जो अति बुद्धिमान इस ग्रंथके शब्द और अर्थको धारणकर याजकाचार्य हुआ आगे कहे जानेवाली प्रतिष्ठाविधिको करता है वह इन्द्र दानपूजादिकर्मवाले उत्तमगृहस्थपनेको चाहनेवाले सद्गृहस्थोंसे नमस्कारादिद्वारा आदरणीय होता है ॥ १९१ ॥

इसप्रकार पंडितवर आशाधरविरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीयनामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें सूत्रस्थापनीय नामा पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

---

१ दानपूजाप्रतिष्ठाजिनयात्रादिकर्मनिष्ठ' गृहस्थ' तस्य भाव कर्म वा ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथातस्तीर्थोदकादानविधानमनुवर्णयिष्याम —

दत्वा पद्माकरायार्घं वास्तुदेवाय चाननीम् ।
संमार्ज्य वायुभिर्मेघैः प्रोक्ष्य पूत्वाग्निनोरगान् ॥ १ ॥
इष्ट्वोद्धृतार्चिते साष्टदलाब्जे मंडलेऽथवा । सैकाशीतिपदे न्यस्य शांत्यै संस्नापयेऽर्हतः ॥ २ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

इस सूत्रस्थापनके बाद जलयात्राविधि अनुवादरूपसे कहते हैं,—सरोवरको और वास्तुदेवको अर्घ देकर वायुकुमार देवोंके आह्वाननसे भूमिको साफकर मेघकुमार देवोंके आह्वाननसे छिडककर अग्निकुमार देवोंके आह्वाननसे अग्नि जलाकर साठ हजार नागोंको पूजकर अष्टकमल पत्रवाले मांडलेमें लघुशांतिकर्म करके तथा इक्यासी कोठोंवाले मांडलेमें बृहत्शांतिविधान करके मैं अर्हंतका अभिषेक करता हूं ऐसा कहता हुआ अर्हंतका अभिषेक करे ॥ १ ॥ २ ॥ फिर शांतिकर्म आरंभ करनेके लिये सरोवरके किनारे पुष्पांजलि

शांतिकर्मोपक्रमाय सरस्तीरे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

यत्पद्मामृतकंभनात्सुमनसां मान्योसि दिक्चक्रमत्
कल्लोलोसि सदा यदाश्रितवतां संतापहंतासि यत् ।
लोके यद्यपि तावतैव वदसे क्षीरोदवत्त्वं जिन-
स्नानीयेन तथापि तद्वदुदकेनार्घ्योसि कासार नः ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं पद्माकरायार्घं निर्वपामीति स्वाहा । वास्तुदेवाद्यर्घमंत्रा वक्ष्यंते ।

मध्ये दिक्ष्वर्हतोन्यान् प्रदधदधिविदिक् तांस्त्रिशो मंगलादीन्
संसारात्यक्षणात्तस्फुटमहिमभरं धर्ममूर्ध्वं शिवानाम् ।

फेंके और आगे कहे जानेवाले यत्पद्मामृत इत्यादि श्लोकको पढकर ॐ ह्रीं बोलकर सरोवर (तालाब) को जलसे अर्घ देवे ॥ वास्तुदेवादिके अर्घमंत्र आगे कहेंगे ॥ ३ ॥ उस मंडलकी पूर्वादि चार दिशाओंमे सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधुओंका स्थापन करे, विदिशाओंमें मंगल लोकोत्तम शरण इन तीनोंको लिखे, सिद्धोंके ऊपर अत्यंत महिमावाले धर्मको स्थापन करे और आठ पत्रोंपर जयादि आठ देवियोंका स्थापन करे और दश दिशाओंमें दश दिक्स्वामियोंको रक्खे, सोमद्वारपालके ऊपर भागमें सूर्यादि नौग्रह स्थापन करे । वह मंडल चौकोन और चार दरवाजेवाला होना चाहिये ऐसा मंडल कल्याणकारी है । ऐसा

पत्रेष्वष्टौ जयाद्या दशसु दिगधिपान् दिक्षु सोमस्य चोर्ध्वे
मूर्यादीन साम्रिसद्वारश्मिह शुभदं मंडलं वर्तयामि ॥ ४ ॥

इति पुष्पांजलिः ।

अष्टाविंद्रादिपीठानि यथास्वं दिक्षु कल्पयेत्। शेषसोमासने चेन्द्रपाशि दक्षिणपार्श्वयोः ॥५॥
अथवा–मध्ये मध्यवदंबुजेऽष्टसु वहिः पूर्वस्य पत्रस्थवद्रोहिण्याद्यमरीर्धिरष्टसु दधद्यक्षीस्त्रिरष्टस्त्रापि
देवेंद्रांश्चतुरष्टसु प्रतिदिशं दिक्पालकानगुप्तकान वज्राग्रेषुततोग्रहानपि लिखाम्यत्रेष्टकृन्मंडलम् ६

कहकर पुष्पांजलि क्षेपै ॥ ४ ॥ अब शांति विधानके लिये द्वितीय मंडल कहते हैं–आठ दिशाओंमे आठ इंद्रादिकोंके आसन यथायोग्य कल्पना करे और धरणेंद्र व सोम इन दोनों के आसन इंद्र और वरुणकी दाहिनी तरफ कल्पना करे ॥ ५ ॥ अथवा बृहत् शांतिक मांडलेका विधान कहते हैं–माडलेके मध्यभागमें पहलेकी तरह अष्टदल कमल बनावे उनमें पंच परमेष्ठी, मंगल, लोकोत्तम, शरण,–ये आठ लिखे । उसके बाद सोलह पत्रोंपर रोहिणी आदि सोलह विद्या देवता स्थापन करे । चौवीसपत्रोंपर चक्रेश्वरी आदि चौवीस शासन देवता (यक्षी) ओंको, बत्तीस कोठोंमें देवेंद्रोंको (यक्षोंको) स्थापन करे । हर एक दिशामें दिक्पालोंको और वज्रोंके अग्रभागमें सूर्यादि नवग्रह लिखे–इस तरह इस सरोवरके किनारे बृहत् शांतिक मंडलका स्थापन करता हूं जोकि इष्टका देनेवाला है ऐसा कहकर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ६ ॥ पूजा करनेमें हर्षित हुआ नागेंद्र इत्यादि श्लोकसे पिसे हुए

पुष्पांजलि ।

नागेंद्रचूर्णेन सितेन रैदपीतेन नीलप्रभनीलकेन ।
भक्ताभरक्तेन लिखासितामकृष्णेन सन्मंडलामीष्टिहृष्टः ॥ ७ ॥

चूर्णपंचकस्थापनं ।

अथाधिवास्य चिद्रूपमित्यादिविधिना परम् । अर्हदादीन् धर्मं च मध्ये मंडलमर्चयेत् ॥८॥

पुष्पाजलि ।

प्रत्यर्थिव्रजनिर्जयान्निशलसद्धीवीर्यहक्शर्मणो लोकेषु त्रिषु मंगलोत्तमविपन्नाणोल्वणानाल्यवत्-
धर्मचक्रुवतोभिदावदधतो यानुत्किरंत्यात्मनो लोकेशानहमर्हितानघभिदेभ्यर्हामि तानर्हत.॥९॥

ॐ ह्रां अरिप्रमथनाद्रजोरहस्यनिरसनाच्च समुद्भिन्नानंतज्ञानादिचतुष्टयतया शक्रादिकृतामनन्यसम-
विनीमर्हणामर्हता मगललोकोत्तमशरणभूतानामर्हत्परमेष्टिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ॥ १ ॥

पांच रगोको स्थापन करे । यह चूर्ण पांचका स्थापन जानना ॥ ७ ॥ उसके बाद निश्चय नयसे (अमेद बुद्धिसे) " चिद्रूप " इत्यादि आगे कहे जानेवाले श्लोकको पढकर कर्णिकामें पुष्पांजलि क्षेपे और " स्वामिन् संवौषट् " इत्यादि आगे कहे जानेवाले श्लोकको पढकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण-इन तीनोंको करके अर्हतादिकी पूजा करे ॥ ८ ॥ उन अर्हतादिकोंकी पूजाके अर्घ कहते हैं । " प्रत्यर्थि " इत्यादि नवमा श्लोक पढकर फिर

सामोदैः स्वच्छतोयैरुपहिततुहिनैश्चंदनैः स्वर्गलक्ष्मी
लीलार्घैरक्षतौघैर्मिलदलिसुगमैरुद्गमैर्नित्यहृद्यैः ।
नैवेद्यैर्नव्यजांबूनदमदमकैर्दीपकैः काम्यधूम-
स्तूपैर्धूपैर्मनोक्षग्रहिभिरपि फलैः पूजयेत्राऽर्हदीशान् ॥ १० ॥

प्रत्येकार्पितसप्तभंग्युपहतैर्धर्मैरनंतैर्विधि-
ध्रौव्याभेदतदत्ययैरनुगते न्यक्षेपि लक्ष्ये सदा ।
तुल्येऽस्मिन् वहिरेतदुद्यतमचिद्रूपं विधातून् समं
मोक्षन् मंगललोकवर्यशरणान्येतर्हि सिद्धान् यजे ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सामग्रीविशेषविश्लेषिताशेषकर्ममलकलंकतया ससिद्धिकात्यतिकविशुद्धविशेषाविर्भावादभिव्यक्तपरमोत्कृष्टसम्यक्त्वादिगुणाष्टकविशिष्टा उदितोदितस्वपरप्रकाशात्मकचिच्चमत्कारमात्रपरमत्रपरमानंदैकमयीं निष्पीतानंतपर्यायतयैक किंचिदनवरतास्वाद्यमानलोकोत्तरपरममधुरस्वरसभरनिर्भर कौटस्थाम-

---

ओं ह्रीं कहकर पुष्प चढावै । फिर "सामोदै" इत्यादि श्लोक पढकर अर्हंतको जलादि अष्ट द्रव्य चढावै ॥ ९ ॥ १० ॥ फिर "प्रत्येकार्पित" यह श्लोक कहकर ओं ह्रीं इत्यादि पढकर पुष्प चढावै। उसके वाद "सामोदैः" यह कहकर सिद्धपरमेष्ठीको अर्घ चढावे॥११॥१२॥

धिष्ठिता परमात्मनामासंसारमनासादितपूर्वामपुनरावृत्त्याधितिष्ठता मगललोकोत्तमशरणभूताना सिद्धपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः.... ... .. फलैः पूजये सिद्धनाथान् ॥ १२ ॥

न्यक्ताशेषश्रुतोपस्कृतिकापितमस्कांडगंभीरधीर–
स्वांताः षट्त्रिंशदुच्चैः स्फुरदसमगुणाः पच मुक्त्यै स्वयं ये ।
आचारानाचरंतः परमकरुणया चारयंते मुमुक्षून्
लोकाग्रण्यः शरण्यान् गणधरवृषभान् मंगलं तान्महामि ॥ १३ ॥

ओं हूं व्यवहाररत्नत्रयावधानसमुद्भिद्यमानानिश्चयरत्नत्रयैकलोलीभावमनुभवतमानंदसान्द्रं शुद्धस्वात्मानमभिनिविशमानानामपि स्वस्वरूपोपलब्धिप्रेयसीदृढतरपरिरंभसुखाभिलाषुकमुमुक्षुवर्गानुग्रहैकसर्गायमाणांत करणाना मगललोकोत्तमशरणभूतानामाचार्यपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः . . .. पूजये धर्मसूरीन् ॥ १४ ॥

उसके बाद " व्यक्ताशेष " इत्यादि श्लोक पढकर " ॐ हूं " इत्यादिसे आचार्यपरमेष्ठीको पुष्पांजलि क्षेपण करे फिर " सामोदैः " इस श्लोकको बोलकर आचार्यपरमेष्टीको जलादि अष्ट द्रव्यसे अर्घ चढावे ॥ १३ ॥ १४ ॥ फिर " सांमोपांग " इस श्लोकको पढकर "ओं ह्रौं"

सांगोपांगागमज्ञाः सुविदितमहिताः सूक्तियुक्तिप्रपंचै-
र्विद्यानिष्यंदतृष्णातरलितमनसः प्रीणयंतो विनेयान् ।
कीर्तिं धर्माय लोकोत्तरगतिकृपणायासकृत्कोपयंतः
स्याता मांगल्यलोकोत्तमशरणतया येऽर्चयेऽध्यापकांस्तान् ॥ १५ ॥

ॐ ह्रौ निरंतरघोरदुःखावर्तविवर्तनचतुर्गतिपरिवर्तनार्णवतूर्णनिस्तीर्णमनोरथरथमहारयमनस्कारविनेयवारप्रवचनानुशासनव्यसनानामपि योगसुधारसायनाभ्याससन्निकृष्यमाणाजरामरत्वपर्यायमहिम्ना मंगललोकोत्तमशरणभूतानामुपाध्यायपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः . ... पूजये पाठकेन्द्रान् ॥ १६ ॥

सर्वज्ञो यज्ञविद्याहृदयपरिचयप्रोच्छलन्निर्विकल्प-
प्रत्यग्ज्योतिः प्रतिष्ठान्यदुरधिगमभ्युद्गमोद्गारनिष्ठान् ।
अन्योन्यस्पर्धमानात्रिदशशिवपदश्रीकटाक्षच्छटैर्ना
चिन्मूर्तिं बिभ्रतोऽग्र्यान् शरणमिह यजे मंगलसर्वसाधून् ॥ १७ ॥

इत्यादिसे उपाध्याय परमेष्ठीको पुष्पांजलि क्षेपै पुन "सामोदै" इस श्लोकको बोलकर उपाध्यायपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १५।१६ ॥ उसके बाद "सर्वज्ञो" यह श्लोक बोलकर "ओं ह्" इत्यादिसे सर्वसाधुपरमेष्ठीको पुष्पांजलि अर्पण करे फिर

ॐ ह्री वैस्रसिकपरमचिन्मयविश्वैश्वर्यपदापहारकठोरकर्मदुष्कर्मशात्रवशक्तिशातनोत्सिक्तचिच्छक्तिव्यंजकप्रकामदुर्लक्षव्यतिरेकक्षेत्रज्ञाशातरप्रवेशदुर्ललितबुद्ध्यनुबंधप्रबंधमानसद्ध्यानसामिद्धसहजानदामृतरसास्वादनावधीरितपरममुक्तिसपत्निप्रयासमागमोत्कंठाना मंगललोकोत्तमशरणभूताना सर्वसाधुपरमेष्ठिनामष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः .. . . पूजये साधुसिद्धान् ॥ १८ ॥

एवं मध्येऽर्हतो दिक्षु च चतुर सिद्धादीनभ्यर्च्य विदिक्षु भित्वा कर्मगिरीनित्यादिमंत्रैश्चत्वारि मगलानि लोकोत्तमान् शरणानि चार्घैः संभाव्य सिद्धोपरि धर्मस्येत्थ पूजा कुर्यात् ।

अश्रांतमतिबंधकव्यपगमैकांतस्फुटच्चिरकला-
रूपेणापि जगत्यचिंत्यचरितस्तंतन्यते येन ना ।

" सामोदैः " इसे पढकर सर्वसाधुपरमेष्ठीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १७।१८ ॥ इस प्रकार माडलेके बीचमें अर्हतको, चार दिशाओंमे सिद्धादि चार परमेष्ठियोंको पूजे और विदिशाओमे " भित्वा कर्मगिरीन् " इस आगे कहे जानेवाले श्लोकमंत्रसे चार मंगल चार लोकोत्तम चार शरणको अर्घोंसे पूजकर सिद्ध परमेष्ठीके ऊपर स्थापित धर्मकी इस प्रकार पूजा करे ॥ वह इस तरह है कि पहले " अश्रात " इत्यादि श्लोक पढे उसके बाद " ओं ह्रीं " से धर्मको पुष्प क्षेपण करे फिर " सामोदै " इस श्लोकसे जिन धर्मकी जलादि

यत्सर्वस्वरसाय योगिपतयोप्याशासतेंत्यक्षणं
तच्छ्रेयो यदनुग्रहश्च वृषमप्यर्चामि तं तद्गुणम् ॥ १९ ॥

ॐ ह्रीं भेदभावनानियतिनिर्मिता प्रादेशिकीमप्यभेदरूपता योगविशेषसौष्ठवटंकेन विष्वद्रीचीमुत्कीर्य विश्रांतस्य मंगललोकोत्तमशरणभूतस्य केवलिप्रज्ञप्तधर्मस्याष्टतयीमिष्टिं करोमीति स्वाहा ।

सामोदैः ... पूजये जैनधर्मम् ॥ २० ॥

एष व्यासेन पूजाविधि., समासेनात्र पुनर्मंगलाद्यर्घान् पृथक् न दद्यात् ॥ एवमर्हदादीनभ्यर्च्य शरच्चंद्रमरीचिरोचिर्पोतश्वेतासि चिंतयन्ननादिसिद्धमंत्राभिमंत्रितकर्पूरहरिचंदनद्रवाभिलुलितसुरभिशुभ्रपुष्पांजलिभिरेकविंशतिवारानधिवास्य पूर्णार्घदानेन बहुमानयेत् ।

तेमी पंच जिनेन्द्रसिद्धगणभृत्सिद्धांतदिक्साधवो
मांगल्यं भुवनोत्तमाश्च शरणं तद्वज्जिनोक्तो वृषः ।

अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ १९।२० ॥ यह विस्तारसे पूजाविधि कही गई है। यदि संक्षेपमें करना हो तो मंगलादिकके अर्घोंको जुदा न चढावे। इस प्रकार अर्हंतादिकोको पूजकर निर्मल चंद्रमाकी किरणके समान प्रकाशमान अर्हंतका अपने मनमें ध्यानकर (मेरा आत्मा भी अर्हंत स्वरूप है ऐसा चिंतवनकर) अनादि सिद्धमंत्रसे मंत्रित कपूर मिले हुए घिसे हुए मलयागिरिचंदनसे छांटे गये सुगंधित पुष्पोकी अंजलि लेकर इक्कीसवार पूर्णार्घ देकर

अस्माभिः परिपूज्य भक्तिभरतः पूर्णार्घमापादिताः
संघस्य क्षितिपस्य देशपुरयोरप्यासतां शांतये ॥ २१ ॥

पूर्णार्घम् ।

इत्यार्चिताः परब्रह्मप्रमुखाः कर्णिकार्पिताः । संतु सप्तदशाप्येते सभ्यानां शमशर्मणे ॥ २२ ॥

ततश्च जयादिदेवतागणान् वक्ष्यमाणक्रमेणोपचर्य सूर्यादिग्रहान् सोमदिक्पालोपरि न्यवस्थाप्य विधिवत् पूजयेत् । तथाहि—

रक्तस्तुल्यरुगंबरादियुगिनः श्वेतः शशी लोहितो
भौमो हेमनिभौ बुधामरगुरू गौरः सितश्चासिताः ।

मडलकी पूजा करे। उस समय "तेमी" इत्यादि श्लोक पढे ॥ २१ ॥ उसके वाद "इत्यर्चिता" यह आशीर्वाद श्लोक पढे ॥ २२ ॥ उसके वाद जया आदि देवताओंको कहे-जानेवाले क्रमसे पूज करके सूर्यादि नवग्रहोंको सोमदिक्पालके ऊपरभागमें स्थापन करके विधिपूर्वक पूजे। उसीको वतलाते हैं–सूर्यका रंग लाल है और वस्त्र चमर छत्रविमान भी लाल हैं, चद्रमाका वर्ण सफेद है, मंगलका लाल वर्ण है, बुध और वृहस्पतका रग सुवर्णके समान है, शुक्रका रग सफेद है, शनि, राहु और केतु–ये तीनो काले रगके हैं। इन ग्रहोंको

---

1 सूर्यादि राहुपर्यंत ग्रहोंको आठ दिशाओंमें स्थापन करे बुध और वृहस्पतिके मध्यमें केतुका आसन स्थापित करे

कोणस्थातनुकेतवो जिनमहे हुत्वेह पूर्वादितः
सोमोर्ध्वेधिकुशं निवेश्यमुदमाप्यंते सवर्णार्चनैः ॥ २३ ॥

पूर्वादिदिक्षु सवर्णाक्षतपुंजान् स्थापयित्वा तदुपरि सूर्यादीना क्रमेण कुंकुमाद्यक्तदर्भासनानि विन्यसेत्-

इति दर्भन्यासविधानम् ।

प्रारब्धाः फणियक्षभूतक्रतुभिर्देहार्तिवित्तक्षतिः
स्थानभ्रंशरसाद्यसाम्यविपदस्तत्कल्पनाकल्पतः ।

जिन प्रतिष्ठोत्सवमें आह्वानन कर सोम दिक्पालके ऊपरभागमे दर्भ रखकर पूर्वादि दिशाओमें स्थापन कर समान वर्णकी पूजन द्रव्यसे पूजे तो आनदमंगल प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ उनके समान रंगवाले अक्षतके पुंजोको रखकर उनके ऊपर सूर्यादिके क्रमसे कुंकुमादि रंगे-हुए दर्भ (दाभ) के आसनोको रखे । भावार्थ—सूर्यके लिये उत्तम केसरसे दाभको रंगे, चंद्रमाके लिये चंदनसे, मंगलके लिये सिंदूरसे, बुध बृहस्पतके लिये हलदीसे, शुक्रके लिये चंदनसे और शनि राहु केतुके लिये कस्तूरीसे रंगे । इस प्रकार दर्भ रखनेकी विधि वर्णनकी गई ॥ नागकुमारदेव शरीरपीडा करते है, यक्षदेव धन हरते है भूतदेव स्थानभ्रष्ट करते हैं, राक्षसदेव धातुवैषम्य करते है इसलिये नागकुमारादिकी स्थापना करके पूजनेसे पूर्वोक्त सब विघ्न दूर हो जाते हैं तथा सूर्यादिग्रहोंकी पूजा करनेसे कापालिक भिक्षु वर्णी

येष्विष्टेषु च तापसादिषु शमं यांत्याशयित्रार्चिते-
ष्वातन्वंतु गुरुप्रसादवरदास्तेर्कादयो वः शिवम् ॥ २४ ॥
कुमारदीक्षितेष्वेकतममर्चयतां रुजः । कुजः कुष्याद् ग्रहाः शेषाः सवर्णेषु जिनेषु वः ॥ २५ ॥

आदित्यादीना सपर्याविध्यनुवादमुखेन प्रभावख्यापनाय प्रतिदिश पुष्पोदकाक्षतं क्षिपेत् ।

ग्रहाः संशब्दाये युष्मानायात सपरिच्छदाः ।
अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ २६ ॥

आवाहनादिपुरस्सर प्रत्येकपूजोपक्रमाय पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

सन्यासी आदिकर किये गये उपद्रव शात होते है । ऐसे गुरुके प्रसादसे वर देनेवाले सूर्यादि ग्रह तुम भव्योका कल्याण करें ॥ २४ ॥ अथवा वाल ब्रह्मचारी वासुपूज्य मल्लि नेमि पार्श्व महावीर–इन पांचोमे किसी एकको पूजनेसे मंगल ग्रह रोग शांत करता है । और ग्रहोंके समान वर्णवाले तीर्थंकरोंमेसे किसी एकको पूजनेसे वाकी अन्य ग्रह भी रोगोका नाश करते है ॥ २५ ॥ सूर्यादि ग्रहोकी पूजाविधिके द्वारा प्रभाव वतलानेके लिये सव दिशाओंमे पुष्प जल अक्षतोंको क्षेपण करे । अब आह्वानादि पाच उपचारोसे उनकी पूजा दिखलाते है–हे सूर्यादि ग्रहो ! हम तुमको वुलाते है, तुम सपरिवार आओ, यहां तिष्ठो, तुम सबको हम आदरसे पूजते हैं । यहां पर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण पूजन–

ऊर्ध्वं विस्तीर्णमंशान् वसुजलधिमितान् योजनस्यैकषष्ठान्
मुक्त्वाष्टौ तच्छतानि क्षितिमनिलधृतं खेस्थहस्तैश्चतुर्भिः ।
पूर्वाद्याशानुपूर्व्या पृथगभिभादिभोक्षार्वदेवैर्विमानं
स्वारूढो नीयमान दशशतशरदन्वीतपल्योत्तमायुः ॥ २७ ॥
त्वं तोष्टा तापसेष्ट्या कमलकरहरिद्राहनेता ग्रहाणां
नैवेद्यैः सानुगोर्कैंधनशृतपरमान्नोद्यसर्पिर्गुडाद्यैः ।
गंधैः पुष्पैः फलैश्चोत्तमघुसृणजपापकनारंगपूर्वै–
स्ताद्दक्षैश्चाक्षताद्यैरिह हरिहरिति प्रीणितः प्रीणयास्मान् ॥ २८ ॥

ये चार उपचार कहे गये है विसर्जन पूजाके वाद होता है । इस तरह पांच उपचार पूजाके सब जगह जानना चाहिये ॥ २६ ॥ इस प्रकार हर एककी पूजाके आरंभमे आह्वाननादि करनेके समय पुष्पाजलिका क्षेपण करना चाहिये । अब सूर्यादिकी पूजाविधि कहते हैं–पहले " ऊर्ध्वं " इत्यादि और " त्वं तोष्टा " इत्यादि–ये दो श्लोक पढकर " हे आदित्य " कहकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण करे, उसके पाद " ओ आदित्याय " इत्यादि बोलकर जलादि आठ द्रव्य चढावे । आकके ईंधनसे पकाई हुई खीर ताजा गौका घी गुड लाड्डू वगैरः नैवेद्यसे पूजै तथा अग्निमे आहूतियां दे जिसके लिये यह पूजाकर्म

हे आदित्य आगच्छ आदित्याय स्वाहा आदित्यानुचराय स्वाहा आदित्यमहत्तराय स्वाहा अग्नये स्वाहा अनिलाय स्वाहा वरुणाय स्वाहा सोमाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा भुव' स्वाहा स्वः स्वाहा ओं भूर्भुव स्वः स्वधा स्वाहा ओं आदित्याय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्य गंध पुष्प धूप दीप चरुं वालिं स्वस्तिक यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा । इत्यादित्याह्वानन । "यस्यार्थे क्रियते कर्म स प्रीतो नित्यमस्तु मे । शातिक इत्यादि ॥

तद्विवादुरुविंवमष्टभिरितो भागैश्वरद्योजना-
शीत्योर्ध्वं तदिवाब्दलक्षयुतपङ्कयौकायुरग्नेर्दिशि ।
शीतांशो सरलाज्यकिंशुकसमितिसद्धान्नदुग्धादिभि-
स्त्वं कापालिकसत्क्रियाभिय इह ग्राय प्रह्वाग्रमगो ॥ २९ ॥

हे सोम आगच्छ सोमाय स्वाहा ।

करता हूं वह देवता मेरे ऊपर हमेशा प्रसन्न रहे । ऐसा अंतमे सब जगह कहना चाहिये ॥ २७।२८ ॥ इस प्रकार सूर्यकी पूजाविधि हुई । " तद्विवादुरु " इत्यादि श्लोक पढकर " हे सोम " इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर पूर्व कही ओंकारमे " आदित्याय " की जगह " सोमाय " बोलकर जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ देवदारुकी लकडीका चूरा घी ढाककी लकडीसे पकाया अन्न दूध-इन सबको मिलाकर आहूतियां अग्निमे दे, यह सोमकी पूजा

न्यूने विंत्रमितैकयोजनशते क्रोशार्धमात्रं क्षिते-
र्बाह्यं द्विद्विसहस्रकेसरिमुखैर्भिक्षुमियः शूलभृत् ।
पल्यार्धायुरपाक्कुजात्र खदिराभृष्टैर्गुडाजोत्कटैः
संतुष्टो यवसक्तुभिर्घृतयुवैर्दुर्गादिभिर्धूप्यसे ॥ ३० ॥

हे अंगारक आगच्छ अगारकाय स्वाहा ।

विंत्रं खं शशिनोष्टयोजनमतीत्योर्ध्वंव्रजन्भूजवत्
क्रोशार्धमामितं कुजस्थितिरितो वर्णाष्टिमुत्पुस्तकम् ।

हुई । २९ ॥ " न्यूने " इत्यादि श्लोक पढकर " हे अगारक " इत्यादिसे आह्वाननादि तीन करे फिर ओं ह्रींमें " अंगारकाय " लगाकर जलादि आठ द्रव्य चढावे । इसमें खैरकी लकड़ीसे भुने हुए गुड घीसे मिले हुए जौके सत्तुओंसे तथा गूगुल घी राल इलाइची अगुरु आदिकी धूपसे दक्षिण दिशामें आहूतिया दे। इससे मगलदेव प्रसन्न होता है ॥ ३० ॥ यह मंगलकी पूजा हुई । " विंत्रं " इत्यादि श्लोक पढकर "हे बुध " इत्यादिसे आह्वाननादि करे फिर ओंह्रींमे "बुधाय" लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे। इसकी पूजामें ब्रह्मचारीको अष्ट सिद्धि मिलती है। अपामार्गकी लकडीसे भातको बनाकर उसमें दूध डाले ऐसा नैवेद्य बनावे तथा राल घीकी धूपसे पश्चिमदिशामें आहूतियां दे यह बुधकी पूजा हुई

विप्र त्वं विधुजोपवीतयुगपामार्गैभासिक्तौदन-

क्षीरं सर्ज रसाज्यधूपमगो रक्षोदिशि स्वीकुरु ॥ ३१ ॥

हे बुध आगच्छ बुधाय स्वाहा ।

तच्चाराद्रसयोजनैरुपरि या तद्वाद्विमानं मनागूनक्रोशमितः सपुस्तककमंडल्वक्षसूत्रोक्मगः ।
पल्येकायुरिहोपवीतरुचिरोरस्कःपरिव्राडतः प्रत्यक् पिप्पलपकपायसह्निर्धूपैर्गुरोऽभ्यर्च्यसे ३२

हे बृहस्पते आगच्छ बृहस्पतये स्वाहा ।

सौम्याभ्येभ्युपितद्वियोजनमाङ्गिकातिभ्रयानं तथा

प्रेर्यं क्रोशततं त्रिमूत्रफणभृत्पाशाक्षसूत्रैः स्फुरन् ।

प्रीतः पाशुपते सवर्पशतपल्यायुः ग्रुवस्थो मरुत्-

काष्ठायां गुडफल्गुपाचितयवानाज्यै· कवे पूज्यसे ॥ ३२ ॥

हे शुक्र आगच्छ शुक्राय स्वाहा ।

॥ ३१ ॥ "तच्चारा" इत्यादि श्लोक पढकर "हे बृहस्पते" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंह्रींमें "बृहस्पतये" लगाकर जलादि द्रव्य चढावे यज्ञोपर पश्चिमदिशामें पीपलकी लकडीसे बनी हुई खीरमें गौके घीसे मिश्रित धूप डाले उससे आहुतियां देवे । यह बृहस्पतकी पूजा हुई ॥ ३२ ॥ "सौम्याभ्ये" इत्यादि श्लोक बोलकर "हे शुक्र इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर

क्रोशार्धं पृथुयोजनैस्त्रिभिरुपर्यभ्रैः कुजान्मडलं
तद्वद्वृत्तगतोर्द्धपल्यपरमायुष्कस्त्रिसूत्रीयुतः ।
नीतस्तृप्तिमुदक्शमीधनशृतैर्माषैस्तिलैस्तंदुलै
रालाज्यागुरुणेऽर्च्यसे श्रवणमुन्नैपालपूज्यः शने ॥ ३४ ॥

हे शनैश्चर आगच्छ शनैश्चराय स्वाहा ।

त्यक्तारिष्टदरोनयोजनततस्वर्व्योमपानध्वजं
चत्वारि व्रजदंगुलान्यहरहः षष्ठे च मास्यैंदवम् ।

ओंह्रींमें " शुक्राय " जोडकर जलादि द्रव्य चढावे । यहां वायव्यदिशामें फल्गुकाष्ठसे भुने हुए जौ गुड घी मिलाकर अग्निमें आहुति दे। यह शुक्रकी पूजा हुई ॥ ३३ ॥ " क्रोशार्द्ध " इत्यादि श्लोकको पढकर "हे शनैश्चर" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंह्रींमे "शनैश्चराय" लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे । यहांपर शमीकी लकडी उरद तिल चांवल तथा राल घी अगुरुकी धूपसे आहुतियां दे । इस प्रकार शनैश्चरकी पूजा हुई ॥ ३४ ॥ " त्यक्त्वा " इत्यादि श्लोक पढकर " हे राहो " इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर ओंह्रींमे " राहवे " लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे । यहा दूबके ईंधनसे पकाया गया काला किया गया गेहूं आदिका चून तथा दूध घी लाख इनकी धूपसे अग्निमे आहुतिया दे ॥

बिंबं छादयिता तदंशुनिवहे राहो द्विजार्चामहो
दूर्वापिष्टपयोघृताक्तजतुधूपेनेशदिश्यर्च्यसे ॥ ३५ ॥

हे राहो आगच्छ राहवे स्वाहा ।

षष्ठे षष्ठ उपेत्य मासि तपनस्येंदोस्तमोर्विनव-
द्विंबाद्विंबमघश्चरन्मलिनयत्यंशप्रमैस्तद्वियत् ।
दर्शीतेधिवसभिद्योर्ध्वदिशि तत्केतो सकुलमापकं
स्फूर्जत्केतुसहस्रदेह सकुशं विल्वाक्तधूपं भज ॥ ३६ ॥

हे केतो आगच्छ केतवे स्वाहा ।

एते सप्तधनुःप्रमाणवपुरुत्सेधा नवापि ग्रहाः
शश्वच्चंद्रकलाबलाप्यसदसद्यानस्फुरद्विक्रमाः ।

यह राहुकी पूजा हुई ॥ ३५ ॥ "षष्ठे" इत्यादि श्लोक पढकर "हे केतो" इत्यादिसे आह्वानादि करे फिर आँहीमें "केतवे" लगाकर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे । यहां कुलमाष (कुलथी) के चूनको दूधके ईंधनसे पकावे तथा घी मिले हुए कच्चे बेलकी धूपसे आहुतियां दे। यह केतु ग्रहकी पूजा हुई ॥ ३६ ॥ उसके बाद "एते" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं"

सत्कृत्योपहृतामिमामिह महे पूर्णाहुतिं प्रासुत
प्रीतिं त्र्यंबक च यष्टृयाजकनृपादीष्टप्रदानाद् द्रुतम् ॥ ३७ ॥

पूर्णाहुतिः । ओं ह्रीं ह्रः फट् आदित्यमहाग्रह अमुकस्य शिवं कुरु २ स्वाहा । एवं सोमादिष्वपि योज्यम् ।

हुत्वा स्वमंत्रचितमंबुनि सप्तसप्तमुष्टिप्रमाणतिलशालियवं प्रसात्तिम् ।
नीता घृतप्लुतसमिद्भिरथाग्निकुंडे एकादशस्थवदवंतु सदा ग्रहा वः ॥ ३८ ॥

आशीर्वादः । इति ग्रहपूजाविधानम् । अथात्र मंडले स्नपनपीठे निवेश्य जिनचतुर्विंशतिं प्रागुक्तविधिना स्नपयेत् ।

लघ्वेपोष्टदले शांतिकर्मैकाशीतिके बृहत् । मंडले स्थाप्यतां कल्पो यथा ध्यानं तु तत्फलम्॥३९॥

इत्यादिसे पूर्ण आहूति दे । हर एक ओंह्रींमें ग्रहोंके नाम तथा यजमानका नाम अवश्य लगाना चाहिये ॥३७॥ फिर 'हुत्वा' इत्यादि आशीर्वाद श्लोक पढे फिर सात सात मुठी प्रमाण तिल शालिचांवल जौ इन तीन धान्योंको जलमें क्षेपणकर घृतसे लिपटी हुई लकडीसे अग्निमें आहूतियां दे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार नव ग्रहकी पूजा जानना ॥ उसके बाद उस मांडलेमें अभिषेकके सिंहासनपर चौवीस तीर्थंकरोंका स्थापन करके पहले कही हुई विधिसे अभिषेक करे ॥ लघुशांतिकर्म आठपत्रके मंडलपर और बृहत् शांतिकर्म इक्यासी कोठोंके

ते मंत्रविद्यथाम्नातमुक्तेनुक्ते तु कर्मणि। युंज्याद्यथार्हं विघ्नानामनुत्पत्त्यै शमाय च ॥ ४० ॥

इति शांतिकर्मविधानं। अथातो जलाशयमुपसद्य सुपवित्रपात्रे वरकाश्मीरकर्पूरादिना कर्णिकाया ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्मणेनंतानंतज्ञानशक्तये नमः इति लिखित्वा पूर्वाद्यष्टदलेषु क्रमेण ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यःस्वाहा १ ओं ह्रीं गंगादिदेवीभ्य स्वाहा २ ओं ह्रीं सीताविद्धमहाह्रददेवेभ्यःस्वाहा ३ ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाह्रददेवेभ्य. स्वाहा ४ ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ५ ओं ह्रीं सीतासीतोदामागधादितीर्थदेवेभ्य स्वाहा ६ ॐ ह्रीं सख्यातीतसमुद्रदेवेभ्य. स्वाहा ७ ॐ ह्रीं

मडलपर यथायोग्य करे। उसका फल ध्यानके माफिक मिलता है अर्थात् लघुशांतिकर्म भी सम्यक ध्यानसे कियाजाय तो महाफल देता है और वड़ा शांतिविधान भी थोडे ध्यानसे किये जानेपर थोडा फल देता है ॥ ३९ ॥ वह बुद्धिमान् इंद्र शास्त्रकथित रीतिसे तीर्थोदकादानविधिमें कहे गये लघु वृहत् शांतिविधान कर्मोंको अग्रिम विघ्नोंकी अनुत्पत्ति और पूर्वविघ्नोंकी शांतिके लिये यथायोग्य करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार शांतिकर्मका विधान कहा गया। अब उसके वाद जलाशय (सरोवर नदी) के किनारे जाकर धोये हुए नये थालमें उत्तम केशर कपूरसे अष्टपत्रकमलकी कर्णिका (वीच-भाग) में " ओं ह्रीं अर्हं " इत्यादि लिखकर पूर्वादि आठ पत्रोंपर क्रमसे " ओं ह्रीं श्री " इत्यादि आठ मत्र लिखकर तीनवार मायाबीजकी ईकारमात्रासे वेष्टितकर क्रोंकार अंतमे

लोकाभिमततीर्थदेवेभ्यः स्वाहा ८ ॥ इति विलिख्य त्रिमायामात्रया परिक्षिप्य क्रोंकारेण निरुध्य बहिः " मुखमूलवपोपेतपत्रपद्मांकित. सितः । पववर्णांकदिक्कोण. कलशस्तोयमंडलम् " ॥ इत्येव लक्षणं वरुणमंडलं चालिख्य परब्रह्मार्चनपुरस्सरं पत्रेषु जलदेवताः स्वस्वमंत्रपूतजलादिभिरुपचरेत् । तद्यथा ।

तद्ब्रह्मचिन्मयसुधारसपूरभोक्तु वाक्यामृताप्लुतजगद्विधिपूर्वमेतत् ।
अब्गंधतंदुलकतांतचरुमदीपधूपमसूनकुसुमांजलिभिर्यजेऽस्मिन् ॥ ४१ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणेऽनतानंतज्ञानशक्तये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं पुष्पांजलिं च निर्वपामीति स्वाहा ।

लिखे । उसके बाहर जलमंडल लिखकर श्री परब्रह्म अर्हंतका पूजन करे, फिर आठ पत्रोंपर आठ प्रकारके जलदेवताओंका पूजन अपने २ मंत्रसे मंत्रित पवित्र जलादि द्रव्योंसे करे ॥ जलमंडलकी विधि इसतरह है कि पहले आठ पत्रका कमल बनावे उसके आगे कलशका आकार लिखे उसके मुखभागपर कमल खींचे उसके मध्यभागमें पत्रके ऊपर वकार लिखे उसके बाद कलशके नीचे भागपर कमल बनावे उसके मध्यपत्रमें पकार लिखे । कलशका वर्ण सफेद है, उस कलशकी चारों दिशाओंमें पकार लिखे, बाहरके भागमें चारकोनोंमें वकार लिखे—इस प्रकार वरुणमंडल (जलमंडल) जानना ॥ अब अष्टदल कमलपत्रकी पूजाविधि कहते हैं—" तद्ब्रह्म " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं " इत्यादिसे परम ब्रह्म अर्हंत देवकी जलादि अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४१ ॥ " पद्मादि " इत्यादि श्लोक पढकर

पद्मादिदिव्यह्रदवारिविभूतीभोक्त्री श्रीपूर्वदिव्ययुवतीर्विधिपूर्वमेताः ।
अब्गंध. . ... ॥ ४२ ॥

ओं ह्रीं श्रीप्रभृतिदेवताभ्यः इद. .. . . ।

गंगादिदिव्यसरिदंबुविभूतिभोक्त्री गंगादिदेवतवधूर्विधिपूर्वमेताः ।
अब्.... . . .. ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं गगादिदेवीभ्यः इदं .. .. ।

सीतातदुत्तरसरित्प्रणयि ह्रदांभो भोक्तृन्महाह्रदसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।
अब्. .... ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं सीताविद्धमहाह्रददेवेभ्यः इदं .... ।

सीतातदुत्तरसरित्प्रणयि ह्रदांभो भोक्तृन्महाह्रदसुरान् विधिपूर्वमेतान् ।
अब् . ... ॥ ४५ ॥

"ओं ह्रीं श्रीप्रभृति" इत्यादिसे पहले पद्मके ऊपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४२ ॥ "गंगादि" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं गंगादि" इत्यादिसे जलादि अष्ट द्रव्य दूसरे पद्मपर चढावे ॥ ४३ ॥ "सीता" इत्यादि श्लोक पढकर "ओं ह्रीं सीताविद्ध" इत्यादिसे तीसरे पद्मपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४४ ॥ "सीता तदुत्तर" इत्यादि श्लोक पढकर

ओं ह्रीं सीतोदाविद्धमहाह्रददेवेभ्य इद .... ।

सिंधुप्रवेशपथतोयविभूति भोक्ष्यन् श्रीमागधादिविबुधान विधिपूर्वमेतान् ।
अत्र् .. . . ॥ ४६ ॥

ओं ह्रीं लवणोदकालोदमागधादितीर्थदेवेभ्य इद . . ।

सिंधुप्रवेशपथतोयविभूतिभोक्ष्यन् श्रीभागधादिविबुधान विधिपूर्वमेतान् ।
अत्र् . . .. ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं सीतासीतोदामागधादितीर्थदेवेभ्य इद. ... . ।

संख्यातिगांबुनिधिनीरविभूति भोक्ष्यन् क्षारादिवारिधिसुरान् विधिपूर्वमेतान्।
अत्र् . . . . ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं सख्यातीतसमुद्रदेवेभ्य· इदं . .... ।

" ओं ह्रीं सीतोदाविद्ध " इत्यादिसे चौथे पत्रपर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ४५ ॥ " सिंधुप्रवेश " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं लवणोद " इत्यादिसे पाचवे पत्रपर जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ४६ ॥ " सिंधुप्रवेश " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं सीतासीतोदा " इत्यादिसे छठे पत्र पर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४७ ॥ " सख्यातिगा " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्री संख्या " इत्यादिसे सातवे पत्रपर जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ ४८ ॥

लोकप्रसिद्धपुरतीर्थजलार्द्रे भोक्ष्यन् लोकेष्टतीर्थमरुतो विधिपूर्वमेतान् ।
अत्र् .. . . ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं लोकाभिमततीर्थदेवेभ्य इद .. . ..स्वाहा ।

एव जलदेवता. प्रसाद्य तत्पूजा जलाशयमध्ये प्रविश्य मन्त्रमिमं पठित्वा प्लावयेत् ।

ॐ "एतां भोक्त्र्योंबुभारानुरुहृदसरितां श्र्यादिगंगादिदेव्यस्तीर्थानां मागधाद्या इम उदधिसुरास्तोयधीनामिमेमी । अन्येषां चार्पितार्घा निजनिजसलिलश्रीविलासैर्जिनेंदोर्भक्तिमह्वाः प्रतिष्ठाभिषवमहकृते सारयंत्वेतदर्णः" ॥ ५० ॥

इति पूजाप्लावनमत्र । तत शक्रास्तज्जलेन कलशान् पूरं पूर तीरे प्रस्तीर्य, चदनस्त्रदूर्वादर्भादिभिरभ्यर्च्य तन्मुखेषु श्र्यादिमन्त्रपूत पल्लवफल विन्यस्य कृतकलशोद्धारमन्त्रोपहारोपस्कारानेतानेकश· स्वयमुद्धृत्योद्धृत्य तत्क्षणसमानितपुरध्रीपाणिपद्मेषु समर्प्य शेषकलशान्निजकरकमलैरुद्वहंतो

"लोकप्रसिद्ध" इत्यादि श्लोक पढकर "ओ ह्रीं लोकाभिमत" इत्यादि कहकर आठवे पत्रपर स्थित देवताकी जलादि अष्ट द्रव्यसे पूजा करे ॥ ४९ ॥ इसप्रकार जलदेवताओंको पूजासे प्रसन्न करके जलाशयमें घुसकर इस आगेके "ओं एता" इत्यादि श्लोकमंत्रसे उस लिखित कमलपत्रका विसर्जन कर दे (छोड दे) ॥ ५० ॥ उसके बाद वे इंद्र उस

गजादिवाहनान्यधिरुह्य महोत्सवेनाभिचैत्यालयमागच्छेयुः । ओं श्री ह्री धृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मीशांतिपुष्टय श्रमद्दिक्कुमार्यो जिनेन्द्रमहाभिषेककलशामुखेष्वेतेषु नित्यनिविष्टा भवत भवतेति स्वाहा । इति श्र्यादिमंत्रः ।

ॐ "क्षीराब्धि सर्वतीर्थोदकमयवपुषा स्वैरमाक्रोशतोस्य क्षीरैः पद्माकरस्य प्रणयमुपगतान् शातकुंभीयकुंभान् । सानंदं श्र्यादिदेवीनिचयपरिचयोज्जृंभमाणप्रभावानेतानभ्युद्धरामो भगवदभिषवश्रीविधानाय हर्षात् ॥ ५१ ॥

इति कलशोद्धारमंत्रः । एतत्पठित्वा पुष्पाक्षतेनोपहार्य कलशानुद्धरेत् । इति तीर्थोदकादानविधानम् । अथ जिनयज्ञादिविधानान्यभिधास्यामः—

जलसे कलशोंको भरकर किनारेपर रक्खे फिर उनको चंदन, पुष्पमाला-कूच-दर्भ-अक्षत सरसोंसे पूजकर उनके मुखपर 'श्री आदि' मंत्रसे पवित्रित पत्ता व फल रखके कलशोद्धार मंत्रसे पूजित कर एक एकको उठावे । फिर उसी समय सौभाग्यवती स्त्रियोंके हस्तकमलोंमें रखे और बचे हुए कलशोंको आप हाथमे लेकर हाथी आदिकी सवारीपर चढके महान उच्छवके साथ चैत्यालय (जिनमंदिर) में आवैं ॥ " ओं श्री " इत्यादि श्री आदि मंत्र है । " ओं क्षीराब्धि " इत्यादि कलशोद्धारमंत्रश्लोक है ॥ ५१ ॥ ऐसा पढकर पुष्प अक्षतादि

इंद्रश्चैत्यालयं गत्वा वीक्ष्य यज्ञांगसज्जनान्। यागमंडलपूजार्थं परिकर्माचरेदिदम् ॥ ५२ ॥
स्नानानुस्नानभागात्तधौतवस्त्रो रहः स्थितः। कृतेर्यापथसंशुद्धिः पर्यंकस्थोऽमृतोक्षितः॥५३॥
दहनप्लावने कृत्वा दिव्यस्वांगेषु दिक्षु च। न्यस्य पंचनमस्कारान् प्रयुक्तगुरुमुद्रकः ॥ ५४ ॥
व्युत्सृज्यांगं पूरकेण व्याप्ताशेषजगत्रयम्। शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रातिहार्यादिभूषितम् ॥ ५५ ॥
पादाधोन नमद्विश्वं स्फूर्जंतं ज्ञानतेजसा। परमात्मानमात्मानं ध्यायन् जप्त्वापराजितम्॥५६॥

क्षेपण कर कलशोंको उठाना चाहिये ॥ इस प्रकार जलयात्राविधान वर्णन किया ॥ अब जिनयज्ञादि विधियोंको कहते हैं—प्रतिष्ठाचार्य इन्द्र चैत्यालयमें जाकर पूजा सामग्री और श्रावकोंको देखकर यागमंडलकी पूजा करनेके लिये इस कहे जानेवाले अंगसंस्कारको करे ॥ ५२ ॥ पहले तो जलसे स्नान करे, उसके बाद मंत्रस्नान करे, पुन धुले हुए धोती दुपट्टे पहरे। उसके बाद एकांतमें स्थित होकर ईर्यापथशुद्धि करके पद्मासन लगाकर अमृतमंत्रसे मंत्रित जलको अपने ऊपर छिडके ॥ ५३ ॥ आगे कहे आनेवाली दहन प्लावन क्रियाओंको करके अपने अंगोंमें और दिशाओंमें पंच नमस्कारका न्यास करके पंचगुरुमुद्राको धारण करे ॥ ५४ ॥ पूरकवायुसे कायोत्सर्ग करके परमात्माके समान अपना ध्यान करे और नमस्कार मंत्रको जपे। इसप्रकार परिणामोंकी शुद्धिसे पापोंका नाश कर पुण्यात्मा हुआ

---

१ एते श्लोका वसुनंदिसैद्धांतिकाचार्यविरचितप्रतिष्ठासारसंग्रहेपि संति इति तन्नीतिमनुसत्यात्रापि उद्धृता इति प्रतीयते।

परिणामविशुद्धयास्तपाप्मौघः पुण्यपुंजभाक्। ध्वस्तापायचयः कुर्याज्जिनयज्ञादिसंविधीन् ५७
झं वं स्वराहृतं तोयमंडलद्वयवेष्टितम् । तोये न्यस्याग्रतर्जन्या तेनानुस्नानमात्रहेत ॥ ५८ ॥
अर्धचंद्रपुटीरूपं पंचपत्राम्बुजाननम् । नांतलांतासादिकोणं धवलं जलमंडलम् ॥ ५९ ॥
पृथग्द्विद्वयेकवाक्यांतमुक्तोच्छ्वासं जपेन्नव। त्रारान् गाथां प्रतिक्रम्य निषद्यालोचयेत्ततः॥६०॥
गुरुमुद्राग्रभू झं वं हः पोक्षोभ्योमृतैः स्वके। स्रवद्भिःसिच्यमानं स्वं ध्यायन मंत्रमिमं पठेत् ॥६१॥

विघ्नोंको दूर कर जिनेन्द्रदेवकी पूजादि क्रियाओंको करे ॥ ५५ । ५६ । ५७॥ अब अनुस्नाना-दि क्रियाओंको कहते हैं—झ व इन दो अक्षरोंको जलमंडलमें लिखकर उसको जलमें रखे, फिर तर्जनी अंगुलीसे जल लेकर अपने ऊपर डाले—यह मंत्रस्नान है ॥ ५८ ॥ जो अर्ध-चंद्रपुटी स्वरूप हो जिसका मुख पाचकमल पत्ररूप हो जिसके, दिशाओंके कोने "प व" इन दो अक्षरोंसे व्याप्त हों और श्वेतवर्ण हो, वह जलमंडल है ॥ ५९ ॥ एक उच्छ्वासमें तीन वार इस तरह तीन उच्छ्वासोंमें नौवार मंत्रको जपकर "ईर्यापथे" इत्यादि श्लोक पढे ॥ ६० ॥ यह ईर्यापथशोधन किया है । गुरुमुद्राके अग्रभागकी भूमिमें 'झ व ह्रः पो ह्र —'इन अमृत अक्ष-रोंसे अपनेको सींचा हुआ समझ ध्यान करे । फिर इस " ओं ह्रीं अमृते " इत्यादि मंत्रको पढता हुआ जलको शरीरपर छांटे ॥ ६१ ॥ यह अमृतस्नान है ॥ त्रिकोण यंत्रके कोनोंमें

---

१ मंत्रस्नानम् । २ ईर्यापथशोधनम् ।

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृत स्रावय स्रावय स सं क्लीं २ ब्लूं २ द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय २ सं ह झ्वीं क्ष्वीं ह स स्वाहा । इति अमृतस्नानम् ।

स्वस्तिकाग्रत्रिकोणांतर्गतरेफशिखावृतम् । अग्निमंडलमोंकारगर्भं रक्ताभमास्थितम् ॥ ६२ ॥

सप्तधातुमयं देहं दहेद्रेफार्चिषां चयैः । सर्वांगदेशगैर्विष्वग्धूयमानैर्नभस्वता ॥ ६३ ॥

नाभिस्थसस्वरद्व्यष्टपत्राब्जांतरर्हं रत । दहेन्छिखौघैरुद्यद्भिरष्टकर्ममयं वपुः ॥ ६४ ॥

वृत्तात्सबिंदोर्दिक्कोणस्वायाद्योमूत्रिकाकृतेः । कृष्णाद्वायुपुराद्वातैः मापद्भिः प्रेर्य भस्म तत् ॥ ६५ ॥

व्योमव्यापिघनासारैः स्वमाप्लाव्यामृतस्रुतम् । खेहं ध्यायन् सृजेद्देहममृतैरन्यमिंदुवत् ॥ ६६ ॥

साथिया बनावे । उस यन्त्रके अंदर रेफशिखासे वेष्टित ओंकारसहित लालवर्णवाले अग्निमंडलका चिंतन करे । फिर सात धातुमई देहको रेफकी ज्वालासे भस्म करे । नाभिमें स्थित सोलह कमलपत्रोंके मध्यमें स्थित अर्हंके रेफकी शिखासे अष्टकर्ममयी शरीरको भस्म करे । यह दहनक्रिया है ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ फिर गोलाकार बिंदुसहित वायुमंडलसे उस भस्मको दूर करे । उसके बाद " खे हं " इन दो अक्षररूपी अमृतजलसे अपनेको शुद्ध करके कायोत्सर्ग करे ॥ ६५ । ६६ ॥ यह प्लावनक्रिया है । अब अंगन्यासक्रिया कहते हैं—दोनों हाथोंकी कनिष्ठा आदि अंगुलियोंमें ' ओं ह्रां ' आदि नम-

---

१ दहनम् । २ प्लावनं ।

परिणामविशुद्ध्यास्तपाप्मौघः पुण्यपुंजभाक् । ध्वस्तापायचयः कुर्याज्जिनयज्ञादिसंविधीन् ५७
झं वं स्वराहृतं तोयमंडलद्वयवेष्टितम् । तोये न्यस्याग्रतर्जन्या तेनानुस्नानमावहेत् ॥ ५८ ॥
अर्धचंद्रपुटीरूपं पंचपत्राबुजाननम् । नांतलांतास्रादिक्कोणं धवलं जलमंडलम् ॥ ५९ ॥
पृथग्द्विद्व्येकवाक्यांतमुक्तोच्छ्वासं जपेन्नव । वारान् गाथां प्रतिक्रम्य निपद्यालोचयेत्ततः॥६०॥
गुरुमुद्राग्रभू झं वं ह्वः पोह्वोभ्योमृतैः स्वके । स्रवद्भिःसिच्यमानं स्वं ध्यायन् मंत्रमिमं पठेत् ॥६१॥

विघ्नोंको दूर कर जिनेन्द्रदेवकी पूजादि क्रियाओंको करे ॥ ५५ । ५६ । ५७॥ अब अनुस्नाना-दि क्रियाओंको कहते हैं—झं व इन दो अक्षरोंको जलमडलमे लिखकर उसको जलमें रखे, फिर तर्जनी अगुलीसे जल लेकर अपने ऊपर डाले—यह मंत्रस्नान है ॥ ५८ ॥ जो अर्ध-चंद्रपुटी स्वरूप हो जिसका मुख पांचकमल पत्ररूप हो जिसके, दिशाओंके कोने "प व" इन दो अक्षरोंसे व्याप्त हो और श्वेतवर्ण हो, वह जलमडल है ॥ ५९ ॥ एक उच्छ्वासमें तीन वार इस तरह तीन उच्छ्वासोमें नौवार मंत्रको जपकर 'ईर्यापथे' इत्यादि श्लोक पढे ॥ ६० ॥ यह ईर्यापथशोधन किया है । गुरुमुद्राके अग्रभागकी भूमिमें 'झ व ह्वः पो ह —'इन अमृत अक्ष-रोंसे अपनेको सींचा हुआ समझ ध्यान करे । फिर इस " ओं ह्रीं अमृते " इत्यादि मत्रको पढता हुआ जलको शरीरपर छाटे ॥ ६१ ॥ यह अमृतस्नान है ॥ त्रिकोण यंत्रके कोनोमे

---

१ मंत्रस्नानम् । २ ईर्यापथशोधनम् ।

ॐ ऱ्हीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृत स्रावय स्रावय स सं क्लीं २ ब्लूं २ द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय २ स ह झ्वीं क्ष्वीं ह सः स्वाहा । इति अमृतस्नानम् ।

स्वस्तिकाग्रत्रिकोणांतर्गतरेफशिखावृतम् । अग्निमंडलमोंकारगर्भं रक्ताभमास्थितम् ॥ ६२ ॥
सप्तधातुमयं देहं दहेद्रेफार्चिषां चयैः । सर्वांगदेशगैर्विष्वग्धूयमानैर्नभस्वता ॥ ६३ ॥
नाभिस्थसस्वरद्व्यष्टपत्राब्जांतरर्ह रत । दहेन्छिखौघैरुद्यद्भिरष्टकर्ममयं वपुः ॥ ६४ ॥
वृत्तात्सबिंदोर्दिक्कोणस्वायाद्वोमूत्रिकाकृतेः । कृष्णाद्वायुपुराद्वातैः मापद्भिः प्रेर्य भस्म तत्॥६५॥
व्योमव्यापिघनासारैः स्वमाप्लाव्यामृतस्रुतम् । खेहं ध्यायन् सृजेद्देहममृतैरन्यमिंदुवत् ॥ ६६॥

साथिया बनावे । उस यत्रके अंदर रेफशिखासे वेष्टित ओंकारसहित लालवर्णवाले अग्निमंडलका चिंतन करे । फिर सात धातुमई देहको रेफकी ज्वालासे भस्म[1] करे । नाभिमें स्थित सोलह कमलपत्रोंके मध्यमें स्थित अर्हंके रेफकी शिखासे अष्टकर्ममयी शरीरको भस्म करे । यह दहनक्रिया है ॥ ६२ । ६३ । ६४ ॥ फिर गोलाकार बिंदुसहित वायुमंडलसे उस भस्मको दूर करे । उसके बाद "खे ह" इन दो अक्षररूपी अमृतजलसे अपनेको शुद्ध करके कायोत्सर्ग करे ॥ ६५ । ६६ ॥ यह प्लावनक्रिया है । अब अंगन्यासक्रिया कहते हैं—दोनों हाथोंकी कनिष्ठा आदि अंगुलियोंमें 'ओं ह्रां' आदि नम-

1 दहनम् । 2 प्लावन ।

हस्तद्वये कनीयस्या द्यंगुलीनां यथाक्रमम्। मूलं रेखात्रयस्योर्ध्वमग्रे च युगपत्सुधीः॥६७॥
न्यस्योंह्रामादिहोमाढ्याङ्गमस्कारान करौ मिथः। संयुज्यांगुष्ठयुग्मेन द्विस्तान् स्वांगेष्विति न्यसेत्

ओं ह्रां णमो अरहंताणं स्वाहा हृदये १ ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा ललाटे २ ओं ह्रूं णमो आइरियाणं स्वाहा शिरसि दक्षिणे ३ ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा पश्चिमे ४ ओं ह्रः णमो लोए सव्व-साहूणं स्वाहा वामे ५ पुनस्तानेव मन्त्रान् शिरःप्राग्भागे शिरसि दक्षिणे पश्चिमे उत्तरे च क्रमेण विन्यसेत्॥

तथा वामप्रदेशिन्यां न्यस्य पंचनमस्कृतीः। पूर्वादिदिक्षु रक्षार्थं दशस्वपि निवेशयेत् ॥ ६९॥

क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः कूटबीजानि रक्षार्थम्।

वर्मितोऽनेन सकलीकरणेन महामनाः। कुर्वन्निष्टानि कर्माणि केनापि न विहन्यते ॥ ७० ॥

स्कार मंत्रको स्थापन कर दोनों हाथोंको जोडकर दोनों अंगूठोंसे "ओं ह्रां" इत्यादि बोलकर हृदय आदि स्थानोंमें न्यास करे। यह अंगन्यास है ॥ ६७। ६८॥ अब दिग्बंधन किया कहते हैं—उसके बाद बायें हाथकी तर्जनी उंगलीमें पञ्चनमस्कार मंत्रका न्यास (स्थापन) कर रक्षाके लिये पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमसे उसी उंगलीसे "क्षां" आदि दशों अक्षरोंका न्यास करे ॥ ६९॥ इस सकलीकरणरूपी बख्तरको पहरे हुए जो मंत्रवाला

---

१ 'क्षां' आदि कूटाक्षरोंसे अथवा 'ह्रां' आदि शून्य बीजसे दोनोंही प्रकारसे न्यास होता है। २ पामस मैन्या दिशाबन्धो विधेय। प्रतिष्ठासारसंग्रहे ह्रामित्यादिना शून्यबीजेनापि दिग्बंधो भवतीति लिखितमास्ते।

ओं नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा । अनेन पुष्पाक्षत सप्तवारान् प्रजप्य परिचारकाणां शीर्षेषु प्रक्षिपेत् ॥ इति परिचारकरक्षा । ओं ह्रूं क्ष्रूं फट् किरिटि २ घातय २ परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखण्डान् कुरु २ परमुद्रा छिंद २ परमन्त्रान् भिंद २ क्ष क्षः हूं फट् स्वाहा। अनेन श्वेतसिद्धार्थानभिमन्त्र्य सर्वविघ्नोपशमनार्थं सर्वदिक्षु क्षिपेत् ॥ इति सकलीकरणविधानम् । इतो जिनयज्ञादिविधान ।

> व्योमापगाद्युत्तमतीर्थवारां धारा वरांभोजपरागसारा ।
> तीर्थंकराणामियमंघ्रिपीठे स्वैरं लुठित्वा त्रिजगत् पुनातु ॥ ७१ ॥

इष्ट कर्मोंको करता है, उसके कोइ विघ्न नहीं आता ॥ ७० ॥ " ओं नमो " इत्यादिसे पुष्प-अक्षतोंको सात बार पढकर पूजाके सहायकोंके ऊपर क्षेपण करनेसे उनको कोई भी विघ्न नहीं होताहै । इस प्रकार परिचारकोंकी रक्षा वर्णनकी । " ओं हूं " इत्यादि मन्त्रसे सफेद सरसोंको

---

१ इत पूर्वं प्रतिष्ठेसाराक्षपाठः क्षिप्यते—णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥ चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ २ ॥ चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥३॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ४ ॥ ओं नमो अर्हते स्वाहा । अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा । ध्यायेत् पंच

ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्मणेऽनंतानंतज्ञानशक्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा । तीर्थोदकधारा ।

काश्मीरकृष्णागुरुगंधसारकर्पूरपौरस्त्यविलेपनेन ।
निसर्गसौरभ्यगुणोल्वणानां संचर्चयाम्यंघ्रियुगं जिनानाम् ॥ ७२ ॥
ओं ह्रीं. गंधं निर्व० ।

मंत्रित कर सब दिशाओंमे फेंके ॥ इसप्रकार सकलीकरण विधि समाप्त हुई । अब जिनयज्ञादि विधान कहते है—प्रतिष्ठासारमे " णमो अरिहंताणं " इत्यादि टिप्पणीमे लिखे हुए पाठको पढे उसके बाद जलादि चढानेके श्लोक बोले ॥ " व्योमा " इत्यादि श्लोक पढकर " ओं ह्रीं " बोलकर जलधारा चढावे ॥ ७१ ॥ " काश्मीर " और " ओं ह्रीं " बोलकर चंदन चढावे

नमस्कारान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा । यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥ ६ ॥ अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते । स्नातोहं धर्मतीर्थेषु जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हम् । श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जिनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥ ८ ॥ स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय । स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृग्मयाय स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥ ९ ॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय । स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥ १० ॥ अर्हन् पुराणपुरुषोऽर्हति पावनानि वस्तूनि नूनमखिलान्ययमेक एव । अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ ११ ॥ द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः । आलंबनानि विविधान्यवलंब्य वल्गन् भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि

आमोदमाधुर्यनिधानकुंदसौंदर्यशुंभत्कलमाक्षतानाम् ।
पुंजैः समक्षैरिव पुण्यपुंजैर्विभूषयाम्यग्रभुवं विभूनाम् ॥ ७३ ॥
ओं ह्रीं अक्षत निर्व० ।

सुजातजातीकुमुदाब्जकुंदमंदारमल्लीवकुलादिपुष्पैः ।
मत्तालिमालामुखरैर्जिनेंद्रपादारविंदद्वयमर्चयामि ॥ ७४ ॥
ओं ह्रीं पुष्प निर्व० ।

नानारसव्यंजनदुग्धसर्पिपक्वान्नशाल्यन्नदधीक्षुभक्ष्यम् ।
यथार्हहेमादिसुभाजनस्थं जिनक्रमाग्रे चरुमर्पयामि ॥ ७५ ॥

॥ ७२ ॥ " आमोद " और " ओं ह्रीं " कहकर अक्षत चढावे ॥ ७३ ॥ " सुजात " और " ओं ह्रीं " पढकर पुष्प चढावे ॥ ७४॥ " नानारस " और " ओं ह्रीं " बोलकर नैवेद्य चढावे

यज्ञम् ॥ १२ ॥ (ओं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥) चिद्रूपं विश्वरूपव्यतिकरितमनाद्यंतमानंदसांद्रं यत्प्राकैर्विवर्तैर्व्यग्रतदतिपतदद्गसौख्याभिमाने । कर्मोद्रेकात्तदारमप्रतिघमलभिदोद्भिन्ननिस्सीमतेज प्रत्याधीदत्परौज स्फुरदिह परमब्रह्म यद्येर्हमाह्वम् ॥ १३ ॥ (ओं परमब्रह्मयज्ञप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।) स्वामिन् संवौषट् कृतावाहनस्य द्विष्ठांतेनोट्टंकितस्थापनस्य । स्व निर्नेकु ते वषट्कारजाग्रत्सांनिध्यस्य प्रारभेयाष्टधेष्टिम् ॥१४॥ ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्म अत्रावतरावतर संवौषट् । अनेनावाहयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अनेन तत्प्रतिष्ठापयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरब्रह्म मम सन्निहितं भव वषट् । अनेन तद्वत् सन्निधापयेत् ॥)

ओं ह्रीं . नैवेद्य निर्व० ।

ओं लोकानामर्हतां भूर्भुवः स्वर्लोकानेकीकुर्वतां ज्ञानधाम्ना ।
दीपव्रातैः प्रज्वलत्कीलजालैः पादांभोजद्वंद्वमुद्योतयामि ॥ ७६ ॥

ओं ह्रीं... आरार्तिकं निर्व० ।

श्रीखंडादिद्रव्यसंदर्भगर्भैरुद्यद्धूम्यामोदितस्वर्गिवर्गैः ।
धूपैः पापव्यापदुच्छेददक्षांनंघ्रीनर्हत्स्वामिनां धूपयामि ॥ ७७ ॥

ओं ह्रीं धूप निर्व० ।

फलोत्तमादाडिममातुलिंगनारिंगपुंगाम्रकपित्थपूर्वैः ।
हृद्घ्राणनेत्रोत्सवमुद्गिरद्भिः फलैर्भजेर्हत्पदपद्मयुग्मम् ॥ ७८ ॥

ओं ह्रीं फल निर्व० ।

वार्गंधादिद्रव्यसिद्धार्थदूर्वानंद्यावर्तस्वस्तिकाद्यैरनिंद्यैः ।
हैमे पात्रे प्रस्तुतं विश्वनाथात् मत्यानंदादर्घमुत्तारयामि ॥ ७९ ॥

॥ ७५ ॥ " ओं लोकाना " और " ओं ह्रीं " बोलकर दीप चढावे ॥ ७६ ॥ " श्रीखंडादि " और " ओं ह्रीं " बोलकर धूप चढावे ॥ ७७ ॥ " फलोत्तमा " और " ओं ह्रीं " बोलकर फल चढावे ॥ ७८ ॥ " वार्गंधादि " और " ओं ह्रीं " बोलकर अर्घ चढावे ॥ ७९ ॥ फिर

ओं ह्रीं.. अर्घं निर्व० ।

वृषभो वृषलक्ष्मीवानजितो जितदुष्कृतः । शंभवः संभवत्कीर्तिः साभिनंदोभिनंदनः ॥ ८० ॥
सुमतिः सुमतिः पद्मप्रभः पद्मप्रभः प्रभुः । सुपार्श्वः पार्श्वरोचिष्णुश्चंद्रश्चंद्रप्रभः सताम् ॥ ८१ ॥
पुष्पदंतोस्तपुष्पेषुः शीतलः शीतलोदितः । श्रेयान् श्रेयस्विनां श्रेयान सुपूज्यः पूज्यपूजितः ८२
विमलो विमलोऽनन्तज्ञानशक्तिरनंतजित् । धर्मो धर्मोदयादित्यः शांतिः शांतिक्रियाग्रणीः ।८३।
कुंथुः कुंथ्वादिसदयः सुरभीतिररप्रभुः । मल्लिर्मल्लिजये मल्लः सुव्रतो मुनिसुव्रतः ॥ ८४ ॥
नमिर्नमत्सुरासारो नेमिर्नेमिस्तपोरथे । पार्श्वः पार्श्वस्फुरद्रोचिः सन्मतिः सन्मतिप्रियः ॥८५॥
एते तीर्थकृतोनंतैर्भूतसद्भाविभिः समम् । पुष्पांजलिप्रदानेन सत्कृताः संतु शांतये ॥ ८६ ॥

पुष्पाजलि. । इति जिनयज्ञविधान । अथात· सिद्धभक्तिविधानम् ।

प्रक्षीणे मणिवन्मले स्वमहसि स्वार्थप्रकाशात्मके
निर्मग्ना निरुपाख्यमोघचिदमोक्षार्थितीर्थक्षिपः ।

" वृषभो " इत्यादि सात श्लोक पढकर आशीर्वादके लिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ ८० ॥ ॥ ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ ॥ इसप्रकार जिन (अर्हंत) पूजाविधान हुआ । अब सिद्ध भक्तिकी विधि कहते हैं—" प्रक्षीणे " इत्यादि श्लोक पढकर अर्हंतकी प्रतिमाके आगे

कृत्वाऽनाद्यपि जन्म सांतममृतं साद्यप्यनंतं श्रितान् ।
सद्दृग्धीनयवृत्तसंयमतपः सिद्धान् भजेर्धेण वः ॥ ८७ ॥

अनेनार्हत्प्रतिमाग्रे सिद्धानामर्घं दत्वा भक्त्या स्तुवीत। तथाहि । अर्हत्प्रतिष्ठारमक्रियाया पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावदनास्तवसमेत सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं । इत्युच्चार्य णमो अरहताणमित्यादि दडकं पठित्वा थोस्सामीत्यादिस्तव चाधीत्य सिद्धभक्तिमिमा पठेत् ।

यस्यानुग्रहतो दुराग्रहपरित्यक्त्वात्मरूपात्मनः
सद्द्रव्यचिदचित्रिकालविषयं स्वैः स्वैरभीक्ष्णं गुणैः ।
सार्थव्यंजनपर्ययैः समवयज्जानाति वोधः समं
तत्सम्यक्त्वमशेषकर्मभिदुरं सिद्धान् परं नौमि वः ॥ ८८ ॥

यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वान्यस्थयोर्दीपव-
च्चित्तं द्योतकमुद्गिरन्मुदमरं नो रज्यति द्वेष्टि न ।
धारावाह्यपि तत्प्रतिक्षणनवीभावोद्धुरार्थार्पित-
प्रामाण्यं प्रणमामि वः फलितदृग्ज्ञप्त्युक्तिमुक्तिश्रिये ॥ ८९ ॥

सिद्धोंको अर्घ देवे ॥ ८७ ॥ उसके बाद भक्तिसहित स्तुति करे । वह इस तरह है-प्रथम तो

सत्तालोचनमात्रमित्यपि निराकारं मतं दर्शनं
साकारं च विशेषगोचरमिति ज्ञानं प्रमादीच्छया ।
ते नेत्रे क्रमवर्तिनी सरजसां प्रादेशके सर्वतः
स्फूर्जती युगपत्पुनर्विरजसां युष्माकमंगोतिगाः ॥ ९० ॥
शक्तिव्यक्तिविभक्तविश्वविविधाकारौघकिर्मीरिता-
नंतानंतभवस्थमुक्तपुरुषोत्पादव्ययध्रौव्यव्ययात् ।
स्वं स्वं तत्त्वमसंकरव्यतिकरं कर्तुं न क्षणं प्रत्यथो
भोत्क्षणमन्वयतः स्मरामि परमाश्चर्यस्य वीर्यस्य वः ॥ ९१ ॥
यद्व्याहंति न जातु किंचिदपि न व्याहन्यते केनचि-
द्यन्निष्पीतसमस्तवस्त्वपि सदा केनापि न स्पृश्यते ।
यत्र सर्वज्ञसमक्षमप्यविषयं तस्यापि चार्योद्गिरां
तद्वः सूक्ष्मतमं स्वतत्त्वमभि वा भाव्यं भवोच्छित्तये ॥ ९२ ॥
गत्वा लोकशिरस्य धर्मवशतश्चंद्रोपमे सन्मुख-
प्राग्भाराख्यशिलातलोपरि मनागूनैकगव्यूतिके ।

" अर्हत्प्रतिष्ठा " इत्यादि बोलकर " णमो अरहंताणं " इत्यादि दण्डक पढकर " थोस्सामि "

योगोज्झांगदरो न मित्यपि मिथो संवाधमेकत्र य-
छ्ब्ध्यानंतमितोपि तिष्ठथ स वः पुण्योवगाहो गुणः ॥ ९३ ॥
सिद्धाश्चेद्गुरवो निराश्रयतया भ्रश्यंत्यय:पिंडव-
त्तेऽघश्चेल्लघवोर्कतूलवदितश्चेतश्च चंडेन तत् ।
क्षिप्यंते तनुवातवातवलयेनेत्युक्ति युत्कुद्धते-
नोंक्षोपशमपीष्यते गुरुलघुः क्षुद्रैः कथं वो गुणः ॥ ९४ ॥
यत्तापत्रयहेतिभैरवभवोदर्चिः समाय श्रमो
युष्माभिर्विदधे व्यपच्यत तदव्यावाधमेतद्ध्रुवम् ।
येनोद्वेलसुखामृतार्णवनिरातंकाभिषेकोल्लस-
त्कायान् कलयापि वः कलयितुं श्राम्यंति योगीश्वराः ॥ ९५ ॥
एतेनंतगुणाङ्गुणाः स्फुटमयोद्धृत्याष्ट दिष्टा भव-
त्तत्वा भावयितुं सतां व्यवहृतिभाषान्यतस्तात्त्विकैः ।

इत्यादि स्तुति कहकर इसे कहे जानेवाली स्तुतिको पढे जो कि "यस्यानुग्रहतो" इत्यादिसे लेकर ९६ श्लोक तक नौ श्लोकोंमें कही गई है॥ ८८॥ ८९। ९० । ९१। ९२। ९३। ९४। ९५। ९६॥ जो

एतद्भावनया निरंतरगलद्विकल्पजालस्य मे
स्तादत्यंतलयः सनातनचिदानंदात्मनि स्वात्मनि ॥ ९६ ॥
उत्कीर्णामिव वर्तितामिव हृदि न्यस्तामिवालोकय-
न्नेतां सिद्धगुणस्तुतिं पठति यः शश्वच्छिवाशाधरः ।
रूपातीतसमाधिसाधितवपुः पातः पतद्दुष्कृत-
व्रातः सोऽभ्युदयोपभुक्तसुकृतः सिद्धेत् तृतीये भवे ॥ ९७ ॥

इति सिद्धभक्तिविधानम् । अथातो महर्षिपर्युपासनविधानम् ।

वृषं वृषभसेनाद्याः सिंहसेनादयोऽजितम् । संभवं चारुषेणाद्या वज्रनाभिपुरस्सराः ॥ ९८ ॥
ये वज्रचमरप्रष्ठाः सुपार्श्वं बलपूर्वकाः ॥ ९९ ॥
कपिध्वजं चामराद्याः सुमतिं पद्मलांछनम् । विदर्भाद्याः शीतलेशमनगारपुरोगमाः ॥ १०० ॥
चंद्रप्रभं दत्तमुखाः पुष्पदंतं समाश्रिताः । विमलं मेरुपौरस्त्या जयार्याद्याश्चतुर्दशम् ॥ १०१ ॥
कुंथुप्रधानाः श्रेयांसं धर्माद्या द्वादशं जिनम् । स्वयंभूप्रमुखाः कुंथुं कुंभार्याद्यास्त्वरप्रभम् ॥ १०२
धर्मं त्वरिष्टसेनाद्याः शांतिं चक्रायुधादयः ।

कोई भव्य जीव इस सिद्धगुणस्तुतिको शुद्ध मन-वचन कायसे करता है वह तीसरे भवमें अवश्य अनंत सुखका स्थान मोक्षको पा सकता है ॥ ९७ ॥ इस प्रकार सिद्धभक्तिकी विधि वर्णन की गई है । अब महर्षियोंकी पूजाविधि कहते हैं—"वृष" इत्यादि श्लोकसे लेकर

मल्लिं विशाखप्रमुखा मल्ल्याद्या मुनिसुव्रतम्। नमीशं सुप्रभासाद्या वरदत्ताग्रतः सराः॥१०३
नेमिं पार्श्वं स्वयंभ्वाद्या गौतमाद्याश्च सन्मतिम्।तेभ्यो गणधरेशेभ्यो दत्तोऽर्घोऽयं पुनातु नः१०४
ये सन्मतेरिन्द्रभूतिर्वायुभूत्यग्निभूतिकौ। सुधर्ममौर्यौ मौड्याख्य. पुत्रमैत्रेयसंज्ञितौ ॥ १०५॥
अकंपनो धवेलाख्यः प्रभासश्च गणाधिपाः। एकादशैदंयुगीनमुन्यार्द्यास्तानुपास्महे ॥१०६॥
श्रीगौतमसुधर्माह्वजंब्वाख्यान् केवलेक्षणान्। श्रुतकेवलिनो विष्णुनंदिमित्रापराजितान्।१०७।
गोवर्धनं भद्रबाहुं दशपूर्वधरान् पुनः। विशाखप्रौष्ठिलाचार्यौ क्षत्रियं जयसाह्वयम्॥ १०८॥
नागसेनं च सिद्धार्थं धृतिषेणसमाह्वयम्। विजयं बुद्धिल गंगदेवाद्यं धर्मसेनकम्॥ १०९॥
एकादशांगनिष्णातान्नक्षत्रजलपालकौ। पांडुं च ध्रुवसेनं च कंसं चाथाग्रिमांगिनः॥११०॥
सुभद्रं च यशोभद्रं भद्रबाहुमनुक्रमात्। लोहाचार्यं यजामोऽत्र जिनसेनादिकानपि ॥ १११ ॥
यजेर्हद्बलिमुक्तांगं पूर्वांशं घनं दिनम्। धरसेनगुरुं पुष्पदंतं भूतबलिं तथा ॥ ११२ ॥
जिनचंद्रकुंदकुंदाचार्योमास्वातिवाचकौ। समंतभद्रस्वाम्यार्य शिवकोटिं शिवायनम्॥११३॥

एकसौ सत्रहवें श्लोकतक पाठ पढकर वृषभसेन आदि आचार्योंको जलादि अष्टद्रव्यसे अर्घ देवे ॥ ९८ से ११७ तक। सिद्धोंके बाद पुष्पांजलि देकर अर्घ चढाकर पंचांग प्रणाम करे इस प्रकार महर्षियोंका पूजाका विधान समाप्त हुआ। अब यहांसे यज्ञदीक्षाकी विधि कहते हैं—"न्यस्येह" इत्यादि श्लोक बोलकर भगवान्के सिंहासनके आगे चंदन पुष्प वस्त्रादिको

पूज्यपादं चैलार्चार्यं वीरसेनं श्रुतेक्षणम् । जिनसेनं नेमिचंद्रं रामसेनं सुतार्किकान्॥११४॥
अकलंकानंतविद्यानंदिमाणिक्यनंदिनः । प्रभाचंद्रं रामचंद्रं वासुवेंदुमवाससम् ॥ ११५ ॥
गुणभद्रादिकानन्यानपि श्रुततपःपरान् । वीरांगजातानर्घेण सर्वान् संभावयाम्यहम् ॥११६

निर्ग्रंथाः शुद्धमूलोत्तरगुणमणिभिर्येऽनगारा इतीयुः
सप्तां ब्रह्मादिधर्मैऋषय इति च ये बुद्धिलब्ध्यादिसिद्धैः ।
श्रेण्योश्चारोहणैर्ये यतय इति समग्रेतराध्यक्षबोधै-
र्ये मुन्याख्या च सर्वान् प्रभुमह इहतानर्घयामो मुमुक्षून् ॥ ११७ ॥

सिद्धानुत्तरेण पुष्पांजलिं वितीर्य पंचांगं प्रणाम कुर्यात् ॥ इति महर्षिपर्युपासनविधानम् ।

अथातो यज्ञदीक्षाविधानम् ।

न्यस्येह भगवत्पादपीठे दिव्यं प्रसाधनम् । कुर्वेदमाददेऽनादिसिद्धमंत्राभिमंत्रितम्[1]॥११८॥
पूज्यपूजावशेषेण गोशीर्षेणाहृतालिना । देवाधिदेवसेवायै स्ववपुश्चार्चयेमुना[2] ॥ ११९ ॥
जिनांघ्रिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुग्रहक्षमाः । इमाः स्वर्गरमादूतीर्धरयामि त्रस्रजः[3]॥ १२० ॥

मंत्रित कर रखे। यह चंदनादिका अभिमंत्रण हुआ । ११८॥ "पूज्य" इत्यादि श्लोक पढ़कर अपने अंगपर चंदनका लेप करे। यह चंदनलेपविधि हुई ॥ ११९ ॥ "जिनांघ्रि" इत्यादि

१ श्रीचंदनाद्यभिमंत्रणम् । २ श्रीचंदनानुलेपनं । ३ स्रग्धारणं ।

शुंभत्पुष्पतिकादशे शुचिरुची भ्राजिष्णुमैत्रीभरं
सच्छालापतिना गुणौ नव निशोद्गीर्णैरिवामूत्रिते ।
एकद्रव्यवदार्पदग्भिरपि चोद्दिश्ये प्रवेश्ये नख-
च्छिद्रेपीह महे मभोरहमिमे दिव्ये दधे वाससी ॥ १२१ ॥
मुक्ताशेखरपट्टयोर्निजकरैराक्रम्य चूळाकिके
राज्ञो जित्वरवल्कमप्यतिकरं रोद्धुं बलाद् दृप्यतोः ।
स्फूर्जत्कुंडलकर्णपूररचितोपातेंद्रचापश्रमे
मूर्द्धे तन्मुकुटं जितार्यमजयत्यर्हत्मणामोद्धुरे ॥ १२२ ॥
प्रालंबसूत्राजिनसूत्रविराजिहार सद्दर्शनस्फुरितात्मतेजः ।
ग्रैवेयकं चरणचारु भजन् जिनेज्या सज्जस्तनोम्यमलचिद्रुचियज्ञः ॥१२३॥

कहकर माला पहरे । यह मालाधारणविधि है ॥ १२० ॥ "शुभत्" इत्यादि पढकर देवांगवस्त्रोंको पहरे । यह वस्त्रधारण हुआ ॥ १२१ "मुक्ताशेखर" इत्यादि पढकर मुकुट धारण करना चाहिये । यह मुकुटधारणविधि जानना ॥ १२२ ॥ "प्रालम्बसूत्र" इत्यादि पढकर यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करे । यह यज्ञोपवीतविधि हुई ॥ १२३ ॥

१ देवांगवस्त्रपरिग्रह । २ शेखरादिविशिष्टमुकुटोपयोगः । ३ प्रालंबसूत्रायुपेतयज्ञोपवीतप्रवृत्तिः ।

केयूरांगदकटकैर्दोलास्तंभौ जिनेन्द्रमखलक्ष्म्याः ।
सत्कृत्य भुजौ तद्रसमुन्मुद्रयितुं करेर्पये मुद्राम् ॥ १२४ ॥
छुरिकाछविविच्छुरितं रूपरुचि चुंबनोत्कदाममुखम् ।
सारसनं वद्धांघ्री सकनकमुद्रौ जिनाध्वरे दधे ॥ १२५ ॥
इदममलिनसम्यग्दर्शनज्ञानदेशव्रतमयचरितात्माकर्मिकब्रह्मचर्यम् ।
स्फुरदरमुपवासेनाद्य रत्नत्रयं मे भवतु भगवदर्हद्यज्ञदीक्षाविशिष्टम् ॥१२६॥
नन्वनद्ध्युपवीतमर्जुनरुचिभव्यक्तरत्नत्रयं
ख्याताणुव्रतशक्तिपंचवसुमद्धी भूल्करे कंकणम् ।
मौंज्या श्रोणियुजा जिनक्रतुमिति ब्रह्मव्रतं द्योतयन्
यज्ञेस्मिन् खलु दीक्षितोहमधुना मान्योस्मि शक्रैरपि ॥ १२७ ॥

"केयूरांगद" इत्यादि श्लोक पढकर बाजू अगूठी कडे पहरने चाहिये। यह कडे अगूठी आदि पहरनेका विधान जानना ॥ १२४ ॥ "छुरिका" इत्यादि श्लोक पढकर करधनी व चरणमुद्रिका पहरे। यह कटिसूत्रादिविधि हुई ॥ १२५ ॥ "इदममलिन" इत्यादि श्लोक पढकर अर्हत्पूजाकी दीक्षाको स्वीकार करे ॥ १२६ ॥ "नन्वनद्ध" इत्यादि श्लोक बोलकर

१ केयूरादिमुद्रिकास्वीकारः। २ कटिसूत्रादिसमेतचरणोर्मिकाधारणं। ३ अर्हद्यज्ञदीक्षांगीकारः। ४ दीक्षा चिह्नोद्वहनं।

ॐ वज्राधिपतये आ हा अः ऐं हौ हं क्ष्रूं क्ष क्षः इंद्राय संवौषट्। अनेनैकविंशतिवारानात्मानमधिवासयेत् ॥ इति यज्ञदीक्षाविधानम् । ॐ परमब्रह्मणे नमो नमः स्वस्ति स्वस्ति जीव जीव नंद नंद वर्द्धस्व वर्द्धस्व विजयस्व विजयस्व अनुशाधि अनुशाधि पुनीहि पुनीहि पुण्याह पुण्याह मांगल्य मांगल्यं । पुष्पांजलिः ।

क्षेत्रपालाय यज्ञेऽस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे। बलिं दिशामि दिश्यग्रेर्वेद्यां विघ्नविघातिने ॥१२८॥

ॐ ह्रीं क्रौं अत्रस्थक्षेत्रपालाय इदं . स्वाहा ।

उत्खातपूरितसमीकृततत्कृतायां पुण्यात्मनीह भगवन्मखमंडपोर्व्याम् ।
वास्त्वर्चनादिविधिकल्पमखाभिभागं वेद्यां यजामि शशिभृद्दिशि वास्तुदेवम्॥१२९॥

पुष्पांजलिः ।

श्रीवास्तुदेववास्तूनामधिष्ठातृतयानिशम् । कुर्वन्ननुग्रहं कस्य मान्यो नास्तीति मान्यसे॥१३०॥

दीक्षाके चिह्न मौंजीबंधन ब्रह्मचर्यादिको धारण करे ॥ १२७॥ " ॐ वज्राधिपतये. . संवौषट् " इसको बोलकर इक्कीस वार अपनेको मंत्रित करे ॥ इस प्रकार यज्ञदीक्षाविधि जानना । अब मंडपकी प्रतिष्ठाविधि कहते है। " ॐ परम " इत्यादि कहकर पुष्पोंको क्षेपण करे । " क्षेत्रपालाय " इत्यादि कहकर " ॐ ह्रीं " इत्यादि पढकर क्षेत्रपालको जलादि चढावे ॥ १२८ ॥ " उत्खात " इत्यादि श्लोक पढकर पुष्पांजलि दे ॥ १२९ ॥ " श्रीवास्तु "

ओं ह्रीं क्रौं वास्तुदेवाय इदमित्यादि ' '' 'स्वाहा ।

आयात भो वातकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
यज्ञांशमभ्येत सुगंधिशीतमृद्धात्मना शोधयताऽवरोर्वीम् ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं पूता कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा। दर्भपूलेन भूमिं समार्जयेत् ।

आयात भो मेघकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
गृह्णीत यज्ञांशमुदीर्णशंपा गंधोदकैः प्रोक्षत यज्ञभूमिम् ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं मेघकुमाराय धरा प्रक्षालय प्रक्षालय अ ह स व क्ष य क्ष: फट् स्वाहा । दर्भपूलोपात्तजलेन भूमिं सिंचेत् ।

आयात भो वह्निकुमारदेवा आधानत्रिभ्यादिविधेयसेवाः ।
भजध्वमिज्यांशमिमां मखोर्वीं ज्वालाकलापेन परं पुनीत॥ १३३ ॥

इत्यादि श्लोक तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वास्तुदेवको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१३०॥ "आयात भो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वायुकुमारको जलादि चढावे । दर्भकी बुहारीसे भूमिको शुद्ध करे ॥ १३१ ॥ "आयात भो" इत्यादि और 'ओं ह्रीं' इत्यादि कहकर मेघकुमारको बुलावे, फिर दर्भके पूलेसे जल लेकर छिडके ॥ १३२ ॥ "आयातभोः वह्नि"

ओं वज्राधिपतये आ हा अः ऐं ह्रौं ह्‌. क्ष्रूं क्ष क्ष. इंद्राय संवौषट्। अनेनैकविंशतिवारानात्मानमधिवासयेत् ॥ इति यज्ञदीक्षाविधानम्। ओं परमब्रह्मणे नमो नमः स्वस्ति स्वस्ति जीव जीव नंद नंद वर्द्धस्व वर्द्धस्व विजयस्व विजयस्व अनुशाधि अनुशाधि पुनीहि पुनीहि पुण्याहं पुण्याह मांगल्यं मांगल्यं। पुष्पाजलिः।

क्षेत्रपालाय यज्ञेस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे। वलिं दिशामि दिश्यग्नेर्वेद्यां विघ्नविघातिने ॥१२८॥

ओं ह्रीं क्रों अत्रस्थक्षेत्रपालाय इद ... . स्वाहा।

उत्खातपूरितसमीकृततत्कृतायां पुण्यात्मनीह भगवन्मखमंडपोर्व्याम्।
वांस्त्वर्चनादिविधिलब्धमखाभिभागं वेद्यां यजामि शशिभृद्दिशि वास्तुदेवम्॥१२९॥

पुष्पाजलि।

श्रीवास्तुदेववास्तूनामधिष्ठातृतयानिशम्। कुर्वन्ननुग्रहं कस्य मान्यो नास्तीति मान्यसे॥१३०॥

दीक्षाके चिह्न मौजीबंधन ब्रह्मचर्यादिको धारण करे ॥ १२७ ॥ "ओ वज्राधिपतये संवौषट्" इसको बोलकर इक्कीस वार अपनेको मंत्रित करे ॥ इस प्रकार यज्ञदीक्षाविधि जानना। अब मंडपकी प्रतिष्ठाविधि कहते हैं। "ओ परम" इत्यादि कहकर पुष्पोंको क्षेपण करे। "क्षेत्रपालाय" इत्यादि कहकर "ओं ह्रीं" इत्यादि पढकर क्षेत्रपालको जलादि चढावे ॥ १२८ ॥ "उत्खात" इत्यादि श्लोक पढकर पुष्पांजलि दे ॥ १२९ ॥ "श्रीवास्तु"

ओं ह्रीं क्रों वास्तुदेवाय इदमित्यादि .... स्वाहा ।

आयात भो वातकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
यज्ञांशमभ्येत सुगंधिशीतमृद्धात्मना शोधयताध्वरोर्वीम् ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशनाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा। दर्भपूलेन भूमिं समार्जयेत् ।

आयात भो मेघकुमारदेवाः प्रभोर्विहारावसराप्तसेवाः ।
गृह्णीत यज्ञांशमुदीर्णशंपा गंधोदकैः प्रोक्षत यज्ञभूमिम् ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं मेघकुमाराय धरा प्रक्षालय प्रक्षालय अ ह स व झ य' क्षः फट् स्वाहा । दर्भपूलोपात्तजलेन भूमिं सिंचेत् ।

आयात भो वह्निकुमारदेवा आधानविध्यादिविधेयसेवाः ।
भजध्वमिज्यांशमिमां मखोर्वीं ज्वालाकलापेन परं पुनीत ॥ १३३ ॥

इत्यादि श्लोक तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वास्तुदेवको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१३०॥ "आयात भो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वायुकुमारको जलादि चढावे । दर्भकी बुहारीसे भूमिको शुद्ध करे ॥ १३१ ॥ "आयात भो" इत्यादि और 'ओं ह्रीं' इत्यादि कहकर मेघकुमारको बुलावे, फिर दर्भके पूलेसे जल लेकर छिडके ॥ १३२ ॥ "आयातभोः वह्नि"

ओं र अग्निकुमाराय भूमिं ज्वलय २ अ ह स व श ठं य क्ष फट् स्वाहा ज्वलद्दर्भपूलानलेन भूमिं ज्वलयेत् । प्राचीमैशानीं चान्तरा वातकुमारादिस्थापन ।

उद्धात भो षष्टिसहस्रनागाः क्ष्माकामचारस्फुटवीर्यदर्पाः ।
प्रतृप्यतानेन जिनाध्वरोर्वीं सेकात्सुधागर्वमृजामृतेन ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं क्रों षष्टिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्य स्वाहा । नागतर्पणार्थमैशान्या दिशि जल क्षिपेत् ।

ब्रह्मस्थाने मघोनः ककुभि हुतभुजो धर्मराजस्य रक्षो-
राजस्याहीन्द्रपाणे खनिरुद्भृतः शम्भुमित्रस्य शंभो
नागेंद्रस्यामृतांशोरपि सदकलसत्पुष्पदूर्वादिगर्भान्
दर्भान् नेत्रां न्यसामि न्यसितुमिह जिनाद्यासनानि क्रमेण ॥ १३५ ॥

दर्भन्यासविधानम् । "आभि. पुण्याभिरद्भिरभिपर्चामि भूमिम्" । भूमिशुद्धि ।

और "ओं र" इत्यादि पढकर अग्निकुमारका आह्वानन करे । फिर जलते हुए दर्भके पूलेकी आगसे भूमिको तपावे ॥ पूर्व तथा ऐशानदिशामें वातकुमार आदिका स्थापन करे ॥ १३३ ॥ "उद्धात" इत्यादि "ओं ह्रीं" इत्यादि पढकर नागकुमारको संतुष्ट करे । नागकुमारके तृप्त करनेके लिये ईशानदिशामें जलको क्षेपण करे ॥ १३४ ॥ "ब्रह्मस्थाने" इत्यादि पढकर दर्भको स्थापन करे ॥ १३५ ॥ "आभि पुण्याभि" इत्यादि पढकर मंडपके भीतर चारों तरफ

साष्टारत्निशतोंद्रिवेदिरुचिरं शक्रः कुबेरेण यं
ज्यायांसं मणिमंडपं विरचयत्यर्हत्प्रतिष्ठाकृते ।
अंतर्निर्मितदिविलक्ष्मीकटाक्षोद्भटः
सोयं मंगलमंडपो विजयते जैनेंद्रतिष्ठोत्सवे ॥ १३६ ॥

मडपात[1] समतात् कुकुमाक्तपुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

पुण्या एतेन भूपा प्रवचनपठितस्तंभयज्ञांगपात्र
द्वार्भावद्रव्यबीजध्वजकलशदलस्रग्वितानादिभावाः ।
स्तोत्राशीर्गीतवाद्यध्वनिनिचितदिशो भक्तिकौघास्तथैते
त्रिःसूत्रैः पंचवर्णैर्बहिरहमवसून्यैनमर्घेण युंजे ॥ १३७ ॥

भूषणादिवस्तुषु पृथक् पुष्पाक्षत प्रक्षिप्य बहि पचवर्णसूत्रेण त्रीन् वारान् वेष्टयित्वा अर्घं दद्यात् । कुकुसे (केशरसे) मिले हुए पुष्प-अक्षतका क्षेपण करे ॥ १३६ ॥ " पुण्या एतेन " इत्यादि पढकर आभूषण आदि वस्तुओंमें पुष्प अक्षत क्षेपण करके बाहर पांच रंगके डोरेको तिहरा लपेटकर अर्घ दे ॥ १३७ ॥ " मंडपस्यास्य " इत्यादि बोलकर तोरणके पास दाहिनी तरफ

---

१ " द्रव्येयपि हस्तानां विधेयाष्टोत्तरं शतम् । शतेंद्रो जिनबिंबानां प्रतिष्टां कुरुते स्वयम् " ॥ तथाहि-द्वादशा रत्निविस्तारं पंचाधिकदशप्रम । अष्टादशकरायाम सैकविंशतिहस्तकम् । चतुर्विंशतिहस्तं वा दृढसूत्रेण सूत्रयेत ॥

मंडपस्यास्य रक्षार्थं कुमुदांजनवामनान् । पुष्पदंतं च पूर्वादिद्वारेषु स्थापयाम्यहम् ॥ १३८ ॥

तोरणोपाताय सन्यदेशेषु कुकुमाक्तपुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

मुक्तास्वास्तिकमास्थितं नवसुधाधौतं मुखैः पंचाभि—
र्भांत नव्ययवप्ररोहरुचिरैः कुंभं दृशा लालयन् ।
रंभास्तंभरुचाश्मगर्भखचितं सौवर्णदंडं दधत
माग्द्वाराधिकृत मतीच्छ कुमुद त्वं पूतमेत वलिम् ॥ १३९ ॥

ओं ह्रीं कुमुदप्रतीहार निजद्वारि तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ इद अर्घ्यं पाद्य गंध इत्यादि स्वाहा ।

मुक्ता . ... ।

लाहि त्वं वलिमंजनाजनरुचे द्वारे स्थितो दक्षिणे ॥ १४० ॥

ॐ ह्रीं अंजनप्रतीहार . स्वाहा ।

मुक्ता ... . ।

मत्यग्द्वारनियुक्त वामन वलिं कुंदद्युत स्वीकुरु ॥ १४१ ॥

कुकुसे मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ १३८ ॥ "मुक्ता" इत्यादि "ओं ह्री" इत्यादिसे कुमुदप्रतीहारको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ १३९ ॥ "मुक्ता लाहि त्वं" इत्यादि बोलकर तथा "ओ ह्रीं" पढकर अजनद्वारपालको जलादिसे संतुष्ट करे ॥ १४० ॥ "मुक्ता-मत्य-

ओं ह्रीं वामनप्रतीहार .... स्वाहा ।

मुक्ता........ . ... ।

स्रक्पुष्पोज्ज्वलपुष्पदंत वलिना तृप्योत्तरद्वाः स्थितः ॥ १४२ ॥

ओं ह्रीं पुष्पदतप्रतीहार ... . .स्वाहा ।

इति मंडलप्रतिष्ठाविधानं । अथातो वेदिप्रतिष्ठविधानं ।

आदेशावहितान्यवासवपरीवारो विनिर्मोप्य यां

दृक्शुद्धिप्रतिवृद्धये प्रयजते सौधर्मपोऽर्हत्प्रभुम् ।

सोयं वेदिप्रताल्लिकापरिकरश्चंद्रोपकाद्योप्ययं

सोत्र स्फूर्जति मंगलादिवदिमे ते भांति भांडोच्चया ॥ १४३ ॥

वेद्यां चंद्रोपकादिपु च कुंकुमाक्तं पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

प्रोक्ष्य प्रोक्षणमंत्रपूतपयसा वेदीं वरार्घैः समा

ग्द्वार" इत्यादि और "ओं ह्रीं" इत्यादि बोलकर वामनद्वारपालको प्रसन्न करे ॥१४१॥ "मुक्ता–स्रक पुष्प" इत्यादि "ओंह्रीं" इत्यादि बोलकर पुष्पदंत द्वारपालको अनुकूल करे ॥१४२॥ इस प्रकार मंडलप्रतिष्ठाकी विधि पूर्ण हुई । अब वेदीप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं । "आदेशा" इत्यादि बोलकर वेदीके चंदोए आदिमें कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षत क्षेपै ॥ १४३ ॥

लभ्याभ्यर्च्य चरुस्रगादिभिरमूं नीराजयाम्योजसे ।
लावण्योद्गतयेत्रतार्थं लवणस्तामं पवित्रार्णसा
संपूर्णानवतारयामि कलशानस्या महिम्नेष्ट च ॥ १४४ ॥

प्रोक्षणादिविधि· । इति वेदिकास्थापन । अथातो यागमडलवर्तनाविधानम् ।

नागेंद्रार्थपते हरित्प्रभजपां भासासिताभप्रिया
युक्ता एत्य सवर्णचूर्णनिचयैः मीतेंद्रवेद्यामिव ।
वेद्यां द्वित्रिचतुर्गुणाष्टदलयुक्पद्मं चतुर्धाश्वतु–
ष्कोणं वर्तयतात्र मडलमथो वज्राल्लिखेंद्राश्रिपु ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं क्ष्मीं श्वेतपीतहरितारुणकृष्णमणिचूर्णं स्थापयापि स्वाहा । चूर्णस्थापनमत्रः ।

चद्राभचंद्राभविमानमाल्यभूषांगरागा वरनागराज ।
हस्तांबुजस्थार्जुनरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं नागराजायामिततेजसे स्वाहा । श्वेतचूर्णस्थापनम् ।

" प्रोक्ष्य " इत्यादि कहकर वेदीपर जल छिडके ॥ १४४ ॥ यह प्रोक्षणादिविधि हुई । इस-प्रकार वेदीका स्थापन जानना । अव यागमडलकी विधि कहते है । " नागेंद्रा " इत्यादि " ओं ह्रीं " कहकर पाचो रंगका चूर्ण स्थापन करे ॥ १४५ ॥ " चंद्राभ " इत्यादि " ओ ह्रीं " इत्यादि बोलकर नागराजकेलिये सफेद चूर्ण स्थापन करे ॥ १४६ ॥ " हेमाभ " इत्यादि

हेमाभ हेमामविलेपनस्रग्विमानभूषांशुकयक्षराज ।
हस्तार्पिता रत्नसुवर्णचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेन्द्रयज्ञे ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं हेमप्रभाय धनदाय ठ ठ स्वाहा । पीतचूर्णस्थापनम् ।

हरित्प्रभामर्त्त हरित्प्रभस्रग्वासोविमानाभरणागराग ।
करात्तगारुत्मतरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४८ ॥

ओं ह्रीं हरित्प्रभाय शत्रुमथनाय स्वाहा । हरितचूर्णस्थापनम् ।

रक्तप्रभामर्त्य जपाभभूषास्रग्वर्णकालंकरणाभ्रमाय ।
कराब्जराज कुरुविंदचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं रक्तप्रभाय सर्ववशकराय वषट् वौषट् स्वाहा । अरुणचूर्णस्थापन ।

भृंगाभवृंदारककृष्णवस्त्रविलेपनाकल्पविमानदामन् ।
पाणिप्रणीतासितरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं कृष्णप्रभाय मम शत्रुविनाशनाय फट् २ घे घे स्वाहा । कृष्णचूर्णस्थापनम् ।

" ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर कुबेरके वास्ते पीले चूर्णको चढावे ॥ १४७ ॥ " हरित्प्रभा " " ओं ह्रीं " इत्यादिसे हरित्प्रभदेवको हराचूर्ण चढावे ॥ १४८ ॥ " रक्तप्रभा " " ओं ह्रीं " बोलकर रक्तप्रभदेवको लाल चूर्णका स्थापन करे ॥ १४९ ॥ "भृंगाभ" 'ओं ह्रीं" इत्यादि कहकर कृष्णप्रभदेवको शत्रुनाशनकेलिये काले चूर्णका स्थापन करे ॥ १५० ॥ " शची "

शचीकटाक्षेपु शरव्यशक्र त्वमेत्य विघ्नौघविघातहेतो
करस्फुरद्वज्ररजोभरेण कोणेपु वज्राणि लिखाद्य वेद्याः ॥ १५१ ॥

वेदीकोणेपु प्रत्येकं हीरक न्यसेत् । वज्रस्थापनम् । इति यागमडलवर्तनाविधानम् ।

इत्याम्नायनिरस्तमोहतिमिरः सम्यग्जिनेज्यादिभिः
काचिद्भावविशुद्धिमाप्य विधिभिः सौधर्मभावं भजन् ।
कृत्वा मंडलपूजनं वितनुते योर्हत्प्रतिष्ठाविधिः
सोत्रामुत्र च मोदते शुभनिधिः स्तुत्यः शिवाशाधरैः ॥ १५२ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि तीर्थोदकादानादिविधानीयो नाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

इत्यादि बोलकर वेदीके कोनोंमें हीरे रत्नका स्थापन करे ॥ १५१ ॥ इस तरह यागमंडल विधान कहा है। इस प्रकार गुरुआम्नायसे सब जानकर भावोंको निर्मल कर अपनेको सौधर्म समझता हुआ जो प्रतिष्ठाचार्य मंडल पूजन आदिसे अर्हंतकी प्रतिष्ठाविधिका सब जगह प्रचार करता है वह पुण्यका खजाना प्रतिष्ठाचार्य दोनों लोकमें सुख पाता है और मोक्षके चाहनेवाले भव्योंसे अथवा मुझ आशाधरसे पूजित होता है ॥ १५२ ॥

इस प्रकार पं० आशाधरविरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें तीर्थोदक लाने आदिको कहनेवाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

शचीकटाक्षेपु शरव्यशक्र त्वमेत्य विघ्नौघविघातहेतो
करस्फुरद्वज्ररजोभरेण कोणेपु वज्राणि लिखाद्य वेद्याः ॥ १५१ ॥

वेदीकोणेषु प्रत्येकं हीरक न्यसेत् । वज्रस्थापनम् । इति यागमंडलवर्तनाविधानम् ।

इत्याम्नायनिरस्तमोहतिमिरः सम्यग्जिनेज्यादिभिः
काचिद्भावविशुद्धिमाप्य विधिभिः सौधर्मभावं भजन् ।
कृत्वा मंडलपूजनं वितनुते योर्हत्प्रतिष्ठाविधिः
सोत्रामुत्र च मोदते शुभनिधिः स्तुत्यः शिवाशाधरैः ॥ १५२ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि तीर्थोदकादानादिविधानीयो नाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

इत्यादि बोलकर वेदीके कोनोंमें हीरे रत्नका स्थापन करे ॥ १५१ ॥ इस तरह यागमंडल विधान कहा है। इस प्रकार गुरुआम्नायसे सब जानकर भावोंको निर्मल कर अपनेको सौधर्म समझता हुआ जो प्रतिष्ठाचार्य मंडल पूजन आदिसे अर्हंतकी प्रतिष्ठाविधिका सब जगह प्रचार करता है वह पुण्यका खजाना प्रतिष्ठाचार्य दोनों लोकमें सुख पाता है और मोक्षके चाहनेवाले भव्योंसे अथवा मुझ आशाधरसे पूजित होता है ॥ १५२ ॥

इस प्रकार पं० आशाधरविरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें तीर्थोदक लाने आदिको कहनेवाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

त्रिभुवनसधर्मिकामध्येपणाय समतात्पुष्पाक्षत विकिरेत् ।

दृग्शुद्ध्यादिसमिद्धशक्तिपरमब्रह्मप्रकाशोद्धुर
शब्दब्रह्मशरीरमीरितविपद्यन्मूलमंत्रादिभिः ।
इंद्राद्यैरभिराध्यते तदभितो दीप्राग्नि सः क्ष्मासने
न्यस्यार्चामि सुभुक्तिदमहब्रह्मार्हमित्यक्षरम् ॥ ३ ॥

शब्दब्रह्मावर्जनाय कर्णिकामध्ये पुष्पाजलिं विसृजेत् ।

चिद्रूपं विश्वरूपव्यतिकरितमनाद्यंतमानदसांद्रं
यस्माक् तैस्तैर्विवर्तैर्न्यतदतिपतद्दुःखसौख्याभिमानैः ।
कर्मोद्रेकात्तदात्मप्रतिघमलाभिदोद्भिन्ननिःसीमतेजः
प्रत्यासीदत्परौजः स्फुरदिह परमब्रह्म यक्षेर्हमाक्षम् ॥ ४ ॥

परमब्रह्मयज्ञप्रतिज्ञानाय कर्णिकातः कुसुमांजलिमावपेत् । इति प्रस्तावना ॥

"दृग्शुध्या" इत्यादि कहकर शब्द ब्रह्मके नामसे कर्णिकाके बीचमें पुष्पांजलि क्षेपण करे॥३॥ "चिद्रूपं" इत्यादि पढकर परब्रह्म अर्हतकी पूजाके अभिप्रायसे कर्णिकाकेमध्यमे पुष्पोको क्षेपण करे ॥ ४ ॥ " स्वामिन् " इत्यादि"ओं ह्रीं"इत्यादि बोलकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण

स्वामिन् संवौषट् कृतावाहनस्य द्विष्ठांतेनोट्टंकितस्थापनस्य ।
स्त्वं निर्नेत्तुं ते वषट्कार जाग्रत् सान्निध्यस्य प्रारभेयाष्टधेष्टिम् ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्म अत्रावतरावतर संवौषट् । अनेन कर्णिकामध्ये पुष्पांजलिं प्रयुज्या-
वाहयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्री परमब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अनेन तद्वत् प्रतिष्ठयेत् । ओं इत्यादि
मम सन्निहितं भव भव वषट् । अनेन तद्वत्सनिधापयेत् । आह्वानादिपुरस्सरपूजावसरप्रार्थना ।

अथ पूजा ।

चंचद्रत्नमरीचिकांचनकनत्भृंगारनालश्रुत—
श्रीखंडस्फुटिकादिवासितमहातीर्थाम्बुधाराश्रिया ।
हंतं दुःकृतमेतया स्वसमयाभ्यासोद्यतैराश्रितां
सत्कुर्वीय मुदा पुराणपुरुष त्वत्पादपीठस्थलीम् ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री परब्रह्म . ... नीरधारा ।

इमैः संतापार्चिः सपदि जयदसैः परिमल—
प्रथामूर्च्छद्घ्राणैरनिपद्दगंशुव्यतिकरात् ।

करे फिर पूजा करना आरंभ करे ॥ ५ ॥ " चंचद्रत्न " इत्यादि और 'ओं ह्रीं' कहकर जल-
धारा चढावे ॥ ६ ॥ " इमैः " इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं पढकर चंदन चढावे ॥ ७ ॥ " सुगंधि "

स्फुरत्पीतच्छायैरिव शमनिधे चंदनरसै-
विंलिंपेयं पेय शतमखदृशां त्वत्पदयुगम् ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं . .. . गधं ।

सुगंधिमधुरो जूसकलतंदुलछद्मना सुभक्तिसलिलोक्षितैरिव निरीय पुण्यांकुरैः ।
सुपुंजरचनाजित प्रणयपंचकल्याणकैर्भवांतकभवत्क्रमांवुप हरेयमेभिः श्रियै ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं . . .. अक्षत ।

हृदयकमलमन्वचद्भिरामोदयोगाद्रसविसरविलासाल्लोचनाब्जे हसद्भिः ॥
विशदिमजितवोधैर्बुद्धभावत्कमेतैश्चरणयुगमनूनैः प्रार्चयेयं प्रसूनैः ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं .. -- . ...पुष्प ।

सुस्पर्शद्युतिरसगंधशुद्धिभंगी वैचित्री हृतहृदयेंद्रियैरमीभिः ।
भूतार्थक्रतुपुरुष त्वदंघ्रियुग्मं सान्नाय्यैरमृतसखैर्यजेय मुख्यैः ॥ १० ॥

ओं ह्रीं . .. .. , ...नैवेद्यं ।

इत्यादि और 'ओंह्रीं' कहकर अक्षत चढावे ॥८॥ " हृदय " इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' बोलकर पुष्प चढावे ॥९॥ " सुस्पर्श " इत्यादि और 'ओं ह्रीं' बोलकर नैवेद्य चढावे ॥१०॥"जाड्या"

जाड्याधायित्ववैरादिव शशिनमपि स्नेहयुक्तं दहद्भिः
सौदर्यस्वर्णयोगात् पटुतररुचिभिः सोदरत्वादिवाक्ष्णाम् ।
प्रेयोभिस्तत्मतापापहतिमिरहरैर्विश्वलोकैकदीपः
श्राद्धश्चंचद्भिरेभिस्तव पदकमले दीपयेयं प्रदीपैः ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं.... . . ..आरार्तिक ।

धूपानि मानसकृदुग्रदुदीरधूमस्तोमोल्लसन्नूनयनहृद्दलनेत्रनासान् ।
दुष्कर्मगर्भुदचिरोद्धृतये धुताघ त्वत्पादपद्मयुगमभ्यहमुत्क्षिपेयम् ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं ... ... धूप ।

शाखापाकप्रणयविलसद्वर्णगंधर्द्धिसिद्ध-
ध्वस्तद्रव्यांतरमधुरसास्वादरञ्यद्रसज्ञैः ।
एभिश्चोचक्रमुकरुचकश्रीफलाम्रातकाम्र-
प्रायैः श्रेयः सुखफलफलैः पूजयेयं त्वदंघ्रीन् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं . ... .फलम् ।

इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर दीप चढावे॥११॥ " धूपा " इत्यादि और 'ओंह्रीं' कहकर धूप चढावे ॥ १२ ॥ " शाखा " इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर फल चढावे ॥ १३ ॥ " जलगंधा-

जलगंधाक्षतप्रसूनचरुदीपधूपफलोत्तमै-
र्दधिदूर्वादिमंगलयुतैः पृथुकांचनभाजनार्पितैः ।
रचितमिमं विचित्रतौर्यत्रिककीर्तनजयजयस्वन
स्वस्त्ययनेद्धसभ्यमुदमर्घमनर्घ्यं परिक्षिपेय ते ॥ १४ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री परब्रह्मणे अनंतानंतज्ञानशक्तये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं अर्घं च निर्वपामीति स्वाहा । इमान् मंत्रान् ह्युच्चारयन् पूजां दद्यात् । एवं सर्वत्र । इति परमपुरुषार्चनविधानम् ।

तद्बीजं परमं सर्वान् विघ्नान् येनाधिवासितं । निघ्नंति मूलमंत्राय तस्मै पुष्पांजलिं क्षिपेत् १५

ओं नमो अरहंताणं ह्रौं स्वाहा । मूलमंत्रपूजा ।

ऋषयः केवलज्योतिरुन्मेषाय स्मरंति यम् । तस्मै केवलिमंत्राय ददामि कुसुमांजलिम् १६

ओं ह्रीं ह्रैं अर्हत्सिद्धसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा । केवलि मंत्रपूजा ।

क्षत " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर अर्घ चढावे ॥ १४ ॥ इसतरह परम पुरुष श्री अर्हंतदेवका पूजन हुआ । " तद्बीज " इत्यादि तथा " ओं नमो " इत्यादि बोलकर मूलमंत्रको पुष्पांजलि चढावे ॥ १५ ॥ " ऋषयः " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर केवलिमंत्रको पुष्प चढावे ॥१६॥ " पुण्यश्रेणी " इत्यादि तथा "ओं अर्हं" इत्यादि पढ-

पुण्यश्रेणिशुद्धदृग्व्रत्तसेवारागाढ्ढास्तत्तदैश्वर्यभुक्ता ।
या संहार्याभ्यर्णयत्युग्रवोधिं पुंसो नंद्यावर्तमालां यजे तं ॥ १७ ॥

ओं अर्ह नद्यावर्तवलयाय स्वाहा । नद्यावर्तमालार्चनम् ।

शिवपथमनुवम्नतः समाधि मशमवतः सुखपर्वणां मवंधम् ।
यववलयमनल्पवुद्धिकाम्यं वरकुसुमांजलिनांजसार्चयामि ॥ १८ ॥

ओं अर्ह यववलयाय स्वाहा । यववल्यार्चनम् ।

भित्वा कर्मगिरीन् मवुद्धसकलज्ञेयादिसंतः शिवः
पुंसां शुद्धिविशेपतोच्छमनसा सेवाविधौ यस्य ताम् ।
सौख्यं लांति ह्रपार्पणादघहृतेर्ये वा मलं गालयं–
त्यर्घेणोपचरामि मंगलमहृत्तानर्हतोभ्यर्हितान् ॥ १९ ॥

ओं अर्हन्मगलार्घम् ।

कर नद्यावर्तमालाको पुष्पोंसे पूजे ॥ १७ ॥ " शिवपथ " इत्यादि तथा ओं अर्ह इत्यादि कहकर यववलयकी पूजा पुष्पोंसे करे ॥ १८ ॥ " भित्वा कर्मगिरी " इत्यादि पढकर अर्हत मंगलको अर्घ चढावे ॥ १९ ॥ " नामध्वसा " इत्यादि पढकर सिद्धमंगलको अर्घ चढावे

नामध्वंसा तैजसादायुरंतादुत्क्रम्यांगादुत्तमौदारिकाच्च ।

ये भत्क्षणां मंगलं लोकमूर्ध्नि प्रद्योतंते तान् भजेऽर्घेण सिद्धान् ॥ २० ॥

ओं सिद्धमंगलार्घम् ।

ये मार्गस्याचारका देशका ये ये चासक्तं ध्यायकाः साधयंति ।

सिद्धिं साधून् मंगलं भावुकानां तान सर्वानप्युद्यभक्त्यार्घयामि ॥ २१ ॥

ओं साधुमंगलार्घम् ।

दृग्बोधर्वाधिष्णुदयाभभूष्णोः क्षांत्यादिदोष्णो जगदेकजिष्णो ।

सन्मंगलस्योपहरामि केवलिप्रज्ञप्तधर्मस्य सुवर्मणोऽर्घम् ॥ २२ ॥

ओं केवलिप्रज्ञप्तधर्ममंगलार्घम् ।

निश्चित्य श्रुत्या नैगमेनानुचिंतन् न्यस्याद्वा नामस्थापनाद्रव्यभावैः ।

भव्यैः सेव्यंते ये सदा मुक्तिकामस्तेभ्योऽर्हद्भ्योऽर्घोस्त्वेष लोकोत्तमेभ्यः ॥ २३ ॥

अर्हल्लोकोत्तमार्घं ।

॥ २० ॥ " ये मार्ग " इत्यादि पढकर साधु मंगलको अर्घ चढावे ॥ २१ ॥ " दृग्बोध " इत्यादि पढकर केवलिकथित धर्ममंगलको अर्घ चढावे ॥ २२ ॥ " निश्चित्य " इत्यादि पढकर अर्हल्लोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २३ ॥ " नामादिभि " इत्यादि पढकर सिद्ध लोको-

नामादिभिर्येष्टभिरप्यदुष्टैरिष्टाय सति प्रणिधीयमाना ।
विन्यस्य नो आगमभावतस्ताल्लोकोत्तमान् साधु यजेत्र सिद्धान् ॥ २४ ॥

सिद्धलोकोत्तमार्घम् ।

त्र्यूना कोट्योनगारर्षियतिमुनिभिदो ये नवोत्कर्षवृत्त्या
नानादेशान् नृलोके शिवपथमनिशं साधयतः पुनंति ।
घस्रे घस्रे सनीडी भवदमृतरमासंगमा साधवस्ते
भूता भव्या भवंतो विधिवदपचिताः पांतु लोकोत्तमा नः ॥ २५ ॥

साधुलोकोत्तमार्घम् ।

श्रद्धाय व्यवहारतत्त्वरुचिधी चर्यात्मरत्नत्रय
प्रादुःष्यतत्परमार्थतत्रयमयस्वात्मस्वरूपं बुधाः ।
सद्युक्तागमचक्षुषो विदधते लोकोत्तमः केवलि-
प्रज्ञप्तोभ्युदयापवर्गफलदः सोर्घ्येत धर्मोऽनघः ॥ २६ ॥

केवलिप्रज्ञप्तधर्मलोकोत्तमार्घम् ।

त्तमको अर्घ चढावे ॥ २४ ॥ " त्र्यूना " इत्यादि पढकर साधुलोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २५ ॥ " श्रद्धाय " इत्यादि पढकर केवलिप्रणीतधर्म लोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २६ ॥

विद्या प्रियाः षोडश दृग्विशुद्धि-पुरोगमार्हत्यकृदर्थरागाः ।
यथायथं साधु निवेश्य विद्या-देवीर्यजे दुर्जयदोश्चतुष्काः ॥ ३२ ॥

विद्यादेवीसमुदायपूजाविधानाय समस्तहव्यद्रव्यपूर्णपात्रपरमपुरुषचरणकमलयोरवतार्य पार्श्वतो निवेशयेत् । एव सर्वत्रापि विधेयम् ।

विद्याः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः ।
अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ ३३ ॥

भगवति रोहिणि महति प्रज्ञप्ते वज्रशृंखले स्वचलिते ।
वज्रांकुशे कुशलिके जांबूनदिकेस्तदुर्मदिके ॥ ३४ ॥

पुरुषाम्रि पुरुषदत्ते कालि कलाढ्ये कले महाकालि ।
गौरि वरदे गुणर्द्धे गांधारि ज्वालिनि ज्वलज्ज्वाले ॥ ३५ ॥

कहते है । "विद्याप्रियाः ' इत्यादि पढकर विद्यादेवियोंके समूहकी पूजाके लिये सब पूजासामग्रीको अर्हंतके चरणकमलोंमें आरतीरूप करके समीपमे रक्खे ॥ ३२ ॥ " विद्या संशब्द " इत्यादि पढकर आह्वाननादि करे ॥ ३३ ॥ " भगवति " इत्यादि तीन श्लोक बोलकर आवाहनआदिपूर्वक हर एककी पूजाके लिये पत्रोंमें पुष्प अक्षत क्षेपण

मानवि देवि शिखंडिनि खंडिनि वैरोटि शुक्रच्युतेऽच्युतिके ।
मानसि मनस्विनि रते यशसि महामानसीदमुचितं वः ॥ ३६ ॥

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अथ प्रत्येकपूजा ।

विशोध्य यो चेष्टगुणैः सरागो दृष्टिं विरागश्च परां प्रचक्रे ।
सं कुंभशंखाब्जफलांबुजस्था-श्रिताच्र्यसे रोहिणि रुक्मरुक्तम् ॥ ३७ ॥

ओं ह्रीं रोहिणि इदं गधं पुष्पं धूप दीपं चरु बलिं स्वस्तिक यज्ञभाग च यजामहे प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

दृग्ज्ञानचारित्रतपस्सु सूरिपुरस्सरेष्वप्यकृतादरो यः ।
तद्भाक्तिकां स्वाश्वगतेलिनीलां प्रज्ञप्तिकेर्चामि सचक्रखड्गाम् ॥ ३८ ॥

ओं ह्रीं प्रज्ञप्ते इदं ... ., ... स्वाहा ।

रोहिणीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ३७ ॥ "दृग्ज्ञान" इत्यादि और ओंह्रीं इत्यादि बोलकर प्रज्ञप्तिको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ३८ ॥ "व्रतानि" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वज्रशृंखलाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥३९॥ "ज्ञानोपयोग" इत्यादि, "ओंह्रीं"

व्रतानि शीलानि च जातु योंतर्द्वयाभनग्नो वहिरीहया वा ।
तद्भंगिभ स्थापविशृंखलास्त्रा पीता च तृप्तिं पविशृंखलेस्मिन् ॥ ३९ ॥

ओं ह्रीं वज्रशृखले ... . ।

ज्ञानोपयोगं व्यदधादभीक्ष्णं यस्तं भजंतं श्रितपुष्पयानाम् ।
वज्रांकुशे त्वा सृणिपाणिमुद्यद्वीणारसां मञ्जु यजे जनाभाम् ॥ ४० ॥

ओं ह्रीं वज्राकुशे . ... ।

धर्मे रजद्धर्मफलेक्षणे च योजन्मभीस्तस्य मखे शिखिस्था ।
जांबूनदाभा धृतखड्गकुंता जांबूनदे स्वीकुरु यज्ञभागम् ॥ ४१ ॥

ओं ह्रीं जाबूनदे ... . ।

शक्त्यार्थिनां वोधनसंयमांगं यस्त्यागमाधत्त तमानमंतीम् ।
कोकाश्रितां वज्रसरोजहस्तां यजे सितां पूरुषदत्तिके त्वाम् ॥ ४२ ॥

ओं ह्रीं पुरुपदत्ते . . .. . . ।

इत्यादि बोलकर वज्रांकुशाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४० ॥ "धर्मे" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" कहकर जांबूनदाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४१ ॥ "शक्त्यार्थिनां" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर पुरुषदत्ताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥४२॥ "तपासि" इत्यादि

तपांसि कष्टान्यनिगूढवीर्यश्चरन् जगत्रैधमधश्चकार ।
यस्तन्नतार्चा भज कालि भर्मप्रभा मृगस्था मुसलासिहस्ता ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं कालि... ... . ।

चक्रे धिकसाधुषु यः समाधिं तं सेवमाना शरमाधिरूढा ।
श्यामाधनुः खड्गफलास्त्रहस्ता बलिं महाकालि जुषस्व शांत्यै ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं महाकालि... .. .. ।

तपस्विना सयमवाधवर्जं प्रतिबधतात्मवदापदो यः ।
गोधागता हेमरुगब्जहस्ता गौरि प्रमोदस्व तदर्चनांशैः ॥ ४५ ॥

ओं ह्रीं गौरि... ।

तेने शिवश्रीसचिवाय योर्हन्, भक्तिं स्थिरां क्षायिकदर्शनाय ।
चक्रासिभ्रत्कूर्मगनीलमूर्ते गृहाण गांधारि तदंघ्रिगंधम् ॥ ४६ ॥

तथा "ओं ह्रीं" बोलकर कालीको अर्घ चढावे ॥ ४३॥ "चक्रेधिक" इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर महाकालीको अर्घ चढावे ॥ ४४ ॥ "तपस्विना" इत्यादि तथा "ओ ह्रीं" बोलकर गौरीको अर्घ चढावे ॥४५॥ "तेने" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर गांधारीको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं गाधारि... .. .. ।

सत्सूरिभक्तिं प्रतिदेवता यो भेजे यजे ज्वालिनि तन्महे त्वाम् ।
शुभ्रां धनुः खेटकखड्गचक्राद्युग्राष्टबाहुं महिषाधिरूढाम् ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनि . ... ।

शुद्धोपयोगैकफलश्रुतार्थं यो भक्तिमभ्यासबहुश्रुतेषु ।
स्वं धिन्वतो मानवि केकिकण्ठनीलाकिटिस्थासझषत्रिशूला ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं मानवि शिखंडिनि . . .. ।

यो स्पृष्टदृष्टविरोधमर्हदुपज्ञमन्वागममन्वरज्यत् ।
त्वां सिंहगामात्तदर्पसर्पा यज्ञेस्य वैरोटि यजेभ्रनीलाम् ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं वैरोटि ... . ।

॥ ४६ ॥ " सत्सूरि " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर ज्वालामालिनीको अर्घ चढावे ॥४७॥ " शुद्धोप " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर मानवीको अर्घ चढावे ॥ ४८ ॥ " यो स्पष्ट " इत्यादि तथा " ओ ह्रीं " कहकर वैरोटीको अर्घ चढावे ॥४९॥ "पोढौ" इत्यादि तथा " ओ ह्रीं " बोलकर अच्युताको अर्घ चढावे ॥ ५० ॥ " मार्गे " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

पोढौ नयी व्याधिवशोऽप्यवश्यं नावश्यकं यः समयाद्यपेक्षम् ।
धौतासिहस्तां हयगेऽच्युते त्वां हेमप्रभांत प्रणतां प्रणौमि ॥ ५० ॥

ओं ह्रीं अच्युते .. . . ।

मार्गं वृषे निश्चलयन विनेयान् प्राभावयन्नः सुतपः श्रुताद्यैः ।
रक्ताहिगा तत्प्रणताप्रणामसुद्रान्विता मानसि मेसि मान्या ॥ ५१ ॥

ओं ह्रीं मानसि .. . ।

योधात्सधर्मस्वतिवत्सलत्वं रक्ता महामानसि तत्प्रणामे ।
रक्ता महाहंसगतेऽसमूत्रवरांकुशस्रक्सहितां यजे त्वाम् ॥ ५२ ॥

ओं ह्रीं महामानसि .. .. ।

सत्पूजावलिदानलालितमनाः स्फारस्फुरद्वत्सली—
भावावेशवशीकृताः कृतधियामिष्टाश्च पूर्णाहुतिम् ।
विद्यादेव्य इमां प्रतीच्छत जिनज्येष्ठाप्रतिष्ठांजसा
निष्ठा मुख्यमनोरथान् फलवतः कर्तुं यतध्वं मम ॥ ५३ ॥

मानसीको अर्घ चढावे ॥ ५१ ॥ " योधात् " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर महामानसीको अर्घ चढावे ॥ ५२ ॥ " सत्पूजा " इत्यादि बोलकर सबको पूर्णाहुती दे ॥ ५३ ॥ " एवं

पूर्णाहुतिः ।

एवं विद्यादेवताश्चंदनाद्यै रोहिण्याद्याः प्रीणिता मंत्रयुक्तैः ।
निर्मतोर्हद्यागविघ्नानशेपान् प्रीत्युत्कर्पे तज्जुपां पोपयंतु ॥ ५४ ॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पाजलिं क्षिपेत् । इति विद्यादेवतार्चनविधान । अथ चतुर्विंशतिदलन्यस्त-जिनमात्रिकार्चनम् ।

यासां गर्भगृहे हरिमणिहितश्र्यादिक्रिया सस्कृते
दिव्यैंभोरुहविष्टरे किल निजामाधाय शक्तिं पराम् ।
उद्भूता वृपभादयो जिनवृपा विश्वेश्वरा निष्कला-
स्तांश्चाये जिनमातृकाः कजलन्यस्ताश्चतुर्विंशतिः ॥ ५५ ॥

जिनमातृसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

विद्या " इत्यादि बोलकर इष्ट प्रार्थनाके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार विद्यादेवियोंकी पूजाविधि हुई। अब चौवीस पत्रोंपर स्थित चौवीस जिनमाताओंकी पूजा कहते है। " यासां " इत्यादि श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी पूजाके लिये पहलेकी तरह पूजाद्रव्यको समीप रखे ॥ ५५ ॥ " अंवा " इत्यादि बोलकर आवाहनादिपूर्वक प्रत्येक

अंबाः सशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ५६

आवाहनादिपुरस्सर प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

साकेताधिपमन्वनूकतिलक—श्रीनाभिराजप्रिये
सद्वृत्ते पुरदेवसंभवभवद्देवेंद्रसेवोत्सवे ।
त्रैलोक्याग्रपितामहि स्तुतगुणे स्तुत्यैरपीहाभिदा
देवि श्रीमरुदेवि भावयमह दृष्टिप्रसादेन मे ॥ ५७ ॥

ओं मरुदेव्यै इद . . ... ।

मन्विक्ष्वाकुमहोनुबद्धदिनकृद्वंशस्फुरत्कोशला—
स्वामिश्रीजितशत्रुपार्थिवमनोरोलंबराजीविनि ।
विष्वग्वधुजयमदा जितजिनाधीशोद्भवन्यक्कृत—
न्यक्षस्त्रीप्रसवसमर्येत्र विजये त्वार्चन्नधिस्याजये ॥ ५८ ॥

ओं विजयसेनायै . ।

पूजाकी प्रतिज्ञा करनेकेलिये पत्रोंमें पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ५६ ॥ "साकेता" इत्यादि तथा 'ओं मरुदेव्यै' इत्यादि बोलकर मरुदेवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥५७॥ "मन्विक्ष्वाकु" इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं' बोलकर विजयसेनाको अर्घ चढावे ॥५८॥ "स्वावरित" इत्यादि

स्त्रावस्तिपुरेश्वर पुरवंशज दृढराज दृढतम मणयाम् ।
शंभवजिनरत्नखानिं सुखिनि सुपेणे महन्महीये त्वाम् ॥ ५९ ॥

ओं सुपेणायै . . . . ।

साकेतपतौ भवतीमिक्ष्वाकुवरे स्वयंवरे निरताम् ।
अभिनंदनजिनजननीं सिद्धार्थेर्चामि सिद्धार्थाम् ॥ ६० ॥

ओं सिद्धार्थायै... . . . . ।

नाभेयवंशनिषधाद्रिखेरयोध्यानाथस्य मेघरथभूमिपतेः सुपत्नि ।
सेवामपन्नसुमतेः सुमतेः सवित्रि त्वां मंगले भुवनमंगलमर्चयामि ॥ ६१ ॥

ओं सुमंगलायै . . . . ।

मनुकुलजलधींदोर्देवि कौशाम्ब्यधीश-प्रणयिनि धरणस्य क्ष्माविपद्वारणस्य ।
भवदपचितिसज्जेकानपद्मप्रभार्हन्-मणिधरणि सुसीमेस्यान्मयि श्रीरभीमे ॥६२॥

ओं सुसीमायै .... ।

"ओं ह्रीं" बोलकर सुपेणाको अर्घ चढावे ॥५९॥ "साकेतपतौ" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सिद्धार्थाको अर्घ चढावे ॥६०॥ "नाभेय" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सुमंगलाको अर्घ चढावे ॥ ६१ "मनुकुल" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं बोलकर सुसीमाको अर्घ चढावे ॥६२॥

इक्ष्वाकुमुख्यकाशीशसुमतिष्ठनृपप्रियाग् । त्वा यजे पृथिवीषेणे सुपार्श्वजिनमातरम् ६३

ओं वसुधरायै . . .. ।

सूर्यान्वयं चंद्रपुराधिचंद्रं श्रिता महासेनमभेदवृत्त्या ।
चंद्रप्रभेशप्रभवप्रभावात् कस्य प्रतीक्षासि न लक्ष्मणेस्मिन् ॥ ६४ ॥

ओं लक्ष्मणायै .. . ।

काकंद्यधीशे पुरुदेववंश्ये सुग्रीवराजे निरुपाधिरागाम् ।
त्वा पुष्पदंतप्रसवाभिरामे यजामि यज्ञे जय रामिकेस्मिन् ॥ ६५ ॥

ओं रामायै . ।

त्वां राजभद्र पुरनृप वृषभान्वयदृढरथानुरागरथा ।
शीतलजिनाभिनंद्ये वंदे वंद्ये सतां सुनंद्येद्य ॥ ६६ ॥

ओं सुनदायै . ।

"इक्ष्वाकु" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वसुंधराको अर्घ चढावे ॥६३॥ "सूर्यान्वयं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लक्ष्मणाको अर्घ चढावे ॥ ६४ ॥ "काकंद्यधीशे" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर रामाको अर्घ चढावे ॥६५॥ "त्वा राजभद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सुनंदाको अर्घ चढावे ॥ ६६ ॥ "प्राणप्रियां" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

प्राणप्रियां सिंहपुरारिजिष्णोः प्रकाशितेक्ष्वाकुकुलस्य विष्णोः ।
त्वां देवि नंदेर्चयताग्रधन्यं श्रेयोजनन्यस्य जनस्य जन्म ॥ ६७ ॥

ओं विष्णुश्रियै .... ।

यथार्हमिक्ष्वाकुविभक्तसंपच्चंपाधिपश्रीवसुपूज्यवश्याम् ।
श्रीवासुपूज्यप्रजनोपजातजगज्जयेर्चामि जयावति त्वाम् ॥ ६८ ॥

ओं जयायै .... ।

कांता कांपिल्यनाथार्ककुल्यश्रीकृतवर्मणः । जय श्यामे यजामि त्वां जननीं विमलेशिनः ६९

ओं सुशर्मलक्ष्म्यै . . . ।

साकेतनायकैक्ष्वाकुसिंहसेन नमः सुधाम् । पूजयामि जयश्यामे त्वामनंतजितोंबकाम् ॥७०

ओं सुव्रतायै ।

देवीं भानुमहाराजनाम्नो रत्नपुरेशिन. । कुरुवर्यस्य धर्मार्कप्राचीं त्वार्चामि सुप्रभे ॥ ७१ ॥

विष्णुश्रीको अर्घ चढावे ॥ ६७ ॥ "तथार्ह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जयाको अर्घ चढावे ॥ ६८ ॥ "कांता कांपिल्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुशर्मलक्ष्मको अर्घ चढावे ॥ "साकेतनाय" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुव्रताको अर्घ चढावे ॥ ७० ॥ "देवीं भानु" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पेरणीको अर्घ चढावे ॥ ७१ ॥ "हस्तिनाग"

ओं ऐरण्यै ।

हस्तिनागनगरे कुरुवशे विश्वसेननृपतेर्दयिताया: ।
शांतिकल्पतरुभोगभुवस्ते प्रार्चयामि चरणद्वयमैरे ॥ ७२ ॥

ओं कमलायै ।

कुरुकुलशशांकहास्तिनपुरपरिदृढशूरसेननृपकांताम् ।
श्रीकांतिं कुंथुजिनप्रसवित्रीं पूजयामि त्वाम् ॥ ७३ ॥

ओं सुमित्रायै ।

श्रीहास्तिसेनकुरुपस्य पत्नीं सुदर्शनाख्यस्य सुदर्शनस्य ।
मात: सवित्रीमरतीर्थकर्तुस्त्वां मित्रसेनेऽत्र महे महामि ॥ ७४ ॥

ओं प्रभावत्यै . ... . . ।

मिथिलारक्षकेक्ष्वाकुप्रभुकुंभाग्रवल्लभाम् । प्रजापतिं यजे मल्लिजिने त्वां प्रजापतिं ॥ ७५ ॥

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कमलाको अर्घ चढावे ॥ ७२ ॥ " कुरुकुल " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुमित्राको अर्घ चढावे ॥ ७३ ॥ " श्रीहास्तिसेन " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रभावतीको अर्घ चढावे ॥७४॥ " मिथिलार " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पद्मावती को अर्घ चढावे ॥ ७५ ॥

ओं पद्मावत्यै .... ।

हरिवंशवंशसुमणे राजग्रहेशप्रियां सुमित्रस्य ।

मुनिसुव्रतजिनजननीं सोमे सौम्यां यजामि त्वाम् ॥ ७६ ॥

ओं-वप्रायै .... ।

मिथिलानाथनृपान्वयविजयमहाराजसंज्ञनृपराज्ञीम् ।

सपूजयामि नमिजिनजनयित्रीं वप्पिले भवति ॥ ७७ ॥

ओं विनीतायै .... ।

द्वारवतीपरमेश्वरहरिवंशोत्तरसमुद्रविजयवशाम् ।

मातरमरिष्टनेमेः शिवदेवि यजे शिवाय त्वाम् ॥ ७८ ॥

ओं शिवदेव्यै .... ।

काशीश्रियस्त्यायिनि विश्वसेने प्रेमाकुलामुग्रकुलां वरार्के ।

पार्श्वप्रसूत्युद्धृतविश्वलोकां ब्रह्म्याह्वये देवि महाम्यहं त्वाम् ॥ ७९ ॥

"हरिवश" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वप्राको अर्घ चढावे ॥ ७६ ॥ "मिथिला" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर विनीताको अर्घ चढावे ॥ ७७ ॥ "द्वारवती" इत्यादि और ओं ह्रीं पढकर शिवदेवीको अर्घ चढावे ॥ ७८ ॥ "काशीश्रिय" इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ओं देवदत्तायै . . . . ।

स्वर्लक्ष्मीमदखंडिकुंडनगरश्रीकाममर्माविधो
नाथानुकाविशेषकस्य माहिषीं सिद्धार्थधात्रीपतेः ।
अंवां दुर्दमदुःषमासहचरद्धर्मश्रुतेः सन्मते-
र्यायज्मि प्रियकारिणि प्रियकरी त्वास्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे ॥ ८० ॥

ओं प्रियकारिण्यै इद . . . . ॥

नाभेयाद्यर्हदंबाः स्वभिहितमरुदेव्यादयः कोशलादि
क्ष्माभृन्नाभ्यादिदिव्यो हृदयसरसिजे भासमानाःसमर्च्य ।
पूर्णार्घं प्राप्यमाणा निजतनुजगुणग्रामगाढानुरागैः
प्रत्याहृत्यांतरायान् प्रथयत जगतां यूयमुच्चैः प्रमोदम् ॥ ८१ ॥

इति पूर्णार्घम् ।

इत्येता जिनमातरः सुदृगनुस्यूताखिलश्रीघना—
श्लेषानंदनिदानपुण्यरचना चार्च्यश्चतुर्विंशतिः ।

बोलकर देवदत्ताको अर्घ चढावे ॥ ७९ ॥ " स्वर्लक्ष्मी " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रियकारिणीको अर्घ चढावे ॥ ८० ॥ ' नाभेया " इत्यादि पढकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ८१ ॥

भक्त्यास्मिन्नखिलक्षयज्ञसमयेऽस्माभिः समभ्यर्चिताः
प्रत्यूहानपहृत्य विघ्नपाहितां तात्सिद्धिमातन्वताम् ॥ ८२ ॥

एतद्वंदनामुद्रया पठित्वा भक्त्या पचांगप्रणाम कुर्यात् । इति जिनमातृपूजनविधानम् । अथ द्वात्रिंशत्पुत्रारोपितशक्रार्चनम् ।

तत्तादृक्सुतपोनुषंगनपृथक् पुण्यानुभावोद्भव
स्वर्गैश्वर्यपराभिमानिकरसश्रोतोवगाहोत्सवान् ।
हृत्वान्यस्य यस्य मन्त्राविहिता सतीन् कराब्जोल्लस—
द्यज्ञांगोल्वणितद्युवीन् सुरपतीन् द्वात्रिंशत संयजे ॥ ८३ ॥

त्रिभुवनपतियज्ञे व्यापृतानां व्यवायान् खरमृदुकुदृशां तु द्वेषमस्पष्टतां च ।
प्रतिनियतनियोगव्यक्तदुर्वारशक्तीन् व्युपशमयितुमिंद्रानद्य संमानयामः ॥ ८४ ॥

द्वात्रिंशदिंद्रसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात्

" इत्येता " इत्यादि श्लोक पढकर वंदनामुद्रासे पचांग नमस्कार करे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार जिनमाताओंकी पूजाविधि कही गई है । अब बत्तीस इन्द्रोंकी पूजा कहते हैं—" तत्तादृक् " इत्यादि दो श्लोकोंसे बत्तीस इन्द्रोंकी समुच्चयपूजा करनेके लिये पूर्वकी तरह कही हुई विधि करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ " इन्द्रा " इत्यादि श्लोक पढकर आवाहन आदि पूर्वक हर एककी पूजा

इंद्राःसंशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात ॥८५

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अथासुरेन्द्रादीनां पृथक् पूजा ।

कोणस्थमग्न्यादिदिगुग्रसप्त कोणाग्रनीक दृढमुद्रराढ्यम् ।
विशिपपादांबुजसक्त्यद्रुध्यच्चूडामणिं चारु यजेऽसुरेंद्रम् ॥ ८६ ॥

ओं ह्रीं असुरकुमारेन्द्राय इदं जलं गंधं .. ..

कूर्माश्रितं सप्तदिगाश्रिनोरु नावादिसैन्यं फणिपाशपाणिम् ।
जिनांघ्रिपुष्पाक्रफलाक्रमौलिं नागेंद्रमुन्निद्रमुदर्चयामि ॥ ८७ ॥

ओं ह्रीं नागकुमारेंद्राय इदं ...

ताक्ष्र्यादिकक्षाकुलसप्तदिक्क धौतासिदंडं द्विरदाधिरूढम् ।
यजे सुपर्णेन्द्रमपास्तमोहविपद्रपादाप्तशिरः सुपर्णम् ॥ ८८ ॥

करनेके नियमके लिये पत्तोपर पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ८५ ॥ अत्र सुरेंद्रोंकी जुदी २ पूजा कहते हैं । " कोणस्थ " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर असुरेंद्रको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ८६ ॥ " कूर्माश्रित " इत्यादि तथा ओं ह्रीं " बोलकर नागकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८७ ॥ " ताक्ष्र्यांत्रिकक्षा " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुपर्णकुमार इंद्रको

भक्त्यास्मिन्नखिलक्षयज्ञसमयेऽस्माभिः समभ्यर्चिताः
प्रत्यूहानपहृत्य त्रिष्टपाहितां तात्सिद्धिमातन्वताम् ॥ ८२ ॥

एतद्वदनामुद्रया पठित्वा भक्त्या पञ्चाङ्गप्रणाम कुर्यात । इति जिनमातृपूजनविधानम्र । अथ द्वात्रिंशत्पुत्रारोपितशक्रार्चनम् ।

तत्तादृक्सुतपोनुपंगजपृथक् पुण्यानुभावोद्भव
स्वर्ज्ञैश्वर्यपराभिमानिकरसश्रोतोवगाहोत्सवान् ।
हृत्वान्यस्य यस्य मत्राविहिता सतीन् कराब्जोल्लस—
द्यज्ञांगोल्वणितश्रुवीन् सुरपतीन् द्वात्रिंशत संयजे ॥ ८३ ॥

त्रिभुवनपतियज्ञे व्यापृतानां·व्यवायान् खरमृदुकुदृशां तु द्वेपमस्पष्टतां च ।
प्रातिनियतनियोगव्यक्तदुर्वारशक्तीन् व्युपशमयितुमिंद्रानद्य संमानयामः ॥ ८४ ॥

द्वात्रिंशदिंद्रसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात्

"इत्येता" इत्यादि श्लोक पढकर वदनामुद्रासे पचाग नमस्कार करे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार जिनमाताओंकी पूजाविधि कही गई है । अव बत्तीस इंद्रोंकी पूजा कहते हैं–"तत्तादृक्" इत्यादि दो श्लोकोंसे बत्तीस इंद्रोंकी समुच्चयपूजा करनेके लिये पूर्वकी तरह कही हुई विधि करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ "इन्द्रा" इत्यादि श्लोक पढकर आवाहन आदि पूर्वक हर एककी पूजा

इद्राःसंशब्दये युग्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात ॥८५

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रातिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अथासुरेन्द्रादीनां पृथक् पूजा ।

कोणस्थमग्न्यादिदिगुग्रसप्त कोणाग्रनीक दृढमुद्गरान्त्रम् ।
विशेषणादांबुजसरूपरत्यच्चूडामणिं चारु यजेऽसुरेंद्रम् ॥ ८६ ॥

ओं ह्रीं असुरकुमारेन्द्राय इद जल गंध . . .. .. ।

कूर्मश्रितं मरुदिगाश्रिनोरु नावादिसैन्यं फणिपाशपाणिम् ।
जिनांघ्रिपुष्पांकफलांकमौलिं नागेंद्रमुन्निद्रमुदर्चयामि ॥ ८७ ॥

ओं ह्रीं नागकुमारेंद्राय इद — .. . .. ।

तार्क्ष्यादिकक्षाकुलसप्तदिक्क धौतासिदडं द्विरदाधिरूढम् ।
यजे सुपर्णेन्द्रमपास्तमोहविपद्रपादाप्तशिरः सुपर्णम् ॥ ८८ ॥

इंद्रों संबोधन करते हैं...॥ ८५ ॥ अत्र सुरेंद्रोंकी जुदी २ पूजा करनेके नियमके लिये पत्तोंपर पुष्प अक्षत क्षेपण करे । "कोणस्थ" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" इत्यादि बोलकर असुरेंद्रको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ८६ ॥ "कूर्मश्रितं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं" बोलकर नागकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८७ ॥ "तार्क्ष्यादिकक्षा" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुपर्णकुमार इंद्रको

ओं ह्रीं सुपर्णकुमारेंद्राय इदं . . .. . . ।

सप्तासनसप्तगजादिसप्त सप्तेष्टयष्ट्योत्कटसप्तकाष्टम् ।
द्वीपेंद्रमर्हाम्यहमर्हदंघ्रिनखेंदुलक्ष्मीकृतमौलिपीठम् ॥ ८९ ॥

ओं ह्रीं द्वीपकुमारेंद्राय इद . . . ... ।

जलेभयात्रो मकरादिचक्रव्याकीर्णदिक्को वडिदंडचंडः ।
ईष्टां मदिष्टेरुदधीश्वरोर्हत्क्रमांशुरज्यन्मकरांकमूर्द्धा ॥ ९० ॥

ओं ह्रीं उदधिकुमारेंद्राय इद . .. . . ।

सिंहाधिरूढं वृतधौतखड्गं खड्गाद्यधिष्ठातृसुरैः परीतम् ।
अर्हत्पदार्धीकृतमौलिवज्रं संभावयामि स्तनितामरेंद्रम् ॥ ९१ ॥

ओं ह्रीं स्तनितकुमारेंद्राय इद. .

वराहवाहं करभादिदडचंडं तडिद्दडकरालहस्तम् ।
छायाछलस्वस्तिकरत्कृतार्हत्पादासनं विद्युदिनं धिनोमि ॥ ९२ ॥

अर्घ चढावे ॥ ८८ ॥ "सप्तासन" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर द्वीपकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८९ ॥ "जलेभयात्रो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर उदधिकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९० ॥ "सिंहाधिरूढ" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर स्तनितकुमारको अर्घ चढावे ॥ ९१ ॥ "वराहवाहं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर विद्युत्कुमारको अर्घ चढावे ॥ ९२ ॥ "दिक्कुं-

ओं ह्रीं विद्युत्कुमारेंद्राय इद. ....।

दिक्कुंजरस्थं परिघन्छतारिं सिंहाग्रनेंद्रीचरसप्रचक्रम् ।
नतिक्षणार्हच्चरणांकुशांकाकरांकासितं पयजे दिगेंद्रम् ॥ ९३ ॥

ओं ह्रीं दिक्कुमारेंद्राय इद . . ..

स्तंभाधिरोहं शिबिकादिसैन्यव्याप्ताशमुल्काग्रधमग्निमौलिं ।
अग्नींद्रमर्चामि जिनक्रमाग्रश्रीकुंभलालायितमौलिकुंभम् ॥ ९४ ॥

ओं ह्रीं अग्निकुमारेंद्राय इद . . .. ।

कुरंगयुग्य नगहेतिमत्र प्रष्टामरानीकपरीतमूर्तिम् ।
नायेनिलेंद्रं नतमस्तकास्वच्छार्येर्जिनाधिस्थलमंकयतम् ॥ ९५ ॥

ओं ह्रीं वातकुमारेंद्राय इद .... ।

सैन्यैरश्वरथेभपत्तिकलवाग्नयाद्दिमैःकौणनौ
तार्क्ष्ये भास्वरगंडकोष्टकरटिद्विपाप्ययानार्वगैः ।

जरस्थ " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर दिक्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९३ ॥ " स्तंभाधिरोहं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अग्निकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९४ ॥ " कुरंगयुग्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वातकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९५ ॥ सैन्यै " इत्यादि दो श्लोक बोल-

सप्ता भाक्तनसप्तकक्रमहृताश्रूडाश्मद्रीखगे—

न्द्रेत्यञ्जपत्ररुवर्द्धमानकमृगेट्कुंभाश्वमौलिध्वजाः ॥ ९६ ॥

असुरफणिसुपर्णद्वीपवार्ध्यष्टविद्युद्दिगनलपवनानां भावनानामधीशाः ।

दशविधपरिवर्गोपरुरत्नाढ्यधर्माभरणभवनभाजामस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ ९७ ॥

पूर्णाहुति । इति भावनेंद्रार्चनम् ।

अथेह सर्वज्ञपदारविंदद्विरेफमभ्युन्नदरेफवेषम् ।

नागायुधं किंनरशक्रमिष्टिमष्टापदाधिष्ठितमर्पयामि ॥ ९८ ॥

ओं ह्रीं किंनरेंद्राय इद . . ।

नेतुं स्वसंज्ञार्थमिवान्यथात्वं शुश्रूषमाणं पुरुषोत्तमांघ्री ।

आलापये किं पुरुषेन्द्रमुधज्जयश्रियसायकमुद्वहंतम् ॥ ९९ ॥

ओं ह्रीं किंपुरुषेंद्राय इद ... . ।

कर पूर्णाहुति दे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इसप्रकार भवनवासी इन्द्रोंकी पूजाविधि हुई । " अथेह " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किन्नरेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९८ ॥ " नेतु " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंपुरुषेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९९ ॥ " मुमुक्षु " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मुमुक्षुशार्दूलमदूरमुक्ति श्रीमेयसीं मश्रयतः श्रयंतम् ।
शार्दूलमारूढमयोग्रपिष्ट द्विष्टं महामहोरगेंद्रम् ॥ १०० ॥

ओं ह्रीं महोरगेंद्राय इद . . ..

गंधर्ववृंदारकगीयमानशुभ्रोरुकीर्तिश्रितमर्हदीशम् ।
मीणामि गंधर्वहरिं मरालीलागतिक्लिष्टमरालपत्र ॥ १०१ ॥

ओं ह्रीं गन्धर्वेन्द्राय इद ... ।

आरादवज्ञातनिधिव्रजार्हद्देवक्रमारध्यसशकसेवम् ।
यक्षामि यक्षेद्रमधिष्ठिताहिपृष्टफणिश्लिष्टनिधीद्धदप्यम् ॥ १०२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेन्द्राय इद . . .. ।

आनंक्ष्यमाणं क्षपिताक्षरक्षः रक्षैः परं पूरुषमाश्रिताय ।
श्रितोग्रहस्ताय हरिश्रिताय रक्षोधिराजाय बलिं ददामि ॥ १०३ ॥

ओं ह्रीं राक्षसेंद्राय इदं ... .. ।

महोरगेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०० ॥ "गंधर्व" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गंधर्वेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०१ ॥ "आराध्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०२ ॥ "आनक्ष्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर राक्षसेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०३ ॥

भूतेशिने भूतदयामयाय भूतार्थनिष्ठायमुहुर्नमंतम् ।
भूतेंद्रमाक्रांततुरंगराजं वलिप्रदानेन सुखाकरोमि ॥ १०४ ॥

ओं ह्रीं भूतेंद्राय इद ....।

ध्येयं सतां मोहपिशाचशांत्यै शांतैकनेतारमुपासितारम् ।
हेमांडकोड्डुग्मरदंडचंडं पिशाचशक्रं वलिना धिनोमि ॥ १०५ ॥

ओं ह्रीं पिशाचेंद्राय इद ... ...।

किन्नरकिंपुरुषगरुडगंधर्वनिधिपनिशाटभूतपिशाचैः ।
प्रतिपन्नशासनानां जिनशासन महिमभासनव्यसनानाम् ॥ १०६ ॥
ताभ्यां द्वाभ्यां प्रियाभ्यामपहृतमनसां द्विद्विदेवीसहस्र-
प्रेमार्द्रार्द्राक्षिभाजां पुरनिकरतताष्टांजनादिक्षितीनाम्
नित्योत्पादादिभौमव्रजविनयसृजां लोकरक्षैकदोष्णां
पूर्णापत्योत्सवानां युगपतिभिरसावस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ १०७ ॥

" भूतेशिने " आदि तथा ओं ह्रीं बोलकर भूतेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०४ ॥ " ध्येयं सतां " इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर पिशाचेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०५ ॥ " किन्नर " इत्यादि दो श्लोक पढकर पूर्णाहुति दे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इस प्रकार व्यंतरेंद्रका पूजन हुआ । " सार्ह-

द्राम्या पूर्णाहुतिः । इति व्यतरेन्द्रार्चनम् ।

सार्द्धचैत्यग्रहांकरम्यनगरोत्तानार्धगोलाकृति—

प्रन्यासांक्रमणीद्धमंडलकरव्रातामृतैः प्लावयन् ।

भूलोकं हरिवाहनः परिवृतो भोडुग्रहोपग्रह—

वृन्दैः कुंतकरश्चरस्थिरविभूपेतोथ सोमोऽर्च्यते ॥ १०८ ॥

ओं ह्रीं सोमेंद्राय इद . . ..

हित्वाधो दश योजनानि गगने तारा सदैकाध्वगा

मार्गैर्नित्यनवैश्चरन्निह करोति द्यां निशां य. स्थितिः ।

तप्तस्वर्णभलोहितासपुरभृद्दिवः स सूर्यश्चरै—

र्नालोकैरपरैः स्थिरैश्च रविभिः सत्रार्चतेर्च जिनम् ॥ १०९ ॥

ओं ह्रीं सुर्येंद्राय इद .. . . ।

विंशत्येकयुतानि योजनशतान्येकादशाद्रीश्वरं

मुत्त्वा क्ष्मामपि तच्छतानि त्रिदशान्यष्टौ विमानानि खे ।

चैत्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर सोमेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०८ ॥ " हित्वाधो " इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर सूर्येंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०९ ॥ " विंशत्येक " इत्यादि तथा ओं ह्रीं

उद्योतच्छतमाघनोदधिदशोपेतं ततान्याश्रितान्
ज्योतिष्काननुगृह्णतोऽजरवयः पूर्णाहुतिंवोर्पये ॥ ११० ॥

पूर्णाहुतिः । इति ज्योतिरिंद्रार्चनम् ।

एकत्रिंशद्युपटलमितेष्टादशे यास्कनाम्नि
श्रेणीवद्धे सततवसतिः पंचवर्णैर्विमानैः ।
तिस्रः श्रेणीर्वसुगुणचतुर्लक्षसंख्यैरवंतं
सौधर्मं प्राक् स्वरुकामिशार्चाम्यथैरावणस्थम् ॥ १११ ॥

ओं ह्रीं सौधर्मेंद्राय इदं

तद्वच्छ्रेणीवद्धमाग्योदगेकश्रेणींद्रोष्टाविंशति पंचवर्णाः ।
यक्षाः पाति स्वःपुरीर्यो जिनांघ्रिस्रक्चूलं तं यष्टुमीशानमीशे ॥ ११२ ॥

ओं ह्रीं ईशानेंद्राय इद

बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ११० ॥ इसतरह ज्योतिष्कदेवेंद्रका पूजन हुआ। " एकत्रिंश " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सौधर्मेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १११ ॥ " तद्वच्छ्रेणी " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ईशानेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११२ ॥ " सतस्वपाक " इत्यादि तथा ओं

सप्तस्वपाकद्युपटलेषु सभाह्वमंत्ये श्रेणीनिबद्धमधितिष्ठति षोडश यः ।
त्रिश्रेणिगाद्विपविकृष्णविमानलक्ष-सार्चां नमन् जिनमुपैतु सनत्कुमारः ॥ ११३ ॥

ओं ह्रीं सनत्कुमारेंद्राय इद . . ..

एकाष्टकृष्णोनविमानलक्षश्रेणीशमर्हत्प्रभुमाभजंतम् ।
महामि माहेंद्र मुदा वसंतं दिव्यास्पदः षोडश एव तद्गतः ॥ ११४ ॥

ओं ह्रीं माहेंद्राय इद . .. .

पात्या स्थितोऽपाकूपटले चतुर्थे चतुर्दशं ब्रह्मपदं चतस्रः ।
यः कृष्णनीलोनविमानलक्षा ब्रह्मेंद्रमर्चामि तमाप्तभक्तम् ॥ ११५ ॥

ओं ह्रीं ब्रह्मेंद्राय इद .. . ...

द्वैतीयैके द्वादशं कांतवाख्यं श्रेणीबद्धं यः श्रितो माकृद्युचक्रे ।
लक्षार्धं माग्भानि भुंक्ते विमानान्यर्हद्भक्तं तं यजे लांतवेंद्रम् ॥ ११६ ॥

ह्रीं बोलकर सनत्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११३ ॥ "एकाष्ट" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर माहेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११४ ॥ "पात्या स्थितो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्मेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११५ ॥ "द्वैतीयैके" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लांतवेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११६ ॥ "शुक्रेंद्र" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शुक्रेंद्रको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं शतवेन्द्राय इद . . . . |

शुक्रेंद्रमैकपटलिक चत्वारिंशत्सहस्रपीतासितद्याम् ।
दशममहाशुक्रोदकश्रेणीवद्धास्पदं यजे जिनभक्तम् ॥ ११७ ॥

ओं ह्रीं शुक्रेन्द्राय इद . . . |

पीतार्जुनैकेंद्रकषट्सहस्रविमानभुक्ति जिनपूजनोक्तम् ।
यजे शतारेन्द्रमिहाष्टमेहं स्थितं सहस्रार उदाग्विमाने ॥ ११८ ॥

ओं ह्रीं शतारेंद्राय इद . . |

सप्तश्वेतौकः शतैः षट् पटल्यां षष्ठ्यां अेकश्रेणिपाये पटल्याम् ।
षष्टे तिष्ठंत्यादे दक्षिणोदक्श्रेण्योश्चाये ताश्चतुःकल्पशक्रान् ॥ ११९ ॥

तत्रानतेंद्रं जिनमाग्रहस्य संस्कारविद्रावितमोहतंद्रम् ।
अप्यद्भुतैर्भोगसुखैरलुप्तश्रापण्यशर्मस्मृतिमर्चयामि ॥ १२० ॥

ओं ह्रीं आनतेंद्राय इद . . . |

॥ ११७ ॥ " पीतार्जुन " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शतारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११८ ॥
" सप्तश्वेतौ " इत्यादि दो श्लोक और ओं ह्रीं बोलकर आनतेंद्रको अर्घ चढावे ॥११९॥१२०॥

स्वभोगवर्गप्रसृताक्षवर्गोप्युदीच्यदेशाससुखैः प्रसक्तः ।
अर्हत्प्रभौ व्यक्तविचित्रभावो भजत्विमां प्राणतजिष्णुरिज्याम् ॥ १२१ ॥

ओं ह्रीं प्राणतेंद्राय इदं ... ... ।

स्थितोपि मौले वपुषि प्रदेशैस्तनूमुदीचीमनुसंदधानः ।
भजत्यनंतर्हितवाञ्छनं यस्तं प्रीणम्यर्हणयारणेंद्रम् ॥ १२२ ॥

ओं ह्रीं आरणेंद्राय इदं . .. . ।

कदाचिदप्यच्युतमुच्यतेऽभक्तेश्वतेर्दुश्चुरितात्परीतम् ।
एकात्रषष्ट्यग्रशतं विमानान्यधीशितारं प्रयतेऽच्युतेंद्रम् ॥ १२३ ॥

ओं ह्रीं अच्युतेंद्राय इदं . . . .. ।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रवासवब्रह्मेंद्रा
लांतवशुक्रशतारानतशक्रा प्राणतारणाच्युतशक्राः ।

" स्वभोगवर्ग " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्राणतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२१ ॥ " स्थितोपि " इत्यादि और ओं ह्रीं बोलकर आरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२२ ॥ " कदाचिद " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अच्युतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२३ ॥ " सौधर्मै " इत्यादि दो श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ " इत्थं " इत्यादि श्लोक कहकर इष्टप्रार्थनाके

बालाग्रातरमेरुचूलिकयोवायुभयोस्त्रभातिभूषांगनाः
कल्पेंद्राः प्रददामि वोर्धिताजिना यज्ञेश्र पूर्णाहुतिम् ॥ १२४ ॥
ये चत्वारिंशतेंद्रैर्भवनदिविषदा व्यंतराणां द्वियुक्त—
त्रिंशत्संख्यैर्ग्रुधाम्ना त्रिगुणवशुतैः सिंहसम्राट् शशीनैः ।
अभ्यर्च्यंते चतुर्भिः समवसृतिपितैस्तन्मखारंभमुख्या
दद्यां पूर्णाहुतिं वो भवनवनसुरज्योतिरुद्धामरेंद्राः ॥ १२५ ॥

द्वात्रिंशत्पूर्णाहुतिः ।

इत्थं यथोचितविधिमतिपत्तिपूर्वयज्ञांशदानभृशदीपितपक्षपाताः
सर्वक्षयज्ञपरिपूर्तिदुरीहितं मे मुख्यानुषंगिकफलैः प्रथयंतु शक्राः ॥ १२६ ॥
इष्टप्रार्थं नाय पुष्पाजलिंक्षिपेत्। इति द्वात्रिंशादिंद्रार्चनविधान

अथ पत्रांतरालस्थापितचतुर्विंशतियक्षार्चनम्

नाभेयाद्यपसव्यपार्श्वविहितन्यासांस्तदाराधका
अव्युत्पन्नदृशः सदैहिकफलप्राप्तीच्छयार्चंति यान् ।
आमंत्र्य क्रमशो निवेश्य विधिवत्पत्रांतरालेषु तान्
कृत्वारादधुना धिनोमि बलिभिर्यक्षांश्चतुर्विंशतिम् ॥ १२७ ॥

लिये पुष्पांजलिको क्षेपण करे ॥ १२६ ॥ इस तरह बत्तीस इंद्रोंकी पूजाविधि हुई । अब

गोमुखादिचतुर्विंशतियक्षसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्षाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः।अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् १२८

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रान्तरालेषु पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

सव्येतरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्षसूत्रं तथा धरकरांकफलेष्टदानम् ।
प्राग्गोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषांकभक्तं यजे कनकभं वृषचक्रशीर्षम् ॥ १२९ ॥

ओं ह्रीं गोमुखयक्षाय इद ... ।

चक्रत्रिशूलकमलांकुशवामहस्तो निस्त्रिंशदंडपरशूद्यवराण्यपाणिः ।
चामीकरद्युतिरिभांकनतो महादियक्षोऽर्च्यतो जगतश्चतुराननोऽसौ ॥ १३० ॥

पत्रके मध्यमें स्थापन किये गये चौवीस यक्षोंकी पुजाविधि कहते हैं। "नाभेयाद्य" इत्यादि श्लोक बोलकर गोमुखादि चौवीस यक्षोंकी समुच्चयपूजामें पहलेकी तरह विधि करे ॥ १२७॥ "यक्षा सं" इत्यादि श्लोक बोलकर आवहनादि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्रके मध्यमें पुष्प अक्षतोंको डाले ॥ १२८ ॥ अब हरएककी पूजा कहते हैं– "सव्येतरो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गोमुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १२९ ॥ "चक्र त्रिशूल" इत्यादि ओं ह्रीं बोलकर महायक्षको अर्घ चढावे ॥ १३० ॥ "चक्रासि" इत्यादि

ओं ह्रीं महायक्षाय इदं .... . ।

चक्रासिसृण्युपगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् श्रितकार्तिकाच ।
वाजिध्वजमभुनतः शिखिगोंजनाभ—रुयक्षः प्रतीक्षतु बालिं त्रिमुखाख्ययक्षः ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं त्रिमुखाख्याय इदं . . . ।

प्रेंखद्धनुःखेटकवामपाणिं सकंकपत्रास्यपसव्यहस्तम् ।
श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेश्वरयक्षाय इदं . .. . ।

सर्पोपवीत द्विपपन्नगोर्द्धकरं स्फुरद्दानफलान्यहस्तम् ।
कोकांकनम्रं गरुडाधिरूढं श्रीतुम्बरं श्यामरुचिं यजामि ॥ १३३ ॥

ओं ह्रीं तुम्बरयक्षाय इदं .. ' ।

तथा ओं ह्रीं बोलकर त्रिमुखयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३१ ॥ "प्रेंखद्धनुः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेश्वरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३२ ॥ "सर्पोपवीत" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर तुंबरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३३ ॥ "मृगारूढं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मृगारूढं कृतकरापसव्यकरं सखेटा भयसव्यहस्तम् ।
श्यामांगमब्जध्वजदेवसेव्यं पुष्पाख्ययक्षं परितर्पयामि ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं पुष्पयक्षाय इद ।

सिंहाद्रिरोहस्य सदण्डशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य ।
कृष्णत्विषः स्वस्तिककेतुभक्तेर्मातंगयक्षस्य करोमि पूजाम् ॥ १३५ ॥

ह्रीं मातंगयक्षाय इद ।

यजे स्वधित्युग्रफलाक्षमाला वराकवामान्यकर त्रिनेत्रम् ।
कपोतपत्रं प्रभयाख्यया च श्यामं कृतेदुध्वजदेवसेवम् ॥ १३६ ॥

ह्रीं श्यामयक्षाय इद ।

सहाक्षमाला वरदानशक्तिफलाय सव्यापरपाणियुग्मः ।
स्वारूढकूर्मो मकरांकभक्तो गृह्णातु पूजामजितः सिताभः ॥ १३७ ॥

ा अर्घ चढावे ॥ १३४ ॥ " सिंहादि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर मातंगयक्षको
ावे ॥ १३५ ॥ ' यजेस्वधि ' इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर श्यामयक्षको अर्घ
॥ १३६ ॥ सहाक्षमाला " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अजितयक्षको अर्घ चढावे
७ ॥ " श्रीवृक्ष " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्म यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३८ ॥

ओं ह्रीं अजितयक्षाय इद ... ... ।

श्रीवृक्षकेतननतो धनुर्दंडखेटवज्राढ्यसव्यसय इंदुसितोंबुजस्थः ।
ब्रह्मासरश्वधितिखड्ग वरप्रदानव्यग्रान्यपाणिरुपयातु चतुर्मुखोर्चाम् ॥१३८॥

ओं ह्रीं ब्रह्मयक्षाय इदं ।

त्रिशूलदंडान्वितवामहस्त करेक्षसूत्रं त्वपरे फले च ।
बिभ्रत्सितो गंडककेतुभक्तो लात्वीश्वरोर्चा वृषगास्त्रिनेत्रः ॥ १३९ ॥

ओं ह्रीं ईश्वरयक्षाय इदं

शुभ्रो धनुर्वभ्रुफलाढ्यसव्यहस्तोन्यहस्तेषु गदेष्टदानः ।
लुलायलक्ष्मप्रणतास्त्रिवक्रः प्रमोदतां हंसचरः कुमारः ॥ १४० ॥

ओं ह्रीं कुमारयक्षाय इद ।

यक्षो हरित्सपरशूपरिमाणपाणिः कौक्षेयकाक्षमणिखेटकदंडमुद्राः ।
विभ्रच्चतुर्भिरपरैः शिखिगः किरांकनम्रः प्रतृप्यतु यथार्थचतुर्मुखाख्यः १४१

" त्रिशूलदंड " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ईश्वर यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३९ ॥ " शुभ्रो-धनु " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कुमारयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४० ॥ " यक्षो हरित् " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर चतुर्मुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४१ ॥ " पातालक "

ओं ह्रीं चतुर्मुखयक्षाय इद ।

पातालकः सशृणिशूलकजापसव्यहस्तः कपाहलफलांकितसव्यपाणिः ।
मेधाध्वजैकशरणो मकराधिरूढो
रक्तोर्च्यतां त्रिफणनागशिरास्त्रिवक्त्रम् ॥ १४२ ॥

ओं ह्रीं पातालयक्षाय इद ।

सचक्रवज्रांकुशवामपाणिः समुद्गराक्षालिवरान्यहस्तः ।
प्रवालवर्णस्त्रिमुखो झषस्थो वज्रांकभक्तोंचतु किंनरोऽर्च्याम् ॥ १४३ ॥

ओं ह्रीं किंनरयक्षाय इद . . ।

वक्रानधोऽधस्तनहस्तपद्मफलोन्यहस्तार्पितवज्रचक्रः ।
मृगध्वजार्हत्प्रणतः सपर्यां श्यामः किटिस्थो गरुडोभ्युपैतु ॥ १४४ ॥

ओं ह्रीं गरुडयक्षाय इद ।

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पातालयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४२ ॥ " सचक्र " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंनरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४३ ॥ " वक्रान " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गरुडयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४४ ॥ " सनाग " तथा ओं ह्रीं बोलकर गंधर्वयक्षको

सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोधः करद्वयात्तेषु धनुः सुनीलः ।
गंधर्वयक्षः स्तभकेतुभक्तः पूजामुपैतु श्रितपक्षियानः ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं गंधर्वयक्षाय इदं ।

आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चाप पविं
पाशं मुद्गरमंकुशं च वरदः षष्ठेन युंजन् परैः ।
बाणाभोजफलस्रगच्छपटलीलीलाविलासास्त्रिदक्
षड्वक्त्रगरांकभक्तिरसितः खेंद्रोन्र्यते शंखगः ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं खेन्द्रयक्षाय इदं ।

सफलकधनुर्दंडपद्म खड्गमदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम् ।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्रचापद्युति कलशांकनतं यजे कुबेरम् ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं कुबेरयक्षाय इदं ।

जटाकिरीटोष्ठमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः ।
कूर्मांकनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकाय उपैतु तृप्तिम् ॥ १४८ ॥

अर्घ चढावे ॥ १४५ ॥ " आरभ्यो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर खेंद्रयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४६ ॥ " सफलक " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कुबेरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४७ ॥ " जटाकिरीटो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वरुणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४८ ॥ "खेटा-

ओं ह्रीं वरुणयक्षाय इदं ... . ।

खेटासिकोदंडसरांकुशाब्ज—चक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम् ।

चतुर्मुखं नंदिगमुत्पलाकभक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं भृकुटियक्षाय इदं ।

श्यामास्त्रिवक्त्रो द्रुघणं कुठारं दंडं फल वज्रवरौ च विभ्रत् ।

गोमेदयक्षः क्षितशंखलक्ष्मा पूजां नृवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं गोमेदयक्षाय इदं . ... ।

ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः सव्यान्यपाणिफणिपाशवरमणंता ।

श्रीनागराजककुदं धरणोभ्रनीलः कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् १५१

ओं ह्रीं धरणयक्षाय इदं . ।

मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं विभ्रत्फलं वामकरेय यच्छन् ।

वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंगयक्षोंगतु तुष्टिमिष्टया ॥ १५२ ॥

सि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर भृकुटि यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४९ ॥ " श्यामस्त्रि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर गोमेदयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५० ॥ " ऊर्ध्वद्विहस्त " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर धरणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५१ ॥ " मुद्गप्रभो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ओं ह्रीं मातंगयक्षाय इदं .. . . ।

इत्थं योग्योपचारव्यतिकरपरमो जागरान गृहाग्रव्यापाराः
शश्वदर्हत्प्रभुसमयमहस्तायिनो यक्षमुख्याः ।
तद्भक्तोद्धर्षहर्षाप्लुतजलधिनिरुच्छ्वासलीलावगाह
प्रत्यूहापोहकृत्स्य: सृजतु परमसौपर्चपूर्णाहुतिर्वः ॥ १५३ ॥

पूर्णाहुतिः । इति चतुर्विंशतियक्षार्चनविधानम् । अथ चतुर्विंशतिपत्राग्रस्थापितशासनदेवतार्चनम् ।

संभावयंति वृषभादिजिनानुपास्य तद्धामपार्श्वनिहिता वरालिप्सवो याः ।
चक्रेश्वरीप्रभृतिशासनदेवतास्ताः द्विर्द्वादशादलमुखेषु यजे निवेश्य ॥ १५४ ॥

चतुर्विंशतिशासनदेवतासमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्ष्यः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् १५५

बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५२ ॥ "इत्थ योग्यो" इत्यादि श्लोक पढकर पूणार्घ दे ॥१५३॥ इसप्रकार चौवीस यक्षोंकी पूजाका विधान हुआ । अब चौवीस पत्रोंके अग्रभागमें स्थापित शासनदेवताओंकी पूजा करते हैं । "संभावयान्ति" इत्यादि श्लोक पढकर चौवीस शासनदेवताओंकी समुदायपूजाकेलिये पूर्व कही हुई विधि करे ॥ १५४ ॥ "यक्ष्य" इत्यादि

आवहनाविपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्राग्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

भर्माभाद्य करद्वयात्कुलिशा चक्रांकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेंबुजे ।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकस्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ १५६ ॥

ओं ह्रीं अप्रतिहतचक्रे देवि इद . ।

स्वर्णद्युतिशस्त्रर्थांगशस्त्रा लोहासनस्थाभयदानहस्ता ।
देवं धनुः सार्धचतुःशतोच्चं वदारुवीष्टामिह रोहिणीष्टेः ॥ १५७ ॥

ओं ह्रीं अजितदेवि इद ... . ।

पक्षिस्थार्धेंदुपरशुफलासीढीवरैः सिता । चतुश्चापशतोच्चार्हद्भक्ता प्रज्ञप्तिरिज्यते ॥ १५८ ॥

श्लोक बोलकर आवाहन आदि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पत्रके अग्रभागमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १५५ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते है–"भर्मा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर चक्रेश्वरी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ १५६ ॥ "स्वर्णद्युति" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अजितादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५७ ॥ "पक्षिस्था"

ओं ह्रीं नम्रे देवि इद .. .. ।

सनागपाशोरुफलाक्षसूत्रा हंसाधिरूढा वरदानुयुक्ता ।
हेमप्रभार्धत्रिधनुः शतोम्नतीर्थेशनम्रा पविशृंखलार्चाम् ॥ १५९ ॥

ओं ह्रीं दुरितारि देवि इद... .... ।

गजेंद्रगावज्रफलोथचक्रवरांगहस्ता कनकोज्ज्वलांगी ।
गृह्णानुदंडत्रिशतोन्नतार्हन्नतार्चनां खड्गवराच्यते त्वम् ॥ १६० ॥

ओं ह्रीं मोहिनि देवि इद ... . ।

सिता गोवृषगा घंटां फलशूलवरावृताम् । यजे कालीं द्विको दंडशतोच्छ्रायाजिनाश्रयाम् ॥

ओं ह्रीं मानेविदाव इद ... . ।

चंद्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम् ।

इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर नम्रादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५८ ॥ "सनाग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर दुरितारि देवीको अर्घ चढावे ॥ १५९ ॥ "गजेंद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मोहिनी देवीको जलादि चढावे ॥ १६० ॥ "सिता" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मानव देवीको जलादि चढावे ॥१६१ ॥ "चंद्रो" इत्यादि

श्रीज्वालिनीं सोर्धधनुःशतोच्चजिनानतां कोणगतां यजामि ॥ १६२ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनीदेवि इद . .. . ।

कृष्णा कूर्मासनाधन्यशतोन्नतजिनानता । महाकालीज्यते वज्रफलमुद्गरदानयुक् ॥ १६३ ॥

ओं ह्रीं भृकुटि देवि इद . .. . ।

अक्षपदामरुचक्रदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरिताम् ।
नवतिधनुस्तुगजिनमणतामित्र मानवीं मयजे ॥ १६४ ॥

ओं ह्रीं चामुंडे देवि इद .. .. ।

सद्मुद्गराब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम् । गौरीं यजेशीतिधनुः प्राशु देवीं मृगोपगाम १६५

तथा "ओंह्रीं" बोलकर ज्वालामालिनीदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६२ ॥ "कृष्णा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" पढकर भृकुटि देवीको जलादि चढावे ॥ १६३ "अक्ष" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर चामुंडा देवीको जलादि चढावे ॥ १६४ ॥ "समुद्ग" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर गोमेधकिदेवीको जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ १६५ ॥ "सपक्ष" इत्यादि

ओं ह्रीं गोमषकि देवि इद .... ..।

सपभमुशलांभोजदाना मकरगा हरित् । गांधारी सप्ततीर्थास तुंगमजुनताच्यंते ॥ १६६ ॥

ओं ह्रीं विद्युन्मालिनि देवि इद .... ।

पविदंडोच्चतीर्थेशनता गोनसवाहना । ससर्पचापसर्पेषुवैरोटी हरिताच्यंते ॥ १६७ ॥

ओं ह्रीं विद्यादेवि इद . ।

हेमाभा हंसगा चापफलबाणवरोद्यता । पंचशच्चापतुंगार्हद्भक्ता नतमतीज्यते ॥ १६८ ॥

ओं ह्रीं कुभिणि देवि इद .... ।

सांबुजधनुदानांकुशाश्वरोत्पला व्याघ्रगा मबालनिभा ।
नवपंचकचापोच्छ्रिताजिननम्रा मानसीह मान्येत ॥ १६९ ॥

तथा "ओंह्रीं" कहकर विद्युन्मालिनीदेवीको जलादि चढावे ॥ १६६ ॥ पवि" इत्यादि तथा ओंह्री" बोलकर विद्यादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६७ ॥ "हेमाभा" तथा ओंह्रीं" बोलकर कुभिणिदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६८ ॥ "सांबुज" इत्यादि तथा "ओंह्रीं"

ओं ह्रीं परभृते देवि इद.... .... ।

चक्रफलेढिवरांकितकरां महामानसीं सुवर्णाभाम् ।
शिखिगां चत्वारिंषद्धनुरुन्नताजिनमतां प्रयजे ॥ १७० ॥

ओं ह्रीं कदर्पदेवि इद .... ।

सचक्रशंखासिवरां रुक्माभां कृष्णकोलगाम् । पंचत्रिंशद्धनुस्तुग् जिननम्रां यजे जयाम्॥१७१

ओं ह्रीं गांधारिणी देवि इदं .. .. ।

स्वर्णाभां हंसगां सर्पमृगवज्रवरोद्धुराम् । चाये तारावतीं त्रिंशच्चापोच्चप्रभुभाक्तिकाम्॥१७२॥

ओं ह्रीं कालिदेवि इद .. .. ।

पंचविंशतिचापोच्चदेवसेव्यापराजिता । शरभस्यार्च्यते खेटफलासिवरयुक् हरित् ॥ १७३ ॥

ओं ह्रीं मनजातदेवि इद. ....।

बोलकर परभृतादेवीको जल आदि चढावे ॥ १६९ ॥ "चक्रफले" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर कंदर्पदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७० ॥ "सचक्र" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर गांधारिणी देवीको जल आदि चढावे ॥ १७१ ॥ "स्वर्णाभा" इत्यादि तथा "ओंह्रीं बोलकर काली देवीको जल आदि चढावे ॥ १७२ ॥ "पञ्चविंशति" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर मनजातदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७३ ॥ "पीता" इत्यादि तथा

पीतां विंशतिचापोच्चस्वामिका बहुरूपिणीम् । यजे कृष्णाहिगां खेटफलखड्गवरोच्चराम् १७४॥

ॐ ह्रीं सुगंधिनि देवि इदं . ... ।

चामुंडा यष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरित् । मकरस्थार्च्यते पंचदशदंडोन्नतेशभाक् ॥ १७५ ॥

ॐ ह्रीं कुसुममालिनि देवि इदं....... .. ।

सव्यंकद्युपगप्रियंकरसुतुक् प्रीत्यै करे बिभ्रतीं
दिव्याम्रस्तवकं शुभंकरकरश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितभामाम्रद्रुमच्छायगां
वंदारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रां यजे ॥ १७६ ॥

ॐ ह्रीं कूष्माण्डिनि देवि इदं . . . ।

येष्टुं कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तंसा द्विषो यात पद्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखासपादिदो अष्टका ।
ता शांतामरुणां स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालांवरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनतां यायज्मि पद्मावतीम् ॥ १७७ ॥

"ओंह्रीं" बोलकर सुगंधिनिदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७४ ॥ "चामुंडा" इत्यादि तथा 'ओंह्रीं बोलकर कुसुममालिनीको जल आदि चढावे ॥ १७५ ॥ "सव्यं" इत्यादि तथा 'ओंह्रीं बोलकर कूष्माण्डिनी देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ १७६ ॥ "येष्टुं" इत्यादि

ओं ह्रीं पद्मावतीदेवि इदं.. .. ।

सिद्धायिकां सप्तकरोच्छ्रितागजिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम् ।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेहम् ॥ १७८ ॥

ओं ह्रीं सिद्धायिनि देवि इद .. ।

इत्यावर्जितचेतसः समुचितैः सन्मानदानैः स्फुरन्
स्यात्कारध्वजशासनद्विपदपक्षेपोच्छलद्युक्तयः ।
यक्ष्यं संघनृपादिलोकविपदुच्छेदादिहार्हन्मखे
कुर्वाणाः सहकारितां सममिमां गृह्णंतु पूर्णाहुतिम् ॥ १७९ ॥

पूर्णाहुतिः । इति शासनदेवतार्चनविधानम् । अथ द्वारपालानुकूलनम् ।

सोमयमवरुणधनदा जिनदेवीद्वारपालननियुक्ताः ।
स्वं स्वमिहैत्य नियोग कुर्वद्भ्यः को न वः स्पृहयेत् ॥ १८० ॥

सोमादिद्वारपालसामुख्यविधानाय दिक्षु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

तथा " ओंन्हीं " बोलकर पद्मावती देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ १७७ ॥ "सिद्धायिका इत्यादि तथा " ओंह्रीं " बोलकर सिद्धायिनी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे १७८ ॥ "इत्यावर्जित " इत्यादि श्लोक कहकर आठ द्रव्यसे सबको पूर्णार्घ दे ॥ १७९ ॥ इस प्रकार

कोदंडकांडस्फुटदृष्टिमुष्टिमरुद्धटोत्कम्पकथानुरक्तम् ।
नैत्राः पुरो द्वारमिमामवंतं सोमोपगृह्णाम्युचितैर्भवंतम् ॥ १८१ ॥

ओं धनुर्धराय अर अर त्वर त्वर ह् सोम आगच्छागच्छ इदं जलं.... .... ।

द्विर्दुर्गदंडोद्यतचंडदंडं प्रचंडसामाजिकसंकथास्थम् ।
वैदिमतीद्वारमपाच्यमेतं पांतं यम त्वामनुकूलयामि ॥ १८२ ॥

ओं दंडधराय अर २ त्वर २ ह् यम आगच्छागच्छ इदं . ..... ।

विषाक्तजिह्वायुगलीढसृक्कस्फुलिंगवांत्युग्रभुजगरज्जुः ।
प्रतीच्यवेदीमुखदत्तभृत्यव्रतः प्रचेतः कुरु चारुचेतः ॥ १८३ ॥

ओं पाशधराय अर २ त्वर २ ह् वरुण आगच्छागच्छ इदं. . . ।

शासनदेवताओंका पूजन समाप्त हुआ । अब द्वारपालोंको अनुकूल करते हैं । "सोम" इत्यादि श्लोक बोलकर उन सोम आदिको सन्मुख करनेके लिये दिशाओंमें पुष्प अक्षतको क्षेपै ॥ १८० ॥ "कोदंड" इत्यादि तथा "ओं धनु" इत्यादि बोलकर सोमको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१८१ ॥ "द्विर्दुर्ग" इत्यादि तथा "ओं दंड" इत्यादि बोलकर यमको जल आदि चढावे ॥ १८२ ॥ "विषाक्त" इत्यादि तथा "ओं पाश" इत्यादि बोलकर वरुणको जल आदि चढावे ॥ १८३ ॥ "इतस्ततो" इत्यादि तथा "ओं गदा" इत्यादि बोलकर

इतस्ततो नाभिगिरेः सगर्भा गदां सलीला भ्रमयन्नुदीच्ये ।
द्वारे निषण्णोनुचरैर्वितर्दैः कुबेर वीरानुसरोपचार ॥ १८४ ॥

ओं गदाधराय अर २ त्वर २ हूं कुबेर आगच्छागच्छ इदं ।

एवं भियाकृताः सोमप्रमुखा द्वास्थकुंजगः।क्षुद्रान् क्षिपंतो विशतः सलुनु मन्यताम्॥१८५॥

पुष्पाजलिः । इति द्वारपालानुकूलनाविधानम् । अथ दिग्पालानुकूलनम् ।

इंद्राग्निश्राद्धदेवाः शरपतिवरुणस्पर्शनश्रीदरुद्राः
पूर्वाद्यासासु वेधास्त्रिजगदधिपतेः प्रासरक्षाधिकाराः ।
तद्यज्ञेस्मिन्नवात्मभगति विहरतामेत्य पत्न्यादियुक्ता
बिभ्रंतो यथास्वं वितनुत समयोद्योतयोन्निरुग्र कृष्याः ॥ १८६ ॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सराघ्र्यर्पणाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

रूप्याद्रिस्पर्द्धिघंटायुगपटुककुटंकास्फालनानिशुंभ—
द्रूपासख्यातिचित्रोज्ज्वलविलसल्लक्ष्मवर्ष्मेंद्रयस्थं ।

कुबेरको जल आदि चढावे ॥ १८४ ॥ "एवं भिया ' इत्यादि बोलकर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १८५ ॥ इसतरह द्वारपालोंको अनुकूलकरनेकी विधि हुई । अब दिक्पालोंको प्रसन्न करनेकी विधि कहते हैं । इंद्रादि " इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्र आदि दिकपालोंका आवाहन आदि करनेके लिये चारोंतरफ पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १८६ ॥ अब इनकी जुदी जुदी पूजा

रुप्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं रूप्यसंच्यादि देवी
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिंद्रं यजामि ॥ १८७ ॥

ओं ह्रीं इन्द्र आगच्छागच्छ इद्राय स्वाहा .. ..।

रुक्मारुग्घुर्घुरस्रग्गलचटुलपृथुमायभृंगाभतुंग—
स्थं रौद्रपिंगेक्षणयुगममलं ब्रह्मसूत्रं-शिखास्त्रम् ।
कुंदी वामप्रकोष्ठे दधतमितरपाण्यात पुण्याक्षसूत्रं
स्वाहान्वीतं धिनोमि श्रुतिमुखरसभं प्राच्यपाच्यंतरेऽग्निम् ॥ १८८ ॥

ओं ह्रीं अग्ने आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा ।

कल्पाताब्दोघजेत्र त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघंटा
टंकारात्युग्रशृंगक्रमहृतभधरव्रातरक्ताक्षसंस्थं
चंडार्चिः कांडदंडोड्डमरकरमतिक्रूरदारादिलोक
क्राण्योद्रेकं नृशंस प्रथमपथ यम दिश्यपाच्यां यजामि ॥ १८९ ॥

कहते हैं ॥ "रूप्याद्रि" इत्यादि तथा "ओह्रीं" बोलकर इंद्रको पूजाद्रव्य चढावे ॥१८७॥
"रुक्मा" इत्यादि तथा "ओह्रीं" इत्यादि बोलकर अग्निको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८८ ॥
"कल्पाता" इत्यादि तथा "ओआ" इत्यादि बोलकर यमको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८९ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं यमागच्छागच्छ यमाय स्वाहा ।

आरूढं धूमधूम्रायतविकटसटास्ताग्रदिक्रुक्षरूक्ष्मा
लक्षाक्षावशिष्टास्फुटरुदितकला योद्रमाभांगमृक्षम् ।
क्रूरक्रव्यातपरीतं तिमिरचयरुचं मुद्गरक्षुण्णरौद्र—
क्षुद्रौघं त्रात याम्या परहरतमह नैर्ऋत तर्पयामि ॥ १९०

ओं आ क्रौं ह्रीं नैर्ऋत्यागच्छागच्छ नैर्ऋत्याय स्वाहा ।

नित्यांभः कोलिपांडूत्कटकापिलविशच्छेदसोदर्यदत—
प्रोत्फुल्यत्पक्षखेलत्करकरिमकरव्योमयानाधिरूढम् ।
प्रेंखन्मुक्तामत्रालाभरणभरमुपस्थात्रदाराहताक्षं
स्फूर्जद्धीमाहिपासं वरुणमपरादिग्रक्षणं प्रीणयामि ॥ १९१ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं वरुणागच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा ।

वलगच्छृंगाग्रभिन्नांबुदपटलगलत्तोयपीतश्रमाभ्र
प्लुत्यस्तस्वांतरंहः खुरकपितकुलग्रावसारंगयुग्यम् ।

"आरूढ" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्यको अर्घ चढावे ॥ १९० ॥
नित्यांभ" इत्यादि तथा" ओं आ" इत्यादि पढकर वरुणको अर्घ चढावे॥ १९१ ॥" वला"

व्यालोलद्ध्वात्रयंत्रं त्रिजगदसुधृतिं व्यग्रमुग्रद्रुमास्त्र

सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुमनिलमुदक् प्रत्यगंतः प्रणौमि ॥ १९२ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं अनिलागच्छागच्छ अनिलाय स्वाहा ।

ह्रांसोघो नाह्यमानं पवननरिवृतत्केतुपंक्तिं विमानं

स्वारूढः पुष्पकाख्यं क्रमसखरसनादाममुक्ताकलापः ।

अग्राम्योद्दामनेपः सुललितधनदेव्यादिवक्त्राब्जभृंगः

शक्तीभिन्नारिमर्मा भजतु वलिमुदग्भुक्तिवीरः कुवेरः ॥ १९३ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं कुवेरागच्छागच्छ कुवेराय स्वाहा ।

सास्नावाचालकिंकिण्यनणुरणनझणत्कारमंजीरासिंजा

रम्योद्यच्छृंगहेलाविहरदुरुशरच्चंद्रशुभ्रर्षभस्थम् ।

भास्वद्भूषाभुजंगभुजगसितजटाकेतकार्द्धेंदुचूलं

दधत्शूलं कपालं सगणवमिहार्चामि पूर्वोत्तरेशम् ॥ १९४ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं ईशानागच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा ।

इत्यादि तथा "ओं आ" इत्यादि बोलकर वायुको अर्घ चढावे ॥१९२॥ "ह्रांसो" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि पढकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ १९३ ॥ "सास्ना" इत्यादि तथा "ओं" इ-

इत्यर्हन्मदुसामत्रायि रुनयाह्वानादियोग्यक्रमै—
दिक्पालाः कृततुष्टयः परिजनोत्कृष्टश्रियोग्राग्यम् ।
द्रष्टा कापटमर्हद्ध्वरमरं दिक्चक्रमाक्रामतो
भव्यान् संदधतः शुभैः सह भजंत्वेतर्हि पूर्णाहुतिम् ॥ १९५ ॥

पूर्णाहुतिः । इति दिक्पालार्चनविधानम् । अथ दिक्चतुष्टयनिविष्टप्रभावनोद्भटयक्षानुकूलनम् ।

प्रभु भक्तुमिहागत्य प्राचीं चिन्वान्निजश्रिया । बलिं विजययक्षेश मंत्रपूतां स्वसात्कुरु ॥१९६॥

ओं क्ष्ल्व्र्यूं विं विजययक्ष बलिं गृहाण गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

अत्रापाचीमलंकृत्य भजमानो जगत्पतिम् । यथार्हबलिसंतुष्टो वैजयंत जयत नु ॥ १९७ ॥

ओं क्ष्ल्व्र्यूं वैं वैजयंत बलिं . ... ।

देवाधिदेवसेवायै प्रतीचीं दिशमास्थितः । बलिदानेन संप्रीतो जयंत जय दुर्जयान् ॥ १९८॥

ॐ क्ष्ल्व्र्यूं जं जयत बलिं . .. . ।

त्यादि कहकर ईशानको अर्घ चढावे ॥ १९४ ॥ "इत्यर्ह इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १९५ ॥ इसतरह दिक्पालोंकी पूजाविधि पूर्ण हुई । अब चारों दिशाओंके यक्षोंका सत्कार करते हैं । "प्रभु" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर विजययक्षको अर्घ चढावे ॥ १९६ ॥ "अत्रापा" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर वैजयतको अर्घ चढावे ॥ १९७ ॥ "देवाधि इत्यादि तथा "ओं"इत्यादि बोलकर जयंतको अर्घ चढावे ॥ १९८ ॥ " उदीचीं " इत्यादि

उदीचीं भूषयन् भूत्या सर्वज्ञोपासनोत्सुकः । अपराजित यक्ष त्वं प्रीयस्व बलिनामुना॥१९९॥

ॐ झ्म्ल्व्र्यूं अं अपराजित बलिं . . ।

एवं संमानिता यूयं जिनेंद्रसमये रताः । प्रतिष्ठासमयेऽमुष्मिन् यतध्वं विघ्नशांतये ॥ २०० ॥

पूर्णाहुति । इति विजयादियक्षानुकूलनविधानम् । अथैशानदिश्यनावृतार्चनम् ।

जंबूवृक्षस्य नानामणिमयवपुषः प्राग्यजंबूतस्य
प्राक्शाखामावसंतं नवजलदरुचं पक्षिराजाधिरूढम् ।
कुंडीशंखाक्षमालारथचरणकरं त्राणनिःशेषजंबू—
द्वीपश्रीकं यजेस्मिन् विधुरविधुतयेनावृतं व्यंतरेंद्रम् ॥ २०१ ॥

ओं दशदिशाधिनाथ त्रैलोक्यदडनायक जंबूद्वीपाधिपतिं गरुडपृष्ठमारूढ स्निग्धभिन्नाजनाभ-मक्षसूत्रकमंडलुन्यग्रहस्त चतुर्भुज शंखचक्रविधृतभुजादंडं यक्षिणीसहितं सपरिजन सपरिवारमनावृत देव समाह्वयामिह स्वाहा हे अनावृतागच्छागच्छ अनावृताय स्वाहा अनावृतपरिजनाय स्वाहा ।

तथा 'ओं" इत्यादि बोलकर अपराजितको अर्घ चढावे ॥१९९॥ "एवं समा" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २०० ॥ इस प्रकार विजयादि यक्षोंका सत्कार हुआ । अब ईशानदिशाके अनावृत यक्षकी पूजा कहते हैं । " जबूवृक्ष" इत्यादि तथा "ओं दश" इत्यादि पढकर जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ २०१ ॥ "ब्रह्मातें" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

ब्रह्मांते दिक्षु रुद्राद्यधिपतिषु समाग्न्यामसूर्याभपूर्व—
द्विद्विस्वर्भूगणैकोत्तरभूतिषु वसंत्यष्ट सारस्वताद्याः ।
यद्वर्गास्ते स्वतंत्राः क्षतविषयतृपो भाविजन्माप्यमोक्षाः
पूर्वज्ञा मेध्य लौकांतिकसुरमुनयस्तीर्थकृच्छंसिनोऽर्च्याः ॥ २०२ ॥

ओं ह्रीं लौकांतिकदेवेभ्यः पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । ब्रह्मेंद्रोपरि देवर्षिपुष्पांजलिः ।

मुख्योपचारिकचरित्रचितोरुपुण्यपाकाम्बरस्थसितरत्नविमानवासान् ।
अर्हत्प्रतिष्ठितिमिमामनुमोदमानान् संमानयामि कुसुमांजलिनाहमिंद्रान् ॥ २०३ ॥

ओं ह्रीं अहमिंद्रदेवेभ्य. पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । अच्युतेंद्रोपरि अहमिंद्रपुष्पांजलिः ।

अथ विधिशेषम् ।

पूर्वादिदिक्षु वेद्या मंगलशांतिकजयेष्टसिद्ध्यर्थम् ।
मंगलशस्त्रपताकाकलशानथ योजयेदष्टशः क्रमशः ॥ २०४ ॥

मंगलादिस्थापनाप्रतिज्ञानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

लौकांतिक देवोंके लिये पुष्पोंको चढावे ॥ २०२ ॥ "मुख्यो" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अहमिन्द्र देवोंके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ २०३ ॥ अब शेष विधान कहते हैं । "पूर्वादि" इत्यादि श्लोक पढकर मंगल आदि आठ द्रव्योंकी स्थापनाके लिये दिशाओंमें पुष्प अ-

छत्राब्दध्वजचामरयुगतोरणतालवृंतनंद्यावर्तम् ।
दीपं च प्रणवमुखं न्यसामि मंत्रार्पितं श्रियै स्वाहांतम् ॥ २०५ ॥

ॐ श्वेतछत्रश्रियै स्वाहा । एवमन्येष्वपि मगल्यष्टकस्थापनम् ।

दधती पविमिंद्राणी चक्रं वैष्णव्यासिं च कौमारी ।
सीरं वाराही मुशलं ब्रह्माणी गदां महालक्ष्मी ॥ २०६ ॥
शक्तिं चामुंडायिनि माहेशी भिडमालमाम्नंतु ।
विभ्रान् प्रणवमुखाख्या गर्भस्वाहांतमंत्रविन्यस्ताः ॥ २०७ ॥

ओं इद्राण्यै स्वाहा । एवमन्यास्वपि आयुधाष्टकस्थापनम् ।

पीता प्रभारुणा पद्मा कृष्णाभा मेघमालिनी । हरिन्मनोहरा श्वेता चंद्रमाकेंद्रनीलभा ॥ २०८ ॥
सुप्रभाख्या जया श्यामा विजया पंचवर्णभा । दिक्षु तिष्ठंत्विमा देव्यः सवर्णध्वजपाणयः २०९

ओं प्रभायै स्वाहा । एवमन्यास्त्रापि पताकाष्टकस्थापनम् ।

क्षत वगैरे ॥ २०४ ॥ "छत्र" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि पढकर श्वेतछत्रादि आठ मंगल द्रव्योंको जलादि चढावे ॥ २०५ ॥ "दधती" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठ आयुध (हथियार) स्थापना करे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ "पीता" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठ पताकाओंका स्थापना करे ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ "शुभ्रान्" इ-

शुभ्रान् प्रभुसमवसरणोत्तममंगलार्थान् कुंभान् मुखार्पितसुपल्लवमातुलिंगान् ।
स्रक्चंदनाक्षररुचोंबुभृताभिवेश्य सूत्रेण पंचरुचिना त्रिगुणं वृणोमि ॥ २१० ॥

कलशाष्टकस्थापनम् ।

वाणैर्जयाय सिद्धार्थैरर्थसिद्ध्यै यवारकैः । संतानवृद्ध्यै च चतुर्वेदीकोणान् विभूषये:२११

वाणचतुष्टयादिस्थापनम् ।

सगुडलवणां सलोष्ठां पांडुशिलासोदरेसु सूत्रवृताम् ।
भोगोपभोगसंपत्प्रथनीं वेद्यां पुरः शिलां निदधे ॥ २१२ ॥

ओं सर्वजनानंदकारिणि सौभाग्यवति तिष्ठ २ स्वाहा । शिलास्थापनम् ।

हैमं रूप्यं चादनमाहोस्वित् क्षीरवृक्षज पट्टम् ।
धौतासितवस्त्रपिहितं प्रभुमधिकर्तुं न्यसामि वेद्यंतः ॥ २१३ ॥

ओं भद्रासनश्रियै स्वाहा । पट्टस्थापनम् । अथ पीठचतुष्टयार्चनम् ।

तद्वेदीचतुरंतसांगुलवितस्त्युद्देशशुंभत्कर—
व्यासायामयुतासनेषु कमलान्यालिख्य तत्कर्णिकाः ।

त्यादि श्लोक बोलकर आठ कलशोंका स्थापन करे ॥ २१० ॥ "वाणै" इत्यादि श्लोक पढ-
कर वाण आदि चार द्रव्योंको स्थापन करे ॥ २११ ॥ "सगुड" इत्यादि तथा "ओं" इत्या-
दि बोलकर शिलाकी स्थापना करे ॥ २१२ ॥ "हैम" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर

प्राग्वत् प्राच्यं तथा दलेष्वनुदिशं देवीर्जयाद्याः पृथक्—
जंभाद्याश्च विदिग्दलेषु पिनुयां दिग्द्वाररैरक्षिणः ॥ २१४ ॥

बहिर्मंडलपूजाप्रातिज्ञानाय पुष्पाजलिं क्षिपेत् । अत्रापि पूर्ववत् कर्णिका, परब्रह्मादिपदैः पूरयित्वा तत्पद्मदलेषु पूर्वादिदिक्षु ओं जये स्वाहा, ओं विजये स्वाहा, ओं अजिते स्वाहा, ओं अपराजिते स्वाहा । आग्नेय्यादिविदिक्षु च ओं जंभे स्वाहा, ओं मोहे स्वाहा, ओं स्तंभे स्वाहा, ओं स्तंभिनि स्वाहा इति लिखित्वा बहिश्चतुर्द्वारचतुष्कोणमंडलं विलिख्य तद्बहिः पूर्ववद्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षदेवांश्च संस्थाप्य चिद्रूप विश्वरूपेत्यादिविधिना कर्णिकार्चनं संक्षेपेण कृत्वा जयादिदेवीर्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च पूजयेत् । अथ जयादिदेवतार्चनम् ।

जयाद्याः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ २१५

काष्ठासन (पट्टा) स्थापित करे ॥ २१३ ॥ अब चार पीठोंकी पूजा कहते हैं । "तद्वेदी" इत्यादि श्लोक कहकर बाह्यमंडलकी पूजाके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ यहांपरभी पहलेकी तरह कर्णिकामें अरहंत आदि पदोंको लिखकर उस कमलपत्रपर पूर्व आदि दिशाओंमें "ओं जये" इत्यादि चार पद लिखे । फिर आग्नेयी आदि विदिशाओंके पत्तोंपर "ओं जंभे" इत्यादि चार पद लिखे । उसके बाद बाहरके चार दरवाजोंपर चौकोन मंडल लिखकर उसके बाहर पहलेकी तरह दिक्पाल, द्वारपाल और यक्षदेवोंको स्थापन करके "चिद्रूपं" इत्यादि कही हुई विधिसे कर्णिकाकी संक्षेपसे पूजा करे । फिर जयादि देवी, दि-

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

जये जयाख्ये विजये विजैनि जैन जितपराजितस्मिन् ।
जंभेवमोहनेस्ति भाः स्तंभिनि रक्ष रक्षास्मान ॥ २१६ ॥

स्वोपग्रहाय पत्रेपु पुष्पाक्षतानि क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

इहार्हतो विश्वजननीनवृत्तेः कृतां कृताराति जये जये त्वाम् ।
सद्गन्धपुष्पाक्षतदीपधूपफलादिसंपादनया धिनोमि ॥ २१७ ॥

ओं ह्रीं जये देवि आगच्छागच्छ इह . ... ।

जिनाधिराजे विजयैकविघ्ने जगद्विजेतुः कुसुमायुधस्य ।
विजेतरि स्फारितभूरिभक्ति त्वामत्र यज्ञे विजये यजेहम् ॥ २१८ ॥

ओं ह्रीं विजये देवि .... ।

कपाल, द्वारपाल, और यक्षोंको पूजे ॥ अब जया आदि देवताओंकी पूजा कहते हैं । जया इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हर एककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पुष्प-अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ "जये" इत्यादि श्लोक बोलकर अपने उपकारके लिये पत्रोंपर पुष्प अक्षतको क्षेपण करे ॥ २१६ ॥ अब प्रत्येककी पूजा करते हैं । "इहा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जया देवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २१७ ॥ "जिना" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर विजयाको अर्घ चढावे ॥ २१८ ॥ "जग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं"

जगज्जयोज्जागरिणां कषायद्विषां न केनापि जितं जिनेंद्रम् ।
आवर्जयंतामूर्जितोर्जितोजामूर्जासये त्वामजितेर्चयामि ॥ २१९ ॥

ओं ह्रीं अजिते .... ।

पराजितारेरपराजितास्त्रैरप्याश्रितस्यारिपराजयाय ।
जगत्प्रभोरत्र महे महामि पराजिते त्वामपराजितेत्र ॥ २२० ॥

ओं ह्रीं अपराजिते . . . . ।

व्यामोहनिद्रां भुवनानि जंभ विशंत्युद्धरतो जिनस्य ।
वितन्वतां यज्ञमजन्यहंत्रीं त्वा देवि जंभे परिपूजयामि ॥ २२१ ॥

ओं ह्रीं जंभे . . . . ।

चिरं जगन्मोहविषेणसुप्तं स्याद्वादमंत्रेण विबोधयंतम् ।
श्रीबुद्धमाराधयता हि मोहे त्वां मोहयतीमहितान्महामि ॥ २२२ ॥

ओं ह्रीं मोहे . ... ।

बोलकर अजिताको जलादि चढावे ॥ २१९ ॥ "पराजि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अपराजिताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २२० ॥ "व्यामोह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जंभा देवी पर जलादि चढावे ॥ २२१ ॥ "चिरं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

जिनं महाभव्यविशुद्धिभावप्रासादसुस्तंभमुपास्ति यस्तम् ।
प्रकुर्वतं स्तंभयतां स्तभंतं स्तंभे सृजंतीं भवतीं यजामि ॥ २२३ ॥

ओं ह्रीं स्तंभे देवि .. .. ।

प्रवादिनां स्तंभयतोऽत्र मानस्तंभेन दूरादपि मंक्षु मानम् ।
जिनेस्य यज्ञेर्चनया सपत्नश्रीस्तंभिनि स्तंभिनि संस्तुवे त्वाम् ॥ २२४ ॥

ओं ह्रीं स्तंभिनि देवि . ... ।

इत्येताः पृथुयशसो जयादिदेव्यो देवानामभिरुचिते जिनेंद्रयज्ञे ।
पूर्णाहुतिमिह कांभिताः प्रपूज्य श्रेयांसि प्रददतु भव्यभाक्तिकेभ्यः॥ २२५ ॥

पूर्णाहुति ।

प्राच्याद्याग्नेयकोणादिपत्रेष्विष्टाः क्रमादिमाः। अष्टौ जयादिजंभादिदेव्य. शांतिं वितन्वताम् ॥

इष्टप्रार्थना । इति जयादिदेवतार्चनाविधानम् । अथ दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च संक्षेपेण सत्कुर्यात् । इति बहिर्मंडलचतुष्टयार्चनविधानम् ।

मोहा देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२२ ॥ "जिनं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभादेवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२३ ॥ "प्रवादि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभिनीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२४ ॥ "इत्येताः" इत्यादि श्लोक बोलकर स-

इत्यं निष्ठितपूज्यपूजनविधिः शक्रो महार्घेण तां
त्रिर्वेदीमवतार्य भूतिभरतो भक्त्या परित्यानतः ।
सद्भूपाश्चतुरोष्ट वा सुकुसुमैस्तं जापयन् मतस-
द्भूपं मंत्रमनादिसिद्धमुरुधीरीशानवेदीं यजेत् ॥ २२७ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारिसरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ह्रौं स्वाहा । अनादिसिद्धमंत्रः । इति मूलवेदिकार्चनविधानम् । अथोत्तरवेदिकार्चनम् ।

वेद्यां चान्यां सुरगिरिशिलावेदिवत्कर्णिकायां
प्राग्वन्मंत्रानथ कजदलेष्वष्टसु श्र्यादिदेवीः ।

वको पूर्णार्घ देवे ॥ २२५ ॥ "प्राच्या" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्टवस्तुकी प्रार्थना करे ॥ २२६ ॥ इसतरह जया आदि देवताओंकी पूजा हुई । इसके बाद दिकपाल, द्वारपाल और यक्षोंका संक्षेपसे सत्कार करे ॥ इसप्रकार बाह्य मंगलचतुष्ककी पूजाविधि जानना । "इसप्रकार" वह इन्द्र पूजाविधि करके अनादि सिद्ध मंत्रको जपता हुआ ईशानवेदीको पूजे ॥ २२७ ॥ "णमो" इत्यादि स्वाहातक अनादिसिद्ध मंत्र जानना ॥ इसतरह मूलवेदी-

अष्टद्रादीन् क्षितिपुरवहिर्दिक्षु देवीजयाद्या

न्यस्य द्वारेष्वनु च चतुरो यक्षदेवान् यजामि ॥ २२८ ॥

ईशानवेद्या यागमंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पाजलिं क्षिपेत् । अथ पूर्वविधिना कर्णिकात स्थापिता परब्रह्मादिपूजा विधाय पद्मदलेष्वष्टौ श्र्यादिदेवी. पूजयेत् । तथाहि ।

याः सामानिकपर्षदंबुजपरीवारान्वया घूर्न्नभू

पद्मादिह्रदपुष्करेंदुविशदप्रासादवासा मुदा ।

सेवंते वहुधा जिनेंद्रजननीं श्र्यादीश्रयंत्यो गुणान्

भांती पुष्पमुखैः करात्तकलशैस्ताः श्र्यादिदेवीर्यजे ॥ २२९ ॥

श्र्यादिदेवीसमुदायपूजाविधानाय पत्राष्टके कुंकुमाप्लुलितपुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

की पूजाविधि हुई । अब उत्तरवेदीकी पूजा कहते हैं । "वेद्यां" इत्यादि श्लोक पढकर ईशानवेदीमें यागमंडलकी पूजा करनेके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २२८ ॥ अब पहले कही हुई विधिके अनुसार कर्णिकाके मध्यमे स्थापित अरहंत आदि परमेष्ठीकी पूजा करके आठ कमलपत्रोंपर श्री आदि आठ देवियोंकी पूजा करे । उसीको कहते हैं । "याःसामा" इत्यादि श्लोक बोलकर श्रीआदि देवीयोंके समूहकी पूजा करनेके लिये आठ पत्तोंपर केशरसे लेपे हुए पुष्पअक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २२९ ॥ अब जुदी जुदी पूजा कहते हैं । "श्र्यायाः"

भ्यार्याः संशन्द्ये युष्मानायात सपरिच्छदाः॥अत्रोपविशतैता वो यजे मत्येकमादरात्॥२३०॥

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

क्षोण्या पार्श्वततेंद्रकार्मुकताडिद्दंदद्युतिं तन्वतो
हिम्याद्रेरुपरित्यमुज्ज्वलयतः पद्मह्रदं पुष्करात् ।
यत्यद्रव्यवरैः सुरालहृदतैर्गर्भं विशोध्य श्रियं
तन्वाना जिनमातरं भजति या सा श्रीस्तडिज्ज्यार्च्यते ॥ २३१ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते श्रीदेवि आगच्छागच्छ इद जल . ।

नानारत्नमयूखपार्श्वखचितक्षीरादवेलाक्षिपो
मूर्द्धन्युल्लसतो महाहिमवतः पद्मान् महापाद्मिके ।
संविद्वालसखीमुपेत्य विनयाल्लज्जां दृशोर्व्यंजती
यार्हन्मातुरुपासनां वितनुते सा ह्रीर्जपाभार्च्यते ॥ २३२ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्तोंपर पुष्प और अक्षत क्षेपण करे ॥ २३० ॥ "क्षोण्या" इत्यादि तथा "ओं सुवर्ण" बोलकर श्रीदेवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ २३१ ॥ "नानारत्न" इत्यादि तथा "ओं रक्त" इत्यादि बोलकर ह्री देवीको अर्घ चढावे ॥ २३२ ॥ "उद्यंतं" इत्यादि तथा "ओ

ओं रक्तवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते ह्रीदेवि इद . . ।

उद्यंत सहृतोभितो हरिधनुष्कीर्णा रविं सीकरै—
र्मूर्द्धोर्वी निपधस्य चुंवति महापद्मादपि ज्यायसी ।
कंजादेत्य तिगिंछ एधितरुचैर्धैर्यं परं पुष्यती
या जैना भजतेंबिकामुपहरे तां चीनवर्णां भृतिम् ॥ २३३ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते धृति देवि इद . .... ।

पार्श्वोल्लासिविचित्ररत्नरुचिरां वैडूर्यगात्रीं गदां
द्वीपेनेव धृतां पुनात्युपरिमे नीलाचलं नीरजात् ।
भातः केसरिणि श्रियेत्य विधिवद्या सज्जयंती स्तुतौ
रुग्माभा वरिवस्यतीशजननीं तां कीर्तिमर्चाम्यहम् ॥ २३४ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते कीर्तिदेवि इद.... ।

भास्वद्भक्तिविचित्रितोभयवपुर्भोगेंद्रनागमती—
क्ष्मिणो रुक्मिगिरेर्महांतमुपरित्यं पुंडरीक श्रितात् ।

सु" इत्यादि बोलकर धृति देवीको जलादि चढावे ॥ २३३ ॥ "पार्श्वो" इत्यादि तथा "ओं सु" इत्यादि बोलकर कीर्ति देवीको अर्घ चढावे ॥ २३४ ॥ "भास्वद्भ" इत्यादि तथा "ओं सु" इत्यादि बोलकर बुद्धिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३५ ॥ "रत्नोद्य" इत्यादि तथा "ओं

साo

॥

याज्जादेत्य हिरण्यरुक्परिचरत्यर्हत्सवित्रीं जग—

द्बोधं कंदलयंत्यलं बलिमहं तस्यै ददे बुद्धये ॥ २३५ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शुद्धिदेवि इद . .. ।

रत्नांशुच्छुरितोभयांतकनकश्रोणींध्रशृंगस्निहः

रकुर्वाणमधित्यकां शिखरिणो यत्पुंडरीकं श्रिया ।

आवभाति ततोंबुजादुपरतावायै भवोद्भासिनी

भर्माभा जुषतेंबिकां जिनपतेर्लक्ष्मीं यजे तामहम् ॥ २३६ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते लक्ष्मी देवि इदं .. ...।

दृश्यादृश्यवपुर्भिरस्फुटशची साक्षात्सुखं श्र्यादिभि—

स्तत्तन्मंगलधारणादिविधिभिर्देव्या यदुद्भाव्यते

तत्भत्यूहवहिष्कृतं विदधती तस्या मनोनिर्वृतिं

कांचित्कांचनकांतिरुत्किरति या शांतिर्मया साच्र्यते ॥ २३७ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शाति देवि इदं . ।

सु" इत्यादि बोलकर लक्ष्मीदेवीको अर्घ चढावे ॥ २३६ ॥ "दृश्यादृश्य" इत्यादि तथा "ओं सु" इत्यादि बोलकर शांतिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३७ ॥ "संक्रांते" इत्यादि तथा "ओं

संक्रांतेंदु यथामुखीनवलवक्षुक्षिं जिनाध्यासितं
बिभ्रत्यावपुषीश्वरे गुणगणे भोगेषु भक्तेषु च ।
देव्याः पुष्टिमनुक्षणं प्रगुणयंत्यन्यासु या स्तभ्यते
गांगेयांगरुगर्हतोर्हति महे सा पुष्टिरिष्टिं न काम् ॥ २३८ ॥

ॐ सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते पुष्टिदेवि इदं . . . ।

इत्यष्टैता दिक्कुमारीर्जिनांबापरिचारिकाः। प्रसाद्य हविषां पूर्णाः पूर्णाहुत्यो विदध्महे ॥२३९॥

पूर्णाहुति ।

एवं संभाविताः कर्तुर्जिनजन्ममहोत्सवम्। श्रीमुख्यदेवतास्त्वष्टास्तुष्टये संतु यज्वनाम् ॥२४०॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पाजलिं क्षिपेत्। एव श्र्यादिदेवीरभ्यर्च्य दिक्पालादीन् पूर्ववत्क्रमेण पूजयेत्।

इत्युत्तरवेदिकार्चनविधानम् ।

ऐतिह्यादिति यागमण्डलमहं निर्वर्त्य वेदीविधिं
चिद्वृत्यं शुभभावसंपतिपरा निर्माप्य भव्यात्मनाम् ।

सु" इत्यादि बोलकर पुष्टि देविको जलादि चढावे ॥ २३८ ॥ "इत्यष्टै" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २३९ ॥ "एव" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्ट वस्तुकी प्रार्थनाकेलिये पुष्पोंका क्षेपण करे ॥ २४० ॥ इसप्रकार श्री आदि देवियोंको पूजकर दिक् पालोंको पूर्व क-

दृष्ट्वामृश्य च सर्वशः प्रतिकृतीराशाधरोंतश्चरत्–
कीर्तिः सोत्तरसाधकोनुरहसं गच्छेत्पुरा कर्मणे ॥ २४१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि यागमण्डलपूजाविधानीयो नाम तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

दे हुए क्रमसे पूजे। इस तरह उत्तर वेदीकी पूजा विधि हुई। मैंने (आशाधरने) यह वेदीका विधान शास्त्रके अनुसार कहा है। जो कोई इस विधीको जानकर और विचार कर करेगा वह मुमुक्षु भव्यजीव उत्तम सुखको अवश्य प्राप्त होगा ॥ २४१ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें यागमण्डलकी पूजाविधी कहनेवाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथो विविक्तदेशस्थः प्रतिष्ठाचार्यकुंजरः । प्रतिष्ठाविधये कुर्यात् परिकर्मेदमादृतः ॥ १ ॥
प्रागेकां सुखसचार्या प्रातिहार्यादिशालिनीम् । पुरोधाय सुरम्यार्च्यां प्रतिष्ठेयं निरूपयेत्॥२॥

शस्ताशस्तात्मभावार्जितदृपदृजिनच्छेददृप्यत्परा यः
स्वर्गाच्छ्वभ्रादर्थैत्य त्रिजगदुपकृतिव्यक्तिमाहात्म्यसपत् ।
शक्राद्यैर्योतिरागादहमहमिकया सेव्यते सिद्ध्यधीशः
पश्यंत्यज्ञास्तदर्चां स्वचितामिह नये स्थाप्यतेऽस्म तेभ्यः ॥ ३ ॥

अब चोथा अध्याय कहते हैं । याग मण्डलकी पूजाके बाद उत्तम प्रतिष्ठाचार्य एकान्तस्थानमें प्रतिष्ठा विधिके लिये इस आगे कहेजानेवाली क्रियाको करे ॥ १ ॥ सबसे पहले एक प्रतिमाको लावे । जोकि अच्छीतरह अपनेपर चल सके, प्रातिहार्य आदि सहित हो और देखनेमें बहुत अच्छी हो ॥ २ ॥ "शस्ता" आदि श्लोकोंमें जैसा प्रतिमाका वर्णन किया है वैसी प्रतिमाको न्यायपूर्वक पैदा किये हुए द्रव्यसे बनवाकर प्रतिष्ठा कराते हैं वे

कल्याणैः श्रितभूतभाविसुनयत्रित्वौभयेः पंचाभे-
श्चित्तं वित्तमशेषमोहमथनाद्धासत्यविद्याभिदि ।
प्रत्यग्ज्योतिषि तीर्थकृत्वनियतं निर्बीजयोगे स्फुरद्
ध्यात्वार्चा स्थिरचित्क्षणाएकपदे यो क्षेत्रबीजाक्षरम् ॥ ४ ॥

द्रव्यैः स्वैः सुनयार्जितैर्जिनपतेर्बिम्बं स्थिरं वा चल
ये निर्माप्य यथागमं सुदृपदाद्यात्मात्मनान्येन वा ।
लग्ने वाल्गुने लंभयंति तिलकं पश्यंति भक्त्या च ये
ते सर्वेपि महोदयांतमुदयभव्यां लभंतेऽद्भुतम् ॥ ५ ॥

प्रतिष्ठेयनिरूपणा । अथ सकलीकरणम् । अत्रादावनेन मत्रेण स्वहस्तौ पवित्रयेत् । ओं णमो अरहताण णमो केवल्णिे सुअगदेवि पसत्थ हत्थेहिं हुं फट् स्वाहा । हस्तद्वयपवित्रकरणमत्र । तत

भव्यजीव उत्तमपदको पाते हैं ॥ ३ । ४ । ५ । यह प्रतिमाका वर्णन हुआ । अब सकली-करण क्रिया कहते हैं । उसमें पहले " ओं णमो " इत्यादि मंत्रसे अपने हाथ पवित्र करे उसके बाद सुरभिमुद्रा धारण करके इस आगेकी पवित्र विद्याको सात वार चिंतवन करे । वह विद्या "ओं णमो" से लेकर स्वाहा तक कही है। उसके बाद अंगन्यास करे वह इसप्रकार है

सुरभिमुद्रा धृत्वा इमा शुचिविद्या सप्तवारान् न्यसेत्। ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आगासगामीणं णमो विज्जायाणं णमो सव्वोसहिपत्ताणं णमो सयं बुद्धाणं णमो केवलिणे स्वाहा। इमा च। ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं हन हन क्षां क्षीं क्षुं क्षौं क्षः क्षीरधवले अमृतसंभवे वं वं हूं स्वाहा। शुचीकरणमन्त्रौ। ततः सकलीकुर्यात्। ओं अ नमः सुहृदये, ओं सिं स्वाहा शिरसि, ओं आ वषट् शिखायां, ओं ओं घे घे कवचं, ओं साहूं फट् स्वाहा अस्त्रं, ओं ह्रौं वषट् नयनयोः। पुनः ओं ह्रां णमो अरहंताणं स्वाहा हृदये, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं स्वाहा ललाटे, ओं ह्रूं णमो आइरियाणं स्वाहा शिरोदक्षिणे, ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं स्वाहा पश्चिमे, ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा वामे। पुनस्तान्येव पदानि ललाटे मूर्ध्नि दक्षिणे पश्चिमे वामे चेति न्यसेत्। सकलीकरणमन्त्र। ततः।

ओं "उसहाइजिण पणमामि सया अमलो विरजो वरकप्पतरू।
सवकामदुहा मम रक्ख सदा पुरु विज्जणही पुरु विज्जणिही॥ ८॥

"ओं" इत्यादि पहला मंत्र बोलकर हृदय स्थानको स्पर्श करे। दूसरेसे मस्तकको, तीसरेसे चोटीको चौथेसे कवचको पांचवेंसे अस्त्रको और छठेमंत्रसे नेत्रोंको छुए। अथवा "ओं ह्रीं" इत्यादि पहले मंत्रसे हृदयका स्पर्श करे, दूसरेसे मस्तकका, तीसरेसे शिरके दाहिनी तरफका, चौथेसे पश्चिमकी तरफका, पांचवेंसे बांई तरफका स्पर्श करे। इन्हीं पदोंको बोलकर मस्त-

ओं " अठ्ठत्र य अठ्ठसया अठ्ठसहस्सा य अठ्ठकोडीओ ।
रक्खंतु ते सरीरं देवासुरपणमिया सिद्धा ॥ ७ ॥ स्वाहा ।

अनेन स्वस्यागप्रत्यगपरामर्शं कार्यं । ततः ओं धनु धनु महाधनु । स्वाहा । इमां धनुर्विद्यां वामकरांगुलिपर्वसु विन्यस्य प्रतिमाग्रे वामपादांगुष्ठेन सरेफाग्रपुरस्सरं धनुरालिख्य वामपादेनाक्रम्य कार्योत्सर्गेण स्थितः सन् ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं थंभेइ जलं जलणं चिंतियमित्तेण पंचणमोक्कारो अरि मारि चोर राउल घोरुवसग्गं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः विणासेइ स्वाहा । इदं सप्तवारान् समुच्चार्य अष्टोत्तरशतं धनुर्विद्यामावर्तयेत् । इति सकलीकरण विधानं । अथ प्रतिष्ठा ।

कके दक्षिण पश्चिम ओर बायें भागमें स्थापन करे ॥ यह सकलीकरण मन्त्रकी क्रिया हुई । उसके बाद छठे सातवे दो श्लोकमंत्र पढकर अपने अंग उपांगोंको छुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके पीछे " ओंधनु" इत्यादि धनुषविद्याको बायें हाथकी उंगलियोंके पोरुओंमें स्थापनकर प्रतिमाके आगे बायें पैरके अगूठेसे रेफ सहित बाणयुक्त धनुषको लिखकर बाये पैरसे आच्छादितकर खड्गासनसे "ओं णमो" इत्यादि स्वाहा पर्यंत मंत्रको सातबार मनमें बोलकर एकसौ आठबार धनुषमंत्रको जपे । इसतरह सकलीकरण क्रियाका कथन किया । अब प्रतिष्ठा करनेकी विधि कहते हैं:—सकलीकरणादि कर्म करनेके बाद प्रतिष्ठाचार्य वेदीके पूर्वसिंहासनके

कृतकर्माधुनावेदीं प्रॉच्यपीठाग्रभूतले । इह गंधांबुसंसेकसत्पुष्पप्रकाराचिते ॥ ८ ॥
भद्रासनं निवेश्यात्र विश्वकर्मसमक्षतः । गर्भावतारकल्याणं स्थापयामीदमर्हताम् ॥ ९ ॥

ॐ मूलवेद्या पूर्वस्या दिशि जयादिपीठस्य पुरस्ताद्भद्रासन निवेशयामीति स्वाहा ।
भद्रासननिवेशनम् ।

वंशक्षायिकदृक्समिद्धसुधियां योस्मिन्मनूनामभू-
द्ये चेक्ष्वाकुकुरुग्रनाथहरियुग्वशाः पुरोवेधसा ।
आधानादिविधिप्रवंश्रमहिताः सृष्टास्तदुत्थार्यभू-
भर्तृस्वामिकजीविता सुकुलजा जैन्यो जयंत्यंत्रिकाः ॥ १० ॥

मृत्यादित्रयदृग्विशुद्ध्यनुगचित्सत्कर्मणोआगम-
द्रव्यो गोतमगोत्रभागभिजनो नेमिस्तथा सुव्रतः ।
तद्वत्काश्यपगोत्रिणस्तदितरे णोकर्मनोआगम
द्रव्योद्येष्वभवन स्वयं यदुदरेष्वंवाः प्रसीदंतु ताः ॥ ११ ॥

आगेकी जगहको गंधोदकसे छिडककर पुष्पोंको क्षेपण कर उस जगह पर कारीगरके सामने उत्तम सिंहासन रखे और "मैं अर्हत्प्रभुका गर्भकल्याणक स्थापन करता हू" ऐसा कहे । उस समय "ॐ मूल" इत्यादि मंत्र बोलना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ "वंश" इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी स्तुती करे ॥ १० ॥ ११ ॥ अब जिनमाताओंके नाम कहते है,—

मरुदेवीं वृषभस्यांबा विजयामजितस्य च । सुषेणां संभवेशस्य सिद्धार्थां नंदनप्रभोः ॥१२॥
सुमंगलाख्यां सुमतेः सुसीमां पद्मरोचिषः । वसुंधरां सुपार्श्वस्य लक्ष्मणां चंद्रलक्ष्मणः॥१३॥
रामां श्रीपुष्पदंतस्य सुनंदां शीतलार्हतः । विष्णुश्रियं श्रेयसश्च वासुपूज्यप्रभोर्जयाम् ॥१४॥
सुशर्मलक्ष्मीं विमलार्हतोऽनंतस्य सुव्रताम् । ऐरिणीं धर्मनाथस्य कमलां शांत्यधीशिनः १५
सुमित्रां कुंथुनाथस्य अरभर्तुः प्रभावतीम् । मल्लेः पद्मावतीं वप्रां सुव्रतस्य मुनीशिनः॥१६॥
विनतां नमिनाथस्य शिवां नेमिजिनेशिनः। देवदत्तां च पार्श्वस्य वीरस्य प्रियकारिणीम्॥१७॥
चतुर्विंशतिमप्येताः मात्रीस्तीर्थकारिणाम् । स्थापयामीह तद्गर्भपवित्रितजगत्त्रयाः ॥ १८ ॥

ऋषभनाथकी मरुदेवी अजितकी विजया, संभव नाथकी सुषेणा, अभिनंदनकी सिद्धार्था, सुमतिजिनकी सुमंगला, पद्मप्रभकी सुसीमा, सुपार्श्वकी वसुंधरा, चंद्रप्रभकी लक्ष्मणा, पुष्पदंतकी रामा, शीतलनाथकी सुनंदा, श्रेयांसनाथकी विष्णुश्री और वासुपूज्य प्रभुकी जया है ॥ १२ ॥ ॥१३॥१४॥ विमलनाथकी सुशर्मलक्ष्मी, अनंतनाथकी सुव्रता, धर्मनाथकी ऐरिणी, शांतिनाथकी कमला, कुंथुनाथकी सुमित्रा, अरनाथकी प्रभावती, मल्लिनाथकी पद्मावती, सुव्रतप्रभुकी देवदत्ता और महावीरप्रभुकी प्रियकारिणी—इन चौबीस जिनमाताओंकी स्थापना इस जगह करता हूं। इन्हींके गर्भसे तीन जगत पवित्र होता है । १५।१६।१७।१८ ॥ "ओं"

ओं मरुदेव्यादिजिनेंद्रमातरोत्र सुप्रतिष्ठिता भवत्विति स्वाहा । जिनमातृस्थापनार्थं भद्रपीठस्योपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

पण्मासान् भुवमेष्यतां नवदिवश्चाजग्मुपामर्हतां
पित्रोः सौधमपीद्धमुत्स्मृजाति या रैदो महेंद्राज्ञया ।
स्वर्णा गावधुतामरद्रुमफलासारभ्रमं कुर्वतीं
व्यक्तुं तामिहग त्वद्दष्टिमुचितं मुंचामि पुष्पोच्चयम् ॥ १९ ॥

ओं धनाधिपते अर्हत्पितासौधे रत्नवृष्टिं मुंच मुंचेति स्वाहा । कनकशलाका रत्नपंचकविमिश्रचित्रकुसुमाजलिं भद्रपीठस्याग्रत प्रकिरेत् । रत्नवृष्टिस्थापन ।

सर्वर्तुकामिवरवस्त्रफलप्रसूनशय्यासनाशनविलेपनमंडनानि ।
तत्तत्क्रियोपकरणानि तथेप्सितानि तीर्थेमशातुरुपदीकुरुता धनेशः ॥ २० ॥

इत्यादि बोलकर जिनमाताओंकी स्थापनाके लिये सिंहासनके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे। "पणमासान्" इत्यादि तथा ' ओं " इत्यादि बोलकर सोंनेकी सलाई पाच तरहके रत्न—इनसे मिले हुए पुष्पोंको सिंहासनके आगे वखेरै । इस तरह रत्नवर्षाका स्थापन हुआ॥१९॥ "सर्वर्तु" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर उत्तम कपडे अगूठी हार फल पत्र पुष्प आदिको सिंहासनके आगे रखे । इन सब वस्तुओंको शिल्पी ग्रहणकरे ॥ २० ॥ उसके बाद

ओं निधीश्वर जिनेश्वरमात्रे भोगोपभोगागान्युपनयोपनयेति स्वाहा । चारुवस्त्रमुद्रिकाहारफल-पत्रपुष्पादिक पीठाग्रे प्रतिष्ठयेत् । तच्च सर्वं विश्वकर्मा गृह्णीयात् ।

माताको सोलह स्वप्नोंका देखना। गर्जताहुआ सफेद ऐरावत हाथी १ बैल २ सिंह ३ देव हस्तियोंसे स्नान कराई गई लक्ष्मी ४ लटकतीं दो फूलोंकी मालायें ५ चादनीयुक्त पूर्णचंद्रमा ६ ऊगता हुआ सूर्य ७ कमलोंसे ढके हुए सुवर्णमई कलशे ८ सरोवरमे क्रीडा करता मछलियोंका जोडा ९ दिव्य सरोवर १० चंचल लहरोंवाला समुद्र ११ रत्नजडा सिंहासन १२ मणियोंसे जटित विमान १३ नागेंद्रका भवन १४ प्रकाशमानरत्नोंकी राशि १५ धूमरहित जलती हुए अग्नि १६—ये सोलह स्वप्न है इनको देखकर माताको जगना । उसके बाद अपने पतिसे स्वप्नोंका फल सुनना । वह इस तरह है—पहले स्वप्नमे सफेद ऐरावत हाथी देखनेसे उत्तम पुत्रका होना, बैलके देखनेसे तीन लोकका गुरु होना, सिंह देखनेसे अनत बलसहित होना, स्नान कराई गई लक्ष्मीके देखनेसे इन्द्रोंकर सुमेरु पर्वतपर अभिषेक होना, पुष्पमाला देखनेसे धर्मतीर्थका प्रवर्तक होना, पूर्णचद्रमा देखनेसे संसारको आनंदित करना, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होना, दो सुवर्णके घडे देखनेसे रत्नादिकी खानिका स्वामी होना, मछलियोंका जोडा देखनेसे बहुत सुखी होना, सरोवर (तालाव) देखनेसे शुभलक्षणो सहित होना, समुद्रके देखनेसे केवलज्ञानी होना, सिंहासनके देखनेसे बडे भारी राज्यका अधिकारी होना, विमान देखनेसे स्वर्गसे आकर जन्म होना, नागेंद्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानी

मंद्रं गर्जतमैन्द्रं द्विपमुडुपशयं तरसगंधं गवेंद्रं
सिंहं शैलेन दंतं जलरुहि कमलां स्नाप्यमानां सुरेभैः ।
दाम्नी खे लंबमाने भ्रमदलिपटले चंद्रिकाकीर्णदिक्क
चंद्रं मद्योतमर्कं सरसि झषयुगं क्रीडदन्योन्यरक्तम् ॥ २१ ॥
कुंभौ हेमौ सुधाढ्यौ स्फुटकमलमुखौ छन्नमच्छाप्सरोब्जै-
श्चद्रत्नोर्मिमत्रि तडिदुचितमरुच्चापजित्सिंहपीठम् ।
कांत्यान्योन्यं हसंत्या सुरफणिसदने द्या करे रंजयंतं
रत्नौघं प्रज्वलंत ज्वलनमपि निशातुर्ययामे द्विरष्टौ ॥ २२ ॥
स्वप्नान् दृष्ट्वा प्रबुद्धा झटिति घटितमुच्छृण्वती तूर्यनादान्
पत्युः प्रीतात्तदुक्त्या सुतनु सुतमिभस्ते स तादृग्महांतम् ।
व्रते विश्वाग्रिम गौः कारिकुलकापितानंतवीर्यं रमेंद्रे-
र्मेरौ स्नाप्य द्विमालं वृषसमयकररग्भौः प्रजाह्लादहेतुम् ॥ २३ ॥
भास्वान् दीप्तं विशारिद्वयमतिसुखिन कुंभयुग्मं निधीशं
कासारो लक्ष्मसारं परविदमुदधिर्विष्टरं प्राज्यराज्यम् ।

होना, रत्नराशिके देखनेसे अनेक गुणोंका खजाना होना, निर्धूम अग्निके देखनेसे कर्मरूपी इंधनका जलाना—ये स्वप्नोंको फल है ॥ २१ । २२ । २३ । २४ ॥ स्वप्नोंको देखना स्थापन

घरेतारं सुरौकः फणिगृहमवधिज्ञानिनं सद्गुणाब्धि
रत्नौघोद्दोम्रमग्निः स्तमितिविदितसतत्फलैपार्हदंवा ॥ २४ ॥

षोडश सत्पुष्पाणि तावंत्येव च सत्फलानि पारिवर्त्य पीठाग्रत स्थापयेत् । स्वप्नावलोकनस्थापनम् ।

श्री ह्री धृते कीर्तिमती च लक्ष्मि शांते च पुष्टे च सहेत्य जिष्णोः ।
आज्ञानियोगेन तथा स्वभक्तया पित्रे निवेद्यात्ततदभ्यनुज्ञाः ॥ २५ ॥
विशोध्य गर्भे सुपवित्रदिव्यद्रव्यैर्यथास्थाननियोगमेनाम् ।
सुभक्तया गूढमुपास्यमानां शच्या भजध्वं पुरुदिक्कुमार्यः ॥ २६ ॥

ओं दिक्कुमार्यो जिनमातरमुपेत्य परिचरत परिचरतेति स्वाहा । सद्वस्त्रालंकारा अष्टौ वरकुमारीमंगलतानूलहस्ता संनिधाप्य पीठं पारित सकुंकुमरजितपुष्पाक्षत क्षिपेत् । गर्भशोधनपूर्वदिक्कुमारीपरिचर्यास्थापनं ।

करनेकेलिये सोलह उत्तम पुष्पोंको तथा सोलह उत्तम फलोंको सिंहासनके आगे स्थापन करे । श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी शांति पुष्टि—इन देवियोंकर गर्भ शोधन करना ॥ २५ । २६ ॥ आठ कुमारी कन्याये स्वच्छ वस्त्र आभूषणोंको पहनके हाथमे फल आदि मंगलीक द्रव्य लेकर सिंहासनके पास आके केशर मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे । य-

सर्वौषधिचंदनपंचमृद्भिर्विलिप्य तीर्थोदकपंचकेन ।
विशोध्य पीठं जिनमज्जगर्भे गर्भोपमेस्मिन्नवतारयामि ॥ २७ ॥

तामेव रहसि पुरा निरूपितप्रतिष्ठेयामर्हत्प्रतिमा नूतनसितनसितसद्वस्त्रप्रच्छादिता पुरस्सरैट-किकाकरविश्वकर्मसौधर्मेन्द्रौ महोत्सवेनानीय सुविशुद्धभद्रासनगर्भपद्मे निवेशयेता ।

यो गंगांबुसुरत्नपुष्पकृतभूपस्कारामिंद्रासन—
द्रकूपं प्रमदाकुलीकृतजगद्गर्भं प्रविश्योत्तमे ।
लग्ने वामातिरंजयन् रविरिह प्राची परानुग्रह-
प्राहोग्रद्युतिवर्द्धतेस्म सुदृशा सोऽयं जिनस्तन्मुदे ॥ २८ ॥

ओं णमोर्हते केवलिने परमयोगिने शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मेन्धनाय सौम्याय शाताय वरदाय

---

८ गर्भशोधन और दिक्कुमारियोंकी सेवाविधि स्थापन कीजाती है । सर्वौषधि चंदन आदिसे सिंहासनको पवित्र करके कारीगर और सौधर्मेंद्र दोनों उत्तम वस्त्रसे ढकी हुई प्रतिष्ठेय प्रतिमाको महान उच्छवके साथ लाकर शुद्ध सिंहासनके भीतर कमलपत्रमें स्थापित करें ॥ २७ ॥ उसके बाद " यो गंगां " इत्यादि तथा " ओंणमो " इत्यादि बोलकर कुंकुसे रंगे हुए चमेलीके पुष्प तथा अक्षतोंको मूलनायक और दूसरी प्रतिमाओंके ऊपर क्षेपण करे ॥ २८ ॥ गर्भावतार विधि कहते हैं । "द्वक्र " इत्यादि दो श्लोक बोलकर

अष्टादशदोषविवर्जिताय स्वाहा । जात्यकुंकुमार्पिंजरितजातिपुष्पाक्षत तस्या अन्यासा च प्रतिष्ठेयमानानामुपरि क्षिपेत् । गर्भावतारण ।

दृक्शुद्ध्यादिविशेषवद्धसुकृतस्कंधेग्रसगाँगिक-
स्फूर्जच्छुष्माणि विश्वकर्माणि निजव्यापारयोग्यं वपुः ।
स्रष्टुमस्तभरास्त्रिबोधरुचिभागास्येन योर्काब्दवद्
गर्भे मातुरिभाकृतिर्वसाति वै सोत्रावतीर्णः प्रभुः ॥ २९ ॥
इत्युक्त्वा प्रणतामहत्तरिकया निर्दिश्यमाना पृथक्
स्थानाख्यादिभिदा जिनेंद्रजननीमभ्यर्च्य नुत्वा स्फुटं ।
नाथं पत्रमुदाभिनीय पितरं चापृच्छ्य जग्मुः पदं
स्वं शक्राः स जयत्ययं जिनपतेर्गर्भावतारोत्सवः ॥ ३० ॥

जिनमातृपूजनार्थं भद्रासनगर्भनिवेशितप्रतिमाग्रे पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

अथेंद्रैः सिद्धचारित्रशांतिभक्तिभिरादरात् । गर्भावतारकल्याणक्रिया तत्यास सूरिभिः॥३१॥

जिनमाताके पूजनके लिये सिंहासन (भद्रासन) में स्थापित प्रतिमाके आगे पुष्पाजलि क्षेपण करे ॥ २९।३० ॥ उसके बाद वे इंद्र सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति शांतिभक्ति—इन तीनोंको करके गर्भावतार कल्याणकी समाप्ति करें ॥ ३१ ॥ इस तरह गर्भावतार कल्याणककी विधि

इति गर्भावतारकल्याणस्थापना । अथ जन्मकल्याणस्थापना ।

देवानां नमयन् शिरांसि समनोस्याकंपयन्नासना-
न्यभ्रं निर्मलयन् सदिक्सुमनसो देवद्रुमैर्वर्षयन् ।
जन्यन् शीतसुगंधिमद्मनिलं यः सिंधुमुद्वेल-
माधुन्वन स धराधरां च निरगात् कुक्षेः शुभेद्धोपसः ॥ ३२ ॥

वस्त्रापनयनम् ।

किं तां सवित्रीमिह वर्णयामि किं चर्चये लक्ष्मथास्पदं तत् ।
यदेष देवो भुवनत्रयैकगुरुः स्वयं स्वमसवेधिचक्रे ॥ ३३ ॥
पुण्याहमद्याद्य मनोरथा नः पूर्णा जगंत्यत्र सनायकानि ।
प्रमोदते कोत्र न चेतनोस्मिन्नृजेपि जन्मात्यायिद मपन्ने ॥ ३४ ॥

जिनजन्मस्थापनाय तस्या अन्यासा च प्रतिष्ठेयप्रतिमानामुपरि पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

पूर्ण हुई । अब जन्मकल्याणककी स्थापना कहते हैं । " देवानां " इत्यादि श्लोक पढकर वस्त्रको अलग कर देना ॥ ३२ ॥ " किं तां " इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिन भगवानके जन्मकी स्थापना करनेके लिये मूलप्रतिमा तथा अन्य प्रतिष्ठेय प्रतिमाओंके ऊपर पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३३।३४ ॥ पसेवरहित शरीर १ मलरहित शरीर २ सम चतुरस्र

निःस्वेदत्वमनारतं विमलता संस्थानमाद्यं शुभं
तद्वत्संहननं भृशं सुरभिता सौरूप्यमुच्चैः परम् ।
सौलक्षण्यमनंतवीर्यमुदितिः पथ्याप्रियासृक्च यः
शुभ्रं चातिशया दशेह सहजाः संत्वर्हदंगानुगाः ॥ ३५ ॥

सनवव्यंजनशतैरष्टाग्रशतलक्षणैः । विचित्रं जगदानंदि यज्जिनांगं तदस्त्विदं ॥ ३६ ॥

सहजदशातिशयस्थापनार्थं प्रतिमोपरि दशपुष्पीमावपेत् ।

भृंगाराब्दातपत्रोज्ज्वलचमररुहाण्युद्वहंत्योष्टशो या
द्वात्रिंशद्दिक्कुमार्यो जिनजनुषि भजंत्यंबिकायाश्चतस्रः ।

संस्थान ३ वज्रवृषभनाराच संहनन ४ सुगंधमय शरीर ५ अत्यंत सुंदर शरीर ६ शुभ एक हजार आठ लक्षणवाला शरीर ७ अतुल बल ८ हितमित वचन ९ दूधके समान सफेद लोहू १० ये दश अतिशय जन्मके साथ स्वभावसे ही उत्पन्न होते है ॥ ३५ ॥ जिनेंद्रका शरीर नौसौ व्यंजन और एकसौ आठ लक्षण सहित होता है वह यही है ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर स्वभावसे उत्पन्न दश अतिशयोंकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके ऊपर दस पुष्प रखे । "भृंगारा" इत्यादि तथा "ओं रुचक" इत्यादि कहकर भद्रासनपर विराजमान प्रतिमाके चारों तरफ कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोंको बखेरै ॥३७॥ यह विजयादि देवताओंका सत्कार स्थापन

गेहं विद्युत्कुमार्यो रुचकवरनगाग्रास्पदा द्योतयंते

या चाष्टौ जातकर्मा दधाति तदनुगास्ताः स्फुरंत्वत्र धरन्याः ॥ ३७ ॥

ओं रुचकवरागिरींद्राशिखरानिवासिन्यो विजयादिदेव्यो यथास्वमर्हत्प्रभुमिहेदानीं परिचरत्विति स्वाहा । पीठस्थप्रतिमा सर्वत कुकुमराजितपुष्पाक्षत विकिरत् । विजयादिदैवतोपास्तिस्थापनं ।

दिव्यद्रव्यविशुद्ध एव जवरे यो रत्नवृष्टिं क्षण—

प्रीतायाः पयसीव पव्यमवसन्मातुः स्वयं शुद्धिमान् ।

यन्नामापि विशुद्धयेस्ति जगतो ध्यायाति यं योगिन—

स्तस्याप्याकरशुद्धिमप विधिरित्यातन्वतां देवताः ॥ ३८ ॥

आकरशुद्धिविधानस्थापनार्थं तीर्थोदकाप्लुतपुष्पाणि प्रतिमोपरि निदध्यात् ।

घंटासिंहासनकजलरुहां निःस्वनैरदेयोस्त्रै—

ज्ञात्वातुल्यजिनजनिमुपेत्योच्चकैः स्वस्वभूत्या ।

किया । " दिव्य ' इत्यादि श्लोक पढकर आकरशुद्धिकी विधि दिखलनेकेलिए तीर्थ जलसे धोये हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥ ३८ ॥ " घंटा " इत्यादि श्लोक बोलकर इन्द्र और यजमान आदिकोंके ऊपर उन अमुक नामवाले इन्द्रादि भावोंको स्थापनके लिए सौधर्म प्रतिष्ठाचार्य पुष्प और अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३९ ॥ उसके वाद " अय "

कल्पज्योतिर्वनभवनगीर्वाणनाथाः स्वयं यत्
तत्कल्याण यधुराभिनयत्यत्रतं नाम तेमी ॥ ३९ ॥

इद्रयजमानादिषु तत्तदिंद्रादिभावस्थायनाय सौधर्मे पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अयं शच्या गुप्तं कृतवति नुतिं छद्मशयना--
न्निमील्यात्रा मायातनयमुपहृत्यार्हति ते ।
समागत्यश्र्यादिव्रजमनुव्रजंत्याक्षिकरणीः
शिरो निधानाद्यैः सफलयति सेंद्रोभ्रगगजः ॥ ४० ॥

इद्राण्या भद्रासनादुद्धृत्य समर्थमाणा प्रतिमा जय जयेति वदन् प्रणतिशिराः करकमलाभ्या गृहीत्वा सर्वसंघसमन्वित इमानि वृत्तानि पठन्नुत्तरवेदीं नीत्वा जन्माभिषेकोत्सवाय स्नपनपीठे निवेशयेत् ।

यः श्रीमदैरावणवाहनेन निवेशितोंके विधृतातपत्रः ।
ईशानशक्रेण सनत्कुमारमाहेंद्रसच्चामरवीज्यमानः ॥ ४१ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर इद्राणी भद्रासनसे प्रतिमाको उठाकर जय जय शब्द करती हुई मस्तक नवाकर हस्तकमलोंपर रखती हुई सब जनसंघके साथ आगे कहे जानेवाले श्लोकोंको पढती हुई उत्तर वेदीपर ले जाकर जन्माभिषेक उत्सव करनेके लिए स्नान करनेके आसनपर रखे ॥ ४० ॥ फिर " य श्री " इत्यादि आठ श्लोकोंको तथा " ओं ह्रीं " इत्यादिको

शच्यादिभिः श्र्यादिभिरप्युदारं देवीभिरात्तोज्ज्वलमंगलाभिः ।
पुरस्सरंतीभिरिवाप्सरोभिरग्रे नटतीभिरुपास्यमानः ॥ ४२ ॥
शेषैस्तु शक्रैर्जय जीव नंद प्रसीद स्त्रश्वत्प्रतप क्षिपारीन् ।
इत्यादि वागुल्वणितप्रमोदैर्मुहुः प्रसूनैरुपहार्यमाणः ॥ ४३ ॥
सुरैः स्फुटास्फोटितगीतनृत्यवादित्रहास्योत्कुतवालितानि ।
समंगलाशीर्धवलस्तुतीनि स्वैरं सृजद्भिः परिचार्यमाणा ॥ ४४ ॥
अहो प्रभावस्तपसां सुदूरमपि व्रजित्वा प्रतिमास्त्वपीक्ष्यः ।
यः सैष साक्षाद्भुवमीक्षितोर्हन्नभेद्यनादिः स्वयमात्मबंधः ॥ ४५ ॥
सविस्मयानंदमिति ब्रुवाणैरालोक्यमानोभिमुखागतैः खे ।
देवर्षिभिः स्पर्धितदेवयुग्मं नभोगयुग्मैरपि सेव्यमानः ॥ ४६ ॥
प्रदक्षिणाध्वव्रजनेन नीत्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि मेरुशृंगम् ।
निवेश्य तत्रत्यशिलोग्रपीठे क्षीरोदनीरैः स्नपितः सुरेन्द्रैः ॥ ४७ ॥
तं देवदेवं जिनमद्य जातं शय्यास्थितं लोकपितापहत्वम् ।
इम निवेश्योत्तरवेदिपीठे प्राग्वक्रमास्मिन् विधिनाभिषिंचे ॥ ४८ ॥

बोलकर पांडुकशिलाके ऊपर सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।
४८ ॥ उसके बाद आकर शुद्धिके अभिषेक स्वरूप जन्मभिषेकको दिखलाते हैं । " रत्न "

ओं ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवान्निह पाडुकाशिलापीठे तिष्ठ तिष्ठेति स्वाहा । उत्तरवेदिकास्नपनपीठे प्रतिमानिवेशनमंत्र ।अथात आकरशुद्ध्यभिषेकरूपेण जन्माभिषेकमनुक्रमिष्याम. ।

रत्नस्वर्णमयोत्तरीयरसनासंव्यानमौलिप्रभै—
मेरुर्भाति वनैः सहस्रराहितं यो योजनान्युच्छ्रित ।
लक्षं सेयमियं च पांडुकशिला दीर्घा शतं स्फाटिकी
साष्टौ चार्धशतं तात्र सुरभिः श्रेष्टार्द्धचंद्राकृति ॥ ४९ ॥
सोत्राय पृथुमंडपोह्युपकृतो देव्योर्धहस्ता इमा—
स्तास्तान्याप्सरसाममूनि नटितान्यास्येतता योजनम् ।
निम्नाश्चाष्ट सुरैः पयोर्णवजलैर्भृत्वार्णमाणा इमे
ते कुंभाः स जिनोऽयमस्मि स हरिस्तत्काप्यहो संभृतिः ॥ ५० ॥

अभिषेकप्रकरणसज्जीकरणाय समतात्पुष्पाक्षत विकिरेत् । प्रस्तावना । ओं ऋषभादीदिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनतचतुष्टयाय परमसुखप्रातिष्ठिताय निर्मलाय स्वयमुवे अजरामरपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्टिने अर्हते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यपूज्याय अष्टदिव्यनागप्रपूजिताय देवाधिदे-

---

इत्यादि दो श्लोक कहकर अभिषेक आरमकी तयारी करनेके लिये चारों तरफ पुष्प अक्षत वखेरे ॥ ४९।५० ॥ “ ओ ऋषभा ” इत्यादि “ स्वाहा ” तक मत्र बोलकर प्रतिमाके अग

वार्ये परमार्थसन्निहितोस्मि स्वाहा । अनेन प्रतिमायाः अगप्रत्यगानि परमामृशन् सप्तवारानभिमन्त्र्य सकलीं कुर्यात् । ततो दशापि लोकपालानावाहनादिविधिनोपचरेत् । तथाहि ।

इंद्रा मिश्राद्भदेवा शरपतिवरुणाधाररै देशनाग्रे धिष्णोशा दिक्षु वेधा ? ॥५१॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सरार्घ्यार्पणाय समस्तहव्यद्रव्य जुहोमीति स्वाहा ।

अथ पृथगिष्टिः ।

दिगीशाः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान्वो यजे मर्त्येक्रमादरात्॥५२॥

दिक्षु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अत्र रूप्याद्रिस्पर्द्धीत्यादि वृत्ताष्टक प्रागुक्तमेव वक्ष्यमाणमत्रोपेत प्रयुंजीत । तथाहि ।

उपांगोंको छूकर सातवार मन्त्रितकर सकलीकरण क्रिया करे । उसके बाद दश लोकपालोंका आवाहन आदि विधिसे सत्कार करे । वह इस तरहसे है–“ इन्द्रा ” इत्यादि तथा “ इन्द्रादि ” बोलकर हवन करनेकी सामग्रीसे अवाहनादि पूर्वक इन्द्रादिका सत्कार करे ॥ ५१ ॥ अब वेदीपूजा कहते है । “ दिगीशा ” इत्यादि श्लोक बोलकर दिशाओंमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ५२ ॥ यहापर “ रूप्याद्रि ” इत्यादि पहले कहे हुए आठ श्लोकोंका मंत्र पूर्वक प्रयोग करे । वह इस प्रकार है । “ रूप्याद्रि ” इत्यादि तथा “ हे इन्द्र ” इत्यादि

रूप्याद्रि .. ॥ ५३ ॥

हे इंद्र आगच्छागच्छ इद्राय स्वाहा, इद्रपरिजनाय स्वाहा, इद्रानुचराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सौमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा स्व. स्वाहा, ओं इद्राय स्वगणपारिवृताय इदमर्घ्यं पाद्य गध पुष्प दीप धूप चरु वलिं स्वस्तिक यज्ञभाग च यजामहे प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

रुक्मारु . . ॥ ५४ ॥

हे अग्ने आगच्छगच्छ अग्नये स्वाहा . . . ।

कल्पांताः . ॥ ५५ ॥

हे यम आगच्छागच्छ यमाय स्वाहा . ।

आरूढं . ॥ ५६ ॥

हे नैऋत्य आगच्छागच्छ नैऋत्या स्वाहा .. . ।

मंत्र बोलकर इंद्रको जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ५३ ॥ " रुक्मारु " इत्यादि तथा " हे अग्ने " इत्यादि बोलकर अग्निकुमारदेवोंको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५४ ॥ " कल्पांता " इत्यादि तथा " हे यम " इत्यादि बोलकर यमदेवको जल आदि चढावे ॥ ५५ ॥ " आरूढं " इत्यादि तथा " हे नैऋत्य " इत्यादि बोलकर नैऋत्य दिक्पालको अर्घ चढावे ॥ ५६ ॥

नित्यांभ ... . ॥ ५७ ॥

हे वरुण आगच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा . ।

वलाच्छ... . .. ॥ ५८ ॥

हे पवन आगच्छागच्छा पवनाय स्वाहा .... ।

हंसौघे .. . ॥ ५९ ॥

हे धनदागच्छागच्छ धनदाय स्वाहा ... . ।

साम्नावा ... ... ॥ ६० ॥

हे ईशान आगच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा .... ।

वक्षौजस्तर्जिपृष्टश्वसनसमतरः कूर्मराजाधिरूढं

क्षुद्रछीविभकुंभाक्रमणचणसृणिस्फारणव्यग्रपाणिम् ।

" नित्यांभ " इत्यादि श्लोक तथा " हे वरुण " बोलकर वरुणको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५७ ॥ " वलाच्छ " इत्यादि तथा " हे पवन " इत्यादि बोलकर पवन कुमारको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५८ ॥ " हंसौघे " इत्यादि तथा " हे धनद " इत्यादि बोलकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ ५९ ॥ " साम्नावा " इत्यादि तथा " हे ईशान " इत्यादि बोलकर ईशानको जलआदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ६० ॥ " वक्षौज " इत्यादि तथा " हे धरणेंद्र "

सांश्लिष्टं दक्सहस्राद्वितव्यघृणिफणारत्नरुक्तृसवाल-
व्रभौघापीडमर्द्दच्छिूतमहि यमधौर्चामि पद्मासमेतम् ॥ ६१ ॥

हे धरणेंद्र आगच्छागच्छ धरणेंद्राय स्वाहा ।

वैरिस्तंवेरमास्रोल्लसदरुणसटाटोपशुभ्रांगभक्ति—
द्वालेंदुस्पर्द्धिदंष्ट्रोत्क्रमखरनखरारक्तदक् सिंहसंस्थम् ।
कुंतास्त्रं रोहिणीष्टं कुवलयसुमनः स्रक् श्रितां शंभयुक्तं
ज्योत्स्ना पीयूषवर्षं यज यजनपरं सोममर्घं महामि ॥ ६२ ॥

हे सोम आगच्छागच्छ सोमाय स्वाहा ।

एवं सत्कृत्य दिक्पालानेभ्यो मंत्रै. पुनर्ददे । अप्कुंडे सप्तशः सप्तधान्यमुष्टिभिराहुतिः ॥६३॥

ओं आ क्रौं इंद्राय स्वाहा । अनेन जलपूर्णकुंडे सप्तमे सप्तधान्यमुष्टिभिरिंद्राहुतिं दद्यात् ।

इत्यादि बोलकर धरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ६१ ॥ "वैरिस्त" इत्यादि तथा "हे सोम" इत्यादि बोलकर सोम दिक्पालको जलआदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ६२ ॥ "एवं" इत्यादि तथा "ओं आ" इत्यादि बोलकर जलसे भरे हुए कुंडमे सातवार सात धान्योंकी मुठी भरकर आहुतिया दे ॥ ६३ ॥ इसीतरह अग्नि आदिके कुंडमेंभी जानना । उसके वाद फिर

एवमन्यादिभ्योपि । अथ पुनस्तामेव प्रतिमा जिनमत्रेण सप्तवारानभिमन्त्र्याकरशुद्धिं विदध्यात् । जिनमत्रो यथा । ओं अर्हद्भ्यो नम, पादानुसारिभ्यो नम., कोष्ठबुद्धिभ्यो नम, बीजबुद्धिभ्यो नम । सावधानिभ्यो नम;परमावधिभ्यो नम, ओं ह्रौं वल्गु २ निवल्गु २ महाश्रवण । ओं ऋषभादिवर्धमानेभ्यो वषट् वौषट् स्वाहा ॥ अथाभिषेक. ।

पूरं पूरमयस्तटावधिपय सिंधोपसृत्यामरै—
र्हस्ताहस्तिकयार्पितैर्गलदुलन्मुक्ताफलस्रग्भरैः ।
श्रीखंडद्रवचर्चितैः परिदिनश्रीकर्मणा भर्मणात्
कृष्णैः साष्टसहस्रमानकलितैः कुंभैः सिताब्जाननैः ॥ ६४ ॥
आतोद्यध्वनिगीतमगलरवैः सहर्षहर्षद्युतां
देवानां नटदप्सरोगणवपुः श्रीभिश्च कीर्णांवरे ।
पार्श्वेन्द्रासनभासि पांडुकशिलासिंहासने प्राङ्मुखं
सौधर्मप्रमुखा निवेश्य जिनपं जन्मन्यसिंचत् किल ॥ ६५ ॥

उसी प्रतिमाको जिनमत्रसे सातवार मंत्रित करके आकरशुद्धि करे । वह जिनमंत्र " ओं अर्ह " यहासे लेकर " स्वाहा " तक है ॥ अब अभिषेक वर्णन करते हैं । " पूरं " इत्यादि तीन श्लोक पढकर कलशोंपर पुष्प अक्षत और जलको क्षेपण करे ॥६४।६५।६६॥ "गोवृषं"

धूलीपल्लवमंगलौषधिफलत्वग्मूलसर्वौषधी
संपृक्ताखिलतीर्थवारिसुभृतैर्मंत्रातिपूतैः कुटै. ।
अष्टाभिः स्वपदे स्थितं स्थिर मुदा वेद्यांचल चारु तद्
बिंब चाकरशुद्धिसेचनमिदं तज्जातकर्मार्पये ॥ ६६ ॥

एतत्रय पठित्वा कलशेषु पुष्पाक्षतोदकं क्षिपेत् ।

गोवृंदशृंगतो गजपतेर्दंतान्महातीर्थतः
शैलेंद्रा नृपतोरणादुरुसरित्तीराच्च पद्माकरात् ।
आनीताभिरुपस्कृतेन शुचिभिर्मृद्भिः सुतीर्थांभसा
पूर्णेन स्नपयामि हेमकलशेनार्च्यां जिनार्चां मुदा ॥ ६७ ॥

शिल्प्यादीन् समान्य सूत्रधारेण धूलीकलशाभिषेकः । कुल्याभिषेक ।

कुल्याभिः शुचिभिः सतोः स्वसुरपो पित्रोश्च पत्यात्मजैः
संयुक्ताभिरशल्पिकाभिरनिशं सक्ताभिरर्हन्मते ।

इत्यादि बोलकर कारीगर आदिका सत्कार करके शुद्धवालू आदिसे अभिषेक करे ॥ ६७ ॥ " कुल्याभिः " इत्यादि बोलकर उत्तम कुलकी स्त्रियोंसे प्रोक्षण (जलसे अभिषेक) करावे ॥ ६८ ॥ इन्हीं स्त्रियोंसे प्रतिष्ठा योग्य उवटना करावे । वेल, ऊमर, चपा, आम, वकुल,

सिद्धार्थाक्षतसत्फलोद्गमनिशादूर्वादिमैत्रीद्युषा
काष्ठमुखोद्धृतेन जिनपं संप्रोक्षयामि श्रियै ॥ ६८ ॥

प्रोक्षणकप्रणयनम् । एताभिरेव च स्त्रीभि प्रतिष्ठायोग्यमूलादिवर्तनं कारयेत् ।

बिल्वोदुंबरचंपकाम्रवकुलन्यग्रोधनीपार्जुन—
प्लक्षाशोकपलाशपिप्पलदलमच्छादितश्रीमुखैः ।
पुण्याशोष्यसरित्तडागसरसीपूर्वोरुतीर्थांबुभिः
पूर्णैः पूर्णमनोरथैरिव कुंठैः कुर्वे निषेकं विभोः ॥ ६९ ॥

ओं णमो अरहताण सव्वसरीरावच्छिदे महाभूप आय २ गिण्ह २ स्वाहा । एष मन्त्र उत्तरत्रापि योज्यः । द्वादशपल्लवाभिषेक ।

दूर्वापद्मकदनागुरुयवश्रीखंडबर्हिस्तिलै—
र्नंद्यावर्तकजातिकुंदकुसुमैः स्वर्णार्जुनव्रीहिभि ।
भूम्यमात्पवित्रगोमयनदीकूलाग्रमृद्रोचना—
सिद्धार्थैश्च समं भृतैः सुपयसा कुंभै. प्रभुं स्नापये ॥ ७० ॥

बड़, कदंब, अर्जुन, पाकर, अशोक, ढाक, पीपल इन बारह वृक्षोके पत्तोंसे ढके हुए जलके कलशोंसे " ओं णमो " इत्यादि मन्त्र बोलकर अभिषेक करे ॥ ६९ ॥ यह द्वादश पल्लवका

अष्टादशमंगलद्रव्याभिषेक ।

श्यामाशमींदीवरभृंगविष्णुक्रांतागुडूची सह देविकाभिः ।
मिश्रैः पवित्रैः सलिलैः सुपूर्णैरौप्यैर्जिनार्चां स्नपयामि कुंभैः ॥ ७१ ॥

सप्तौषधस्नपनम् ।

लवंगभल्लातकबिल्वजातीफलाम्रकम्रामलवारिपूर्णैः ।
शुभ्रैर्घटैरिष्टफलाप्तिहेतोः संस्नापये स्नातकनाथबिंबम् ॥ ७२ ॥

फलपंचकस्नपनम् ।

उदुम्बराश्वत्थशमीपलाशन्यग्रोधकल्कन्यातिकीर्णमर्णः ।
तैर्थं वहद्भिः कलशैर्वलक्षैर्भक्त्याभिषिंचामि जिनेंद्रमूर्तिम् ॥ ७३ ॥

अभिषेक हुआ । " दूर्वा " आदि बोलकर दूब आदि अठारह मंगलीक वस्तुओंसे मिले हुए जलके घडोंसे अभिषेक करे ॥ ७० ॥ यह मंगल द्रव्याभिषेक हुआ । " श्यामा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित श्यामा आदि सात वनस्पतियोंसे मिले हुए जलपूर्णकलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७१ ॥ " लवंग " इत्यादि बोलकर उसमें कहे हुए लवंग, भल्लातक, बेल, जायफल, आम-इन पांच उत्तम फलोंसे मिश्रित निर्मल जलसे भरे हुए घडोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे ॥ ७२ ॥ यह फलपंचक स्नपन हुआ ॥ " उदुंबरा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित

छल्लिपंचकस्नपनम् ।

व्याघ्री गुडूची सहदेवि सिंही वरी कुमारी शतमूलिकानाम् ।
मूलैर्बलायाश्च युतेन सर्वैः कुंभांभसाहं स्नपये जिनार्चाम् ॥ ७४ ॥

दिव्यौषधिमूलाष्टकस्नपनम् ।

कक्कूलैला जातिपत्रलवगश्रीखंडोग्रा कुष्ठसिद्धार्थमय्यो ।
सर्वौषध्यावासितैस्तीर्थतोयैः कुंभोद्गीर्णैः स्नापयाम्यर्हदर्चाम् ॥ ७५ ॥

सर्वौषधिस्नपनम् । एवं जन्माभिषेकस्यानियमाकरशुद्ध्याभिषेक विधायानेन मन्त्रेण जिनार्चामधिवासयेत् । ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स जस्स चक्कुजलंतं गच्छइ आयास पायाले लोयाण भूयाण जूए वा विवादे वा रणागणे वा गयगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताण अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख रक्ख स्वाहा । श्रीवर्धमानमंत्र ।

ऊमर, पीपल, शमी, ढाक, वड–इन पाचोंकी छालसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे स्नपन करे ॥ ७३ ॥ " व्याघी " इत्यादि बोलकर उसमें कथित व्याघ्री (परंड) गिलोय, आदि आठ उत्तम औषधियोंके मूलसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७४ ॥ " कक्कूलै " इत्यादि बोलकर उसमें कही गई औषधियोंसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे

अष्टदशमंगलद्रव्याभिषेक ।

श्यामाशर्वादीनरभृंगविष्णुक्रांतागुडूची सह देविकाभिः ।
पिष्टैः पाचितैः सलिलैः सुपूर्णैर्घटैर्जिनानां स्नपयामि कुंभैः ॥ ७१ ॥

सर्वौषधस्नपनम् ।

लवंगभल्लातकबिल्वनालीफलाम्रजम्बापलाशपूर्णैः ।
शुभ्रैर्घटैरिष्टफलाभिरैतैः संस्नापये स्नातकनाथबिंबम् ॥ ७२ ॥

कल्कस्नपनम् ।

उदुम्बराश्वत्थशमीपलाशन्यग्रोधकल्कप्रतिकीर्णवर्णैः ।
तैर्थैर्घटैः कल्कजलैश्च भक्त्याभिषिंचामि जिनेंद्रमूर्तिम् ॥ ७३ ॥

अभिषेक हुआ । " दूर्वां " आदि बोलकर दूध आदि अठारह मंगलीक वस्तुओंसे मिले हुए जलके घड़ोंसे अभिषेक करे ॥ ७० ॥ यह मंगल द्रव्याभिषेक हुआ । " श्यामा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित श्यामा आदि मान वनस्पतियोंसे मिले हुए जलपूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७१ ॥ " लवंग " इत्यादि बोलकर उसमें कहे हुए लवंग, भल्लातक, बेल, नायफल, आम इन पांच उत्तम फलोंसे मिश्रित निर्मल जलसे भरे हुए घड़ोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे ॥ ७२ ॥ यह सर्वौषधि स्नान हुआ ॥ " उदुंबर " इत्यादि बोलकर उसमें कथित

छल्लिपंचकस्नपनम् ।

व्याघ्री गुडूची सहदेवि सिंही वरी कुमारी शतमूलिकानाम् ।
मूलैर्बलायाश्च युतेन सर्वैः कुभांमसाहं स्नपये जिनार्चाम् ॥ ७४ ॥

दिव्यौषधिमूलाष्टकस्नपनम् ।

कत्कूलैला जातिपत्रलवगश्रीखंडोग्रा कुष्ठसिद्धार्थमय्यो ।
सर्वौषध्यावासितैस्तीर्थतोयैः कुंभोद्गीर्णैः स्नापयाम्यर्हदर्चाम् ॥ ७५ ॥

सर्वौषधिस्नपनम् । एवं जन्माभिषेकस्थानीयमाकरशुद्ध्याभिषेक विधायानेन मन्त्रेण जिनार्चामधिवासयेत् । ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसिहस्स जस्स चक्कुजलंत गच्छइ आयास पायाल लोयाण भूयाणं जूए वा विवादे वा रणंगणे वा गयंगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताण अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख रक्ख स्वाहा । श्रीवर्धमानमंत्र' ।

ऊमर, पीपल, शमी, ढाक, वड–इन पांचोंकी छालसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे स्नपन करे ॥ ७३ ॥ " व्याघ्री " इत्यादि बोलकर उसमें कथित व्याघ्री (एरंड) गिलोय, आदि आठ उत्तम औषधियोंके मूलसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७४ ॥ " कत्कूलै " इत्यादि बोलकर उसमें कही गई औषधियोंसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे

इति जन्माभिषेकविधानम् ।

अथोद्धृत्य निजस्कन्धे नामदेवमतियां मुदा । आरोप्य [illegible] परमोत्सवम् ॥८७॥
अनेन महता युक्तः प्राप्य तां मूलवेदिकाम् । त्रिःपरीत्य पठन्मन्त्रमिमं न्यस्येत्तदासने ॥८८॥

ॐ [illegible] तत्सुरकृतमुपमं सिंहपीठं तदेतत्
[illegible] जातकर्माधन [illegible] मनोज्ञ ।
[illegible] मारोपनीता [illegible] मेरपानाम्तथैने
देवाः [illegible] [illegible] ॥ ८९ ॥

ॐ नमोऽर्हते [illegible] [illegible] ।
[illegible] ।

[illegible] ॥८७।८८॥
[illegible]

अंत्र प्रसीद दृशमेपु चतुर्निकायगीर्वाणभर्तृषु निधेहि सनम्रवत्सु ।
एतास्त्वपद्रिदयितासु ललाटघृष्टपादाग्रभूपु मुदमुल्वणयस्मितेन ॥ ९० ॥
नित्याश्रियेभ्युदयदुर्मदिनां त्वयीशे त्वज्ज्योतिरेतदपि नः परमक्तवल्याम् ।
कर्मस्विहाभ्युदयिकेपु मतेति कोत्र प्राच्याशयोस्तमयपाक्युदयार्कसूतेः ॥९१॥
मग्नाः निमज्जंति जगंत्यमूनि मंक्ष्यंति वा मोहार्णवे कः ।
इहोपगृह्णति भवादृशीदृक् सर्वज्ञबीजं यदि न प्रसूते ॥ ९२ ॥
त्वं कल्याणी त्रिभुवनजनन्येकसूरय्यासि त्व
कीर्तिर्ज्योत्स्ना किरयति सदा क्षालयंती जगत्ते ।
स्त्रीसर्गोग्रे गणयति शिवांगेप्वापि स्वं त्वमेव
त्वत्पूताः स्मो नियतमधुना विश्वमान्ये नमस्ते ॥ ९३ ॥
पीठिकाया कुंकुमाक्तकुसुमानि क्षिप्त्वा प्रणमेत् ।

जिनदेवीं जिनाभ्यर्णां स्तुत्वा दिव्यावरादिभिः। प्रसाद्यानंदनाट्येन स्वयं चाराध्य तं पुनः ९४

प्रतिमाको रखा जाता है ॥ ८९ ॥ अब जिनमाताके अभिषेककी विधि कहते हैं– " अत्र प्रसीद " इत्यादिसे लेकर तिरानवै तक श्लोक बोलकर वेदीमें कुंकुमसे मिले हुए फूलोंको डालकर प्रणाम करे ॥९०।९१।९२।९३॥ उसके बाद जिनदेवीको उत्तम वस्त्रादिसे पूज तथा

रसाणां तस्य दिपापान देताः परिकर्मणि । भोगसंपादने श्रीद् कीदने शक्रपुत्रकान् १५
ांगुष्ठे नाभुन मनःक्षोभ[illegible] तामतः । तद्दस्थापयतद्दनापां स्थापयाम्यहम् ॥१६॥

[illegible] [illegible]जिनेन्द्र-भक्त[illegible]नाम[illegible]-
[illegible] [illegible] [illegible] शिगाया निवेशयेत् ।

> सिद्धयुद्धाद पद्मोऽन्तुकोपि तद्दक्रमाणकायगे
> निर्यं परमंतनुत्रविधिना धर्मेण आमद्राम् ।
> यः मन्त्रादिभि [illegible] त्रिजगतीनाथोमतीश्वरं
> यो भक्तेति कुभार पर न भजत् भोगान्यमाश्यत्र तम् ॥ १७ ॥

[illegible] प्रभुकी रक्षा के लिये [illegible], [illegible] सेवाके लिये, भोगादि सामग्रीके लिये [illegible], [illegible] [illegible], इस पत्नीकी [illegible] इस [illegible] प्रभुके [illegible] पास रखा था उसी तरह मैं भी इस प्रभुकी प्रतिमाके सामने स्थापित करता हूं ॥ १७, १५, १६ ॥ ऐसा कहकर उत्तम गन्ध सुगन्धित पदार्थ आ [illegible] ([illegible]) शालियां और अनेक पकवान दूध दही घी मिश्री उत्तम फल [illegible] और धूप आदि भोगोंकी सामग्री सोनेके पात्रोंमें रखकर [illegible] रखे । " सिद्ध [illegible] [illegible] प्रभुके उपदेश [illegible] राज्य सम्पदा आदि उपभोगोंकी स्थापना करनेके

पुण्यविपाकसंपादितसौराज्यसंपदुपभोगस्थापनाय कुंकुमारुणितपुष्पाणि प्रतिमोपरि विकिरेत् ।

एवं वैषयिकैः सुखैः सुरनराधीशामपि प्रार्थितैः
शश्वत्तीतमनाः सुराधिपनृपैः राज्ञार्थिभिः सेवितः ।
कालैकक्षपणीयमोहमहिमान्याधृतिसंसूचक—
प्रेक्षातंकिततीर्थकाच्छिवरतोप्यास्ते द्वितीयाश्रमे ॥ ९८ ॥

देवोपनीतभोगोपभोगानुभवनाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति जन्मकल्याणस्थापना ॥ २ ॥ अथ निष्क्रमणकल्याण ।

प्राप्ते स्रामज्वरवदणुता वृत्तमोहे विवेक—
ज्योतिष्युद्यत्यथ किमपि तत्कारणं वीक्ष्य मंक्षु ।
निर्विण्णोर्हत्समरससुधास्वादनौकः सहेत्य
प्रीत्यानत्य सततदुपधीनभ्यनंदत्सुरर्षीन ॥ ९९ ॥

लिये केशरसे रंगे हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर बखेरै ॥ ९७ ॥ "एवं" इत्यादि श्लोक बोलकर देवोंसे लाये गये भोग उपभोगोंका अनुभव दिखानेके लिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ ९८ ॥ इस प्रकार जन्मकल्याणकी स्थापना हुई ॥ (२) ॥ अब तपकल्याणकका वर्णन करते है । "प्राप्ते" इत्यादि श्लोक बोलकर शमसुखके एक स्वादी होनेकी स्थापनाके

मशागणुरिकगनिकल्पस्थापनार्थं जिनोपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

जिनयज्ञ जिनाधीश स्वयंभूस्त्व ख्वल्मसि । शक्ति स्वायंभुवं ज्योतिः शिवमस्थानमेत्र नः १०० ॥

दुग्धा कामामिषं नित्तं मुद्रव्यादिनतुष्टयी । एनामेत्यपमन्वेतु सुगूल्माहोयमेश्वताम् ॥ १०१ ॥

कुंभतो नदपरं ज्योतिः मीयंतो प्राणिनोऽखिलाः । भव्यात्मानः प्रबुध्यंतो छ्रियंतो कर्मशृंखलाः ।

निर्मलोऽस्तु त्रिजगनन्तशक्तिनेनपिरत्ततः । ज्ञान निःसीममर्पात्मन् सिद्ध मतपलादे ॥ १०३ ॥

इमं विधिं नियोगेन सागर्भेनणयेन वा । गाचान्येमपि कृत्ये तु त्वादृशो जायुः स्वयम् १०४

इति स्तुतो त्रिरोयोगं चौकानिकनुरः गुरुः । कृतानि रमकल्याणं स्थापयाम्यत्र नं प्रभुम् १०५

नि कल्पगकल्पयोगकल्पस्थापनाय नः नागुरुप्रभुमासन अनिमोहि क्षिपेत् ।

न्यग्रोधो पदर्गाणि मर्मगुमनदयापे शिरोपोर्दना-

मेने नं कि नागमतमजदिनः श्रीनिदुकः पादनः ।

तंन्मादग्णकणिस्थनंदकमिशाप्रारतुन्रथंपको

नीगान्तु रकुम्मोर गभिकरशो शास्त्र दीप्ताद्रुपाः ॥ १०६ ॥

जिन भगवानके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे । ९९ ॥ उसके बाद सभूके वैराग्य होनेके समय लौकान्तिक देवोंकर "स्वयम्भू" इत्यादि दश श्लोकोंसे स्तुति करना । १००।१०१।१०२।१०३।१०४।१०५ । फिर तपकल्याणका आरम्भ स्थापन करनेके लिये नाननमें सिद्धिन

ओं णमो अरहताण निनदीक्षावनवृक्षा अत्रावतरत्विति स्वाहा । जिनदीक्षावनवृक्षस्थापनाय मूलवेद्या प्रत्याग्निवेशितायाः प्रतिष्ठेयमहाप्रतिमाया पुरस्तात्पुष्पाणि प्रकिरेत् ।

कल्पांतार्णववीचिविभ्रमानिपानाक्रांतदिक प्रभुः
शक्रैरेत्य कृता स्तवादिकाविधिः स्वं वर्गमापृच्छयमां ।
त्यक्ता भूपखगामरोढाशिविकामारुह्य गत्वा वनं
पर्यंकस्य उदग्मुखो नतशिवो वा प्राङ्मुखः प्रव्रजेत् ॥ १०७ ॥
सोयं मुक्तिपुरीं प्रयान् विजयतां स्तादस्य पथाःशिवो
नंधादस्य मनो विशुद्धिरनिशं सैद्धा गुणाः पात्वमुम् ।
क्रोधादिप्रतिरोधिनोस्य सुतपःशस्त्रैः पतंतु क्षताः
संतश्चैनमनारतं परिचरंत्वेतत्पदं प्रेप्सवः ॥ १०८ ॥

पुष्प अक्षतोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे । " न्यग्रोधो " इत्यादि तथा " ओ णमो " इत्यादि बोलकर भगवानके वड सप्तपर्ण आदि दीक्षावनवृक्ष स्थापन करनेकेलिये मूलवेदीके पश्चिमकी तरफ स्थापित प्रतिष्ठेय महाप्रतिमाके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १०६ ॥ " कल्पांता " इत्यादि श्लोक बोलकर मूलवेदीके सिंहासनसे प्रतिमाको उठाकर उत्तम पालकीमें बैठाकर महान उच्छवके साथ लेजाकर पहले स्थापनकिये गये दीक्षावन वृक्षके

सिद्धिरूपोनुष्ठानप्रतिष्ठार्थं प्रतिमोपरि पुष्पाक्षतैः क्षिपेत् ।
ततोर्चा तां पुनर्वेदीं नीत्वा नाभिः महाजमाध्यानारनारतजिनां योजयेत् सिद्धकादिना ११४
एष क्रमश्चलानां विस्तरेण प्रकाशितः । स्थिराणांतु यथास्थाने संक्षेपेन प्रकल्पयेत्॥११५॥
तिन—गर्भावतारादिविधिः समस्तं स्थानस्थिता नाल्याजैनेन्द्रबिंबे ।
संकल्प्य सिद्धासनपादपीठपद्येऽस्य देवीं निदधे मुलाकाम् ॥ ११६ ॥
गर्भावतारविधिस्ते मार्गेयपातालनिवेशनम । इति निःक्रमण कल्याणभावना ।
अथ तपः कल्याणविधान । तत्रादौ तपःकल्याणगानकोरणमनुयोगेष्याम ।
तपोभ्यन्तरे गृहे जननितुः शोभन संपदा
तथासमाश्रा चानु रत्नकनक निचितवरां वर्षांति ।
सिंहासनस्था प्रतिमा करके सिद्धिके प्रतिमाके ऊपर पुष्पाक्षत क्षेपण करे । ११३ ॥ उसके बाद उस प्रतिमाको वेदिपर लाकर सिद्धादि क्रियामें युक्त करे ॥ ११४ ॥ यह क्रम चल प्रतिमाओंका विस्तारसे कहा गया है परन्तु स्थिर प्रतिमाओंका उसी स्थान पर संक्षेपसे करे ॥ ११५ ॥ समस्त क्रियाएं करके सिद्धासनके मध्यमें मातकी संकल्पना करे । इस विधिमें कल्याणकी स्थापना हुई ॥ ११६ ॥ अब निःक्रमणविधि कहते हैं । प्रथम पाठमें तपके पहले कल्याणोंका स्थापन करते हैं । जिस समय गर्भमें आनेके पहलेही

भत्युर्वी मणिगर्भिणी सुरसरिन्नीरोक्षिता षोडश–
स्वप्नेक्षामुदितां भजंति जननीं श्रीदिक्कुमार्योसि सः ॥ ११७ ॥
प्रच्छन्नं जननीमुपास्य शयनादानीय शच्यार्पितं
यं तत्रास चतुर्णिकायविबुधः श्रीमत्करींद्राश्रितः ।
सौधर्मांकनिवेशितं सुरगिरिं नीत्वाभिषिच्यावया
संयोज्योपचरत्यजस्रमसमैर्भोगैः स भास्येष नः ॥ ११८ ॥
किं कुर्वाण सुरेंद्ररुद्रविषयानंदाद्विरक्तस्तुतो
यो लौकांतिकनाकिभिः शिविकया निःक्रम्य गेहान्महैः ।
दिव्यैः सिद्धनतीद्व्यावनतरुं पूत्वा परादीक्षया
भुंक्ते शुद्धनिजात्मसंविदमृतं स त्वं स्फुरस्येष नः ॥ ११९ ॥

महिने तथा आनेके वाद नौ महीने इस तरह पद्रह महीने इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने पिताके घर रत्न आदिकी वर्षा की तथा सोलह उत्तम स्वप्नोंके देखनेसे हर्षित जिनमाताकी दिक्कुमारियां सेवा करती हुई ॥ ११७ ॥ जिसके जन्म कल्याणकमें इद्राणीने माताको निद्रामें मग्न करके प्रभु वालकको लाकर इंद्रको सौंप दिया, फिर उसे ऐरावत हाथी-पर विठाके सुमेरु पर ले जाकर इन्द्रादिने अभिषेक किया, उसके वाद राज्यसंपदा आदि भोगोपभोगकी दिव्य सामग्रीसे शोभायमान हुए ॥ ११८ ॥ उसके वाद किसी

अन्यस्मिन्नक्रमाक्रमभवतगुभोत्सवेषु तिष्ठन् कनित्
धर्मध्यानचक्रादुरत्नगलिताभापुत्रयः सप्त गः ।
दृष्टि प्रमकृतौ समानपरतुजातिनिद्रा द्विधा
स्वभ्रस्थावरसूक्ष्मपतिर्यगुभगोद्योतान् कषायाष्टकम् ॥ १२० ॥

क्लैब्यं स्त्रैणमथादिमेन नवमे हास्यादिषट्कं नृतां
शिष्टोदीरि पृथक्कुधादिदशमे लोभं कषायाष्टकं ।
निद्रां प्रचलाभपुत्रयसमये दग्धीम्रयिमावतु-
र्दिः पंच क्षिपते परेण चरमे गुक्लेन मोऽन्त्याव ॥ १२१ ॥

निमित्तको पाकर भोगोंसे वैराग्ययुक्त हुए, उस समय लौकान्तिक देवोंने आकर स्तुति की फिर दिव्य पालकीमें बैठाकर वनमें लेगये वहां पर शिलापट्टके नीचे बैठके प्रभुने सिद्धोंको नमस्कार कर आप ही दीक्षा धारण की, केशलोंच करके ध्यानमें मग्न हुए निजस्वभावानुभवका स्वाद लेते हुए। ऐसे प्रभु हमारे कल्याण कर्ता हो ॥ १२० ॥ जिन प्रभुने धर्मध्यान और शुक्लध्यानके बलसे अप्रमत्तमें ही गुणस्थान क्रमसे कर्म प्रकृतियोंका नाश किया। यह क्रम कर्मकांडमें विस्तारसे लिखा हुआ है। विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखा। इसके क्रमसे चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान आदि अनंतान

द्रव्यं भावमथातिसूक्ष्ममधियन्युक्त्या वितर्कं स्फुर-
न्नर्थव्यंजनमंगगीरपि पृथक्त्वेनापि संक्रामता ।
कर्मांशानव स्थितेन मनसा मोढार्भकोत्साहवत्
कुठेन द्रुमिवाणुशः परशुना छिंदन् यतिष्वध्यासि ॥ १२२ ॥
क्षुण्णे मोहरिपौ भजन्नुदयथाख्यातांधिराज्यश्रियं
शुद्धस्वात्मनि निर्विचारविलसत्पूर्वोदितार्थश्रुतः ।
स्वच्छंदो छलदुत्कलोज्ज्वलचिदानंदैकभावो लस-
च्छेपारिव्रजवैभवः स्फुटमसि त्वं नाथ निर्ग्रंथराट् ॥ १२३ ॥
विश्वैश्वर्यविघातिघातिदितिजो छेदो गतानंतदृक्
संविद्वीर्यसुखात्मिकां त्रिजगदाकीर्णे सदस्या स्थितः ।
जीवन्मुक्तिमुपींद्रचक्रमहितस्तीर्थं चतुस्त्रिंशता
कुर्वाणोतिशयैः पुनात्यपि पशून् संप्रातिहार्याष्टकैः ॥ १२४ ॥

उदय पाकर सयोगकेवली हुए । उससमय इंद्रने समवसरणकी रचना की । उसी समय चौंतीस अतिशय आठ प्रतिहार्य तथा पूर्वोक्त अनंतज्ञानादि चार—इसतरह छयालीस गुण मंडित हुए दिव्यध्वनिद्वारा तिर्यंचों आदि जीवोंका कल्याण करते हुए ॥ १२० । १२१।१२२ १२३ । १२४ ॥ उसके बाद प्रभुने योगोंको रोककर शुक्लध्यानके बलसे मोक्षअवस्थाके

देव्यक्तिविशेषसंव्यवहानिव्यक्तयुक्तसल्लांछन-
श्रीमत्त्वत्क्रमपद्मयुग्मसततोपास्तौ नियुक्तं शुभैः ।
यक्षद्वद्वमवश्यमेनदुचितैः प्राच्यैरिदानींतनै-
र्देवेंद्रैरपि मान्यते शिवमुदोप्येष्यद्भिरीशिष्यते ॥ १२५ ॥
द्वौ गंधौ रसवर्णबंधनवपुः घातकान पंचशः
षट् षट् संहननाकृतीः शुभगतिः स्वस्वानुपूर्व्याशुभे ।
खत्रज्ये परघातकागुरुलघूच्छ्वासोपघाता यशो
नादेयं शुभसुस्वरास्थिरयुगैः स्पर्शाष्टकं निर्मितम् ॥ १२६ ॥
व्यांगोपांगमपूर्णदुर्भगयुगे प्रत्येक नीचैः कुले
वेद्यं चान्यतरद्विमक्षतिमुपांत्ये मूरयोगं क्षणे ।
आदेयं सनिजानुपूर्व्यनृगतिं पंचाक्षयोस्तिशयः
पर्याप्तत्रसबादराणि सुभगं मर्त्यायुरुच्चैः कुलम् ॥ १२७ ॥

अतके दो समयोंमेंसे पहले समयमें पचासी कर्म प्रकृतियोंमेंसे बहत्तर प्रकृतियोंका क्षय किया और अंतसमयमें अवशेष तेरह प्रकृतियोंका नाशकर कर्मोंसे मुक्त हुए तीनलोकके शिखरपर जा विराजे ॥ १२५ । १२६ । १२७ । १२८ । १२९ ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त श्लोकोंको

वेग्नेनान्यतरेण तीर्थकमार अग्रादशाप्यंतिमे

निष्कृत्यभक्तरिनुत्तरसमुचिउन्नाक्रियध्यानतः ।

यः प्राप्तो जगदग्रमेकसमयेनोर्ध्वगमात्माष्टभिः

सम्यक्त्वादिगुणैर्विभाति स भवानत्रार्थितोर्च्याज्जगत् ॥ १२८ ॥

मुक्तिश्रीपरिरंभनिर्भरचिदानन्देन येनोज्झितं

देहं द्राक् स्वयमस्तसंहतितडिद्वामेव मायामयम् ।

कृत्वार्गींद्रकिरीटपावकयुतैः श्रीचन्दनाद्यैर्मुदा

संस्कृत्याभ्युपयंति भस्म भुवनाधीशाः स जीयात् प्रभुः ॥ १२९ ॥

एतत्पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पाजलिमापयेत् । इति कल्याणपचकारोपणविधान । अथ सस्कार-मालाधिरोपणम्।

न्यस्यामथेह विवेष्ट चत्वारिंशतमर्हतः । संस्कारान् दृष्टिलाभादिशिवांतपदगोचरान्॥१३०॥

पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अजलि क्षेपण करे। यह कल्याणपंचककी आरोपणाविधि हुई । अव संस्कारमालाकी आरोपण विधि कहते है। "न्यस्या" इत्यादि श्लोक बोलकर सम्यग्दर्शनप्राप्तिके सस्कारसे लेकर मोक्षप्राप्तितक सस्कार स्थापनेकी प्रतिज्ञा करे ॥ १३० ॥

सद्दर्शनस्य संस्कारः स्फुरत्वयमिहार्हति । संज्ञानस्यैव सद्वृत्तस्यैष सत्तपसोप्ययम्॥१३१॥
एष वीर्यचतुष्कस्य मात्रष्टतयमंडले । प्रवेशस्यायमेपोष्टशुद्ध्यवष्टंभनिष्ठिते ॥ १३२ ॥
परीषहजयस्यायं त्रियोगासंयमच्युतेः । शीलमस्यायमेष त्रिकरणासंयमारतेः ॥ १३३ ॥
अयं दशा संयमोपरमस्यैषोक्षनिर्जितेः । अयं संज्ञानिग्रहस्य दशधर्मधृतेरयम् ॥ १३४ ॥
अष्टादशसहस्राणां शीलानामयमेषकः । चतुरभ्यधिकाशीतिगुणलक्षसमाश्रयः ॥ १३५ ॥
विशिष्टधर्मध्यानस्य अयमेषोतिशायिनः । अप्रमत्तयमस्यायं सुदृढश्रुततेजसः ॥ १३६ ॥
अकंपप्रकरणश्रेण्यारोहणस्यामुकोसकौ । अनंतगुणशुद्धेश्चाप्याप्रवृत्तकृतेरयम् ॥ १३७ ॥
अयं पृथक्त्ववीतर्कवीचारप्रणिधेरयम् । अपूर्वकरणस्यैषो निवृत्तिकरणस्य च ॥ १३८ ॥
बादराणां कषायाणामय किट्टिकृतेरयम् । सूक्ष्माणामेष पूर्वेषां किट्टिनिर्लेपनस्य च॥१३९॥
एषोन्येषामयं सूक्ष्मकषायचरणस्य च । प्रक्षीणमोहनस्यायं यथाख्यातविधेरयम् ॥ १४० ॥
अयमेकत्ववीतर्कवीचारध्यानभूरयम् । घातिघातस्य कैवल्यज्ञानदृष्ट्युद्यतेरयम् ॥ १४१ ॥
तीर्थप्रवर्तनस्यायमेष सूक्ष्मक्रियस्य च । शैलेशीकरणस्यायं परसंवरवर्त्यसौ ॥ १४२ ॥
योगकिट्टिकृतेरेष तन्निर्लेपनगाम्यसौ समुच्छिन्नक्रियस्यायं श्रितोयं निर्जरां पराम् ॥१४३॥

"सद्दर्शन" इत्यादि एकसौ पैंतालीस तक श्लोक बोलकर अभिप्राय मनमें धारण करके प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजली क्षेपण करे ॥ १३१ से १४५ ॥ इसप्रकार अडतालीस संस्कारोंकी

सर्वकर्मक्षयस्यायमनादिभवपर्ययः । विनाशस्याशुकोनंतसिद्धत्वादिगतेरयम् ॥ १४४ ॥
आदेयसहजज्ञानोपयोगैश्वर्यचार्यसौ । एष देहसाह्यात्येक्षोपयोगैश्वर्यगोचरः ॥ १४५ ॥

एतदर्थारोपणपरायणात.करण पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इत्यष्टचत्वारिंशत्सस्कारमालारोपणविधानम् । अथ मंत्रन्यासविधानम् ।

विश्वोद्भासि परब्रह्मव्यंजकं स्यात्पदांकितम्। शब्दब्रह्मेति मंत्रालीं न्यस्यामीह जिनेशिनः१४६

मंत्रन्यासप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

भालनेत्रश्रवोनासाकपोलरदपंक्तिषु । स्कंधयोर्मूर्ध्नि जिह्वाग्रे ओंमायार्ह रमोत्तरान् ॥ १४७॥

स्थापनाका विधान हुआ । अव मंत्रन्यास विधि कहते हैं—मैं स्यात्पदसे चिन्हित, जगतका प्रकाशक और परब्रह्मको कहनेवाले ऐसे शब्दब्रह्म इस मंत्रको अर्थात् ब्रह्म नामको जिनेश्वरमें स्थापित करता हूं ऐसा कहकर मंत्रन्यासकी प्रतिज्ञा प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि चढावे ॥ १४६ ॥

उसके वाद "भाल" इत्यादि चार श्लोक बोलकर ओं ह्रीं अर्हं श्रींपूर्वक अकारादि वर्णोंको शरदऋतुके निर्मल चंद्रमाके समान चिंतवन करे तथा प्रतिष्ठेय प्रतिमामें हाथसे स्थापन करे। वह इसतरह है—"ओं" इत्यादिको ललाटमें दाहिनी वाईं तरफ स्थापन करे, इसीप्रकार 'इई' को नेत्रोंमें, उऊको कानोंमें, ऋॠ को नाकमें, ऌॡको गालोंपर, एऐ को दांतोंमें, ओ औ को कंधेके दोनों भागोंमें, अं को मस्तकमें, अःको जीभके अगाडीके भागपर, कवर्गको दाहिनी

स्वरान द्विशः पृथक्कद्वद्वाक्षोर्दक्षिणवामयोः। कचवर्गौ तथा कुक्ष्येष्टतवर्गौ पृथक् पफौ ॥ १४८ ॥
ऊर्वोर्व गुह्यके नाम्यां भं मं मांसलतापदे । देहे य मूर्ध्नि रं लं पृष्ठेधिसंधि वं ॥ १४९ ॥
शं जानुनोर्गुल्फयोः पं पादयोः सनिवेश्य हं। सर्वमाणपदे साक्षाज्जिनमेषोवतारये॥ १५० ॥

ओं ॡीं अर्हं श्रीं एतत्पूर्वकानकारादिवर्णान शरश्चद्रगौरान् यथोक्तस्थानेपु मनसा ध्यात्वा प्रतिष्ठेयप्रतिमासु करेण विन्यसेत् । तथाहि । ओं ह्रीं अर्हं श्रीं अ आ ललाटे दक्षिणतः प्रभृति न्यसेत्, ओं ह्रीं अर्हं श्रीं इई दक्षिणेतरनेत्रयो । एवं सर्वत्र । उऊ कर्णयोः ऋ ॠ नासापुटयोः, ऌ ॡ गंडयो., ए ऐ ऊर्ध्वाधो दंतपक्त्यो , ओ औ स्कधयो., अ मस्तके, अ जिह्वाग्रे, क ख ग घ ङ दक्षिणभुजे, च छ ज झ ञ वामभुजे, ट ठ ड ढ ण दक्षिणकुक्षौ, त थ द ध न वामकुक्षौ, प दक्षिणोरौ, फ वामोरौ, व गुह्ये, भ नाभिमंडले, म स्फिजो, य शरीरस्थाने उदरे, र ऊर्ध्वरोमाचे मस्तकादिकेशेष्वित्यर्थ , ल पृष्टे, व ग्रीवाकक्षादिसंधिपु, श जानुयुगे, प गुल्फमूलयो., स पदयो , ह सर्वप्राणस्थाने हृदये। इति मत्रन्यासविधानं । अथ प्रतिष्ठातिलकदान ।

भुजामें, चवर्गको वाई वाहमे, टवर्गको दाहिनी कूखमे, तवर्गको वाई कूखमें, प दाहिनी जांघमे, फ वांई जाघमे, व गुह्यस्थानमे 'भ नाभिस्थानमे, म चूतडोंमें, य उदरमे, र शिरके केशोंमे, ल पीठमें, व गले काख आदिकी सधिओंमें, श घुटनोंमें, प पैरोंमें; हकारको हृदयस्थानमें, स्थापन करे ॥ १४७ । १४८ । १४९ । १५०॥ यह मत्रन्यास विधि हुई । अब प्रति-

प्रीत्यै पिंगा प्रियंगूफलमचिरफलं मंगलार्थं दधि स्यात्
सिद्धार्था वांछितार्थान् ददाति सुमनस सौमनस्य महायुः ।
दूर्वा श्रीखंडलोहप्रभृतिसुरभितामृद्धिमृद्धिश्च वृद्धिं
वृद्धिः शैत्यं तुषारो क्षतविशदयशास्यक्षताश्चेत्यमीभिः ॥ १५१ ॥
शुच्या कौसुंभवस्त्राभरणघुसृणसन्माल्यभाजा चतुष्के
तिष्ठत्या भर्तृवस्त्रांचलयुतवसनप्रांतया यव्दपत्न्या ।
कोणोद्भासि प्रदीपामलजलपविताभ्यर्चितायां शिलायां
पिष्टैर्दत्वा गुडाद्यैस्तिलकयतु कृताव्हानादिर्जिनार्चाम् ॥ १५२ ॥
चत्वारि मंगलं स्वाहेत्यंतेन प्रणवादिना । प्रियगुः स्थापकैर्जप्त्वा धार्या हैमादिपात्रगा ॥१५३

तिलकद्रव्यसज्जीकरण । अत्र स्थापनानिक्षेपेण यमाश्रित्यावाहनादिमंत्रा कथ्यते तद्यथा । ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा एहि २ संवौषट् आवाहन, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा तिष्ठ २ ठ ठ स्थापन, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अत्र सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधीकरणं

ध्यातिलकदानकी विधि कहते हैं ॥ हरताल आदि तिलक द्रव्य सोनेके पात्रमें रखकर "सि-द्धार्था" इत्यादि तीन श्लोक तथा "ओं" इत्यादिसे आवाहनादि करके जिन प्रतिमामें तिलक लगावे अथवा उसके आगे तिलक द्रव्य चढावे ॥ १५१ ।१५२। १५३ ॥ इसप्रकार वह इंद्र

कृत्वैवं कर्म शक्रोर्चां पूरकेण जिनं स्मरन्। सुलग्ने रेचकेनातः प्रियां वा तत्पदं न्यसेत् ॥ १५४॥

तिलकमंत्रः । इति तिलकदानविधान । अथाधिवासनाविधान ।

गंधाक्षतस्रग्वस्त्रान्नयवालीकंकणेपुभिः । चरुधूपारातिकफलैर्विरूढकयवारकैः ॥ १५५ ॥

सवर्णपूरेक्षुवालिवार्तिभृंगारकैरिमैः । मंत्राभिमंत्रितैश्चित्तैः सार्धस्वस्त्ययनैः क्रमात् ॥ १५६ ॥

एप निष्पतिघो देष्यत्केवलज्ञाननिर्वृतिम् । प्रतिष्ठितमहार्चायां जिनेंद्रमधिवासये ॥ १५७ ॥

स्वासन्नीकृतचदनाद्यधिवासनद्रव्येपु पुष्पाक्षत प्रक्षिप्य तत्कालप्रतिष्ठिताहत्प्रातिमा नमस्कुर्यात् ।

कर्पूरगकल्वंग एला कररंवितं चंदनौघेः ।

दूरं स्फुरत्परिमलैर्जिनभर्तुराराात् विद्राणसौरभमदैरपि चर्चयेंघ्रीन् ॥ १५८ ॥

ॐ नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ गध २ गृहाण स्वाहा ।

पूरक प्राणायामसे जिनेन्द्र देवका स्मरण करता हुआ रेचक प्राणायामसे चरणकमलोंमें तिलकद्रव्य चढावे ॥ १५४ ॥ यह तिलकदान विधि हुई । अब अधिवासनाविधि कहते हैं– केवलज्ञान कल्याणसे प्रतिष्ठित हुई महान् अर्हत प्रतिमामें अर्हत्प्रभुको स्थापित करके चंदन अक्षत आदिसे पूजा करे ॥ १५५ । १५६ । १५७ ॥ वह पूजा इसप्रकारसे है–पहले आवाहनादि करके पुष्प अक्षत क्षेपण करे । फिर "कर्पूर" इत्यादि श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर चंदन चढावे ॥ १५८ ॥ " शुभत् " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर अक्षत

शुंभच्छारदपार्विकेंदुसुहृदामामोदनर्मोल्वण-
घ्राणमाणितचेतसां घुतटिनीतोयाभिषिक्तात्मनाम् ।
अच्छेदार्जितसाधुशीलयशसां शाल्यक्षतानां चयै-
राचारैरिव पंचभिः सुरचनैरर्हत्पदाब्जे यजे ॥ १५९ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ अक्षतानि गृहाण २ स्वाहा ।

सौरभ्यसांद्रमकरंदपरागजाती मंदारमल्लिकमलादिमयेन दाम्ना ।
कल्याणपंचकरुचिं शरपंचकेन प्रव्यजता जिनपते रचयामि पूजाम् ॥ १६० ॥

ओं नमोर्हते जय सर्वतो मेदिनीपुष्प वरपुष्पाणि गृहाण २ स्वाहा । पचशरमालारोपणम् ।

जल्पच्छुक्लतया परां विमलतां तात्कालिकीं लभ्यतां
नव्यत्वेन लसद्दशापरिचयेनोत्कर्षपर्याप्तता ।
माहार्घेण महर्घतां च परमध्यानस्य दुर्लक्ष्यतां
सूक्ष्मत्वेन ददे जिनस्य वदने वस्त्रं भनप्राप्तये ॥ १६१ ॥

चढावे ॥ १५९ ॥ "सौरम्य" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर पुष्प चढावे ॥ १६० ॥ "जल्प" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर वस्त्र और जौमाका सहित सात

भक्तर्द्धिंष्टद्धिकृदनुक्षणभाविशर्म सम्यक् फलामितगुणावलिमुद्गिरंत्या ।
रावर्द्धिष्टद्धियवमालिकयार्चितोर्हन् गां सप्तधान्यक्रमदोर्ठतु सप्तभगी ॥ १६२ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय समदनफल सर्वधान्ययुत मुखवस्त्रं ददामि स्वाहा । मुखवस्त्र-दानपूर्वक यवमालामारोप्य जिनस्य पादाग्रत सप्तधान्यान्युपहरेत् ।

मूत्रे रूप्यमयेथ पट्टरचिते प्रोतं विविक्तात्मचि–
दीप्यद्दर्शनबोधवृत्तकृदं रत्नत्रयं स्वात्म यत् ।
रागात् क्षिप्तवरस्रजः शिवरमासंगोत्सुकस्य प्रभोः
जीवनमुक्तिरमाविवाहविधये बध्नाम्यदः कंकणम् ॥ १६३ ॥

ओं " अट्ठविहकम्ममुत्तो तिलोयपुज्जो य संथुओ भयव । अमरणरणाहमहिओ अणाइणि हणो सिव दिसओ " स्वाहा । कंकणबंधनम् ।

पंचोन्मादनमोहने स्मृतिभुवः संतापनं शोपणं
बाणान् मारणमप्यपार्थितव्रत चत्वारि विघ्नच्छिदे ।

अनाजोंको भगवानके चरणकमलोंके आगे चढावे ॥ १६१ । १६२ ॥ "सूत्रे" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर कंकणबंधन करे ॥ १६३ ॥ 'पंचो' इत्यादि बोलकर धनुषका स्था-

शुक्लध्यानविकल्पना निवसनप्रांतिपुकांडान्यमू-
न्युद्यत्पंखमयूखते जिन फलान्यारोपयाम्यर्हतः ॥ १६४ ॥

काडस्थापनमंत्रः । —

माज्याज्यं परमान्नमुत्कटसितं पक्कान्नवर्गं वर-
भक्षानक्षसुखान् शशांककिरणभ्राष्टान् समं शालनैः ।
शाल्यन्नं सुरसैः सुगंधिविशदं पेयं पयःपूर्वकं
सान्नाय्यं कनकादिपात्रविततं श्रीरोचिभर्त्रे ददे ॥ १६५ ॥

ओं नमोऽर्हते सहभूतायानतसुखतृप्तायाग्रे चरु विस्तारयामि स्वाहा ।

धूपैर्यौगिकगंधसारविधिद्रव्यान्यायविभवत्
सौरभ्यातिशयैः शिखिव्यतिकराद्धूमायमानैर्मुहुः ।
सद्ध्यानानलदह्यमानतनुकैरिवाधिष्ठित-
क्रोडान साधुजनाशयान् प्रातिदिशं न्यस्यामि कुंभान् प्रभोः ॥ १६६ ॥

पन करे ॥ १६४ ॥ "प्राज्य" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर नैवेद्य (पक्कान्न) चढावे ॥ १६५ ॥ "धूपै" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठों दिशाओंमे आठ धूपदान रखे

वह्निवर्तिकास्थापनम् ।

सूत्रार्थैरिव निर्मलैर्मतिफलैराह्लादिभिः शीतलैः
पीयूषैरिव जीवनादिकगुणग्रामस्फुरद्गौरवैः ।
पूर्णं तीर्थजलैः सुपल्लवमुखं हैमं सदूर्वाक्षतं
दिव्यांगं दधतं न्यसामि धृतये भृंगारमग्रेऽर्हतः ॥ १७४ ॥

भृंगारस्थापनम् ।

एवं देवे विश्वदेवाप्तसेवे न्यस्तेऽर्चायां चारुवस्तूपचारैः ।
व्यक्तात्यंतोदात्तशक्त्यानुभावे प्रांशुकामानर्घमभ्युद्धरामः ॥ १७५ ॥

पूर्णार्घम् ।

आदिनाथोऽस्तु नः स्वस्ति स्वस्ति स्तादजितेश्वरः ।
शंभवो भवतु स्वस्ति भूयात्स्वस्त्यभिनंदनः ॥ १७६ ॥
अस्तु वः सुमतिः स्वस्ति पद्माभ स्वस्ति जायताम् ।
सुपार्श्वः स्वस्ति भवतात् स्वस्ति स्ताच्चंद्रलांछनः ॥ १७७ ॥

प्रकाशित करके चढावे ॥ १७३ ॥ "सूत्रार्थै" इत्यादि बोलकर जलसे भराहुआ सोनेका छोटा कलश चढावे ॥ १७४ ॥ "एवं देवे " इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १७५ ॥ "आदि-

सतां स्वस्त्यस्तु सुविधिर्भवतु स्वस्ति शीतलः ।
श्रेयान् संपदतां स्वस्ति स्वस्त्यस्तु वसुपूज्यजः ॥ १७८ ॥
राज्ञोस्तु विमलः स्वस्ति स्वस्ति भूयादनंतचित् ।
भूयाद्धर्मचितः स्वस्ति शांतीशः स्वस्ति जायताम् ॥ १७९ ॥
संघस्य कुंथुः स्वस्त्यस्तु भवतु स्वस्त्यरप्रभुः ।
स्वस्ति मल्लिजिनेंद्रोस्तु स्वस्त्यस्तु मुनिसुव्रतः ॥ १८० ॥
जगतोस्तु नमिः स्वस्ति स्वस्ति स्तान्नेमिनायकः ।
स्वस्ति पार्श्वजिनो भूयात् स्वस्ति सन्मतिरस्त्विति ॥ १८१ ॥
भरिमंश्चिमे स्वस्त्ययने भक्तिरागादघातिनाम् ।
स्वस्तिमंतः स्वयं शश्वत्संतु स्वस्त्ययनं जिनाः ॥ १८२ ॥
एतान् मंत्रान् पठित्वा पुष्पांजलिं क्षिपेत् । स्वस्त्ययनविधान ।

अथ केवलज्ञानकल्याणस्थापनम् ।

इत्यष्टगुणकृताभिमानविधेः समस्या निधायार्हतः
कोशे निरुपमार्थमर्थमुचितं पद्मा निधायार्पितं ।

१ इत्यादि सात श्लोक बोलकर पुष्पांजली क्षेपण करना ॥ १७६ से १८२ ॥ यह स्वस्ति-

स्वीकार्योपि शिवाय सद्‌वृतमिमे कुर्मोवतार्यार्तिकं
तस्योत्क्षिप्य च धूपमध्वमघहृत्तच्छ्रीमुखोद्‌घाटनम् ॥ १८३ ॥

ॐ उसहादिवड्ढमाणाणं पचमहाकल्लाणसंपण्णाणं महइ महावीरवड्ढमाणसामीण सिज्झउ मे महइ महाविज्जा अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं सयलकलाधराण सज्जोजादरूवाण चउतीसातिसयविसेससजुत्ताणं वत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहियाण सयललोयस्स सतिपुट्ठिकल्लाणाओ आरोगाकराण नलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजदिअणागारोवगूढाण उहयलोयसुहयफलयराण थुइसयसहस्सणिलयाण परापरपरमप्पाणं अणाइणिहणाण वलिवाहुवलिसाहिदाण वीरवीरे ओं हा क्षा सेणवीरे वड्ढमाणवीरे हंसं जयंतं धराइएवज्जसिथलममयाण ससदवमपइट्ठियाण उसहाइवीरमगलमहापुरिसाण णिच्चकालपइट्ठियाणं इत्थ सण्णिहिदा मे भवतु मे भवतु ठ ठ क्ष क्ष स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमन्त्र ।

येनोन्मील्य समस्तवस्तुविशदोद्भासोद्भटं केवल-
ज्ञानं नेत्रमदर्शिमुक्तिपदवी भव्यात्मनामन्यथा ।
तस्यात्रार्जुनभाजनार्पितसिता क्षीराज्यकर्पूरयुक्
वक्रस्वर्णशलाकया प्रतिकृतौ कुर्वे दृगुन्मीलनम् ॥ १८४ ॥

वाचन विधि हुई। अब केवलज्ञान कल्याणका स्थापन करते हैं–"इत्यञ्च" इत्यादि श्लोक तथा ओं उसहा " इत्यादि श्रीमुखोद्घाटन मंत्र बोलकर भगवानके मुखको उघाडे ॥ १८३ ॥ "येनो" इत्यादि तथा "ओं नमो" इत्यादि नेत्रोन्मीलनमंत्र बोलकर नेत्रोंको उघाडे ॥१८४॥

ओं नमो अरहताण अमियरसायणं विमलतेयाणं सति तुट्ठि पुट्ठि वरद सम्मादिट्ठीणं वृषभं अमयवरसण स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमत्र । अथ गुणाध्यारोपण ।

यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वान्यत्वयोर्दीपव—
भिर्त्तं द्योतकमर्हतः समुदभूत्ते हक् चिदो ये च यत् ।
तद्व्यापारनिर्बंधि वीर्यमपि यत्सौख्यं तदव्याकुली—
भावोऽनंतचतुष्टयं तदिह तद्बिंबे न्यसाम्यांतरम् ॥ १८५ ॥

अनतज्ञानादिचतुष्टयप्रतिष्ठार्थे प्रतिमोत्तमागे चतु पुष्पीमारोपयेत् ।

सौभिक्ष भवतिस्म योजनशत यत्संसदं सर्वतः
सार्धक्रोशयुगोज्झितक्षितितलं यन्ने स्पृहं सद्गतम् ।
यश्चष्टास्वसितांगसंगत्रशतोप्यमाणघातोंगिनां
या तावत्यपि विग्रहस्य कवलाहारं विनैव स्थितिः ॥ १८६ ॥
हुंडामप्यवसर्पिणीं प्रतिवदन् यो नोपसर्गोस्त्रव—
स्तैर्जोवैभवतश्चतुर्मुखतया वीक्ष्यैकमुख्योपि या ।

अव गुणोंकी आरोपणविधि कहते हैं—"यत्सामान्य" इत्यादि बोलकर अनतज्ञान आदि अनत चतुष्टयकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके मस्तकके ऊपर चार पुष्प चढावे ॥ १८५ ॥ "सो-

सा०
१३॥

विघ्नास्त्रप्यखिलासु यः परिहृढीभावो दृढः सर्वदा
यच्छायाविरहास्तिरश्चरदिनेऽप्यंगे क्षिपेयेपि च ॥ १८७ ॥
पक्षस्पंदविपर्ययोऽनिशमृत व्याधेः प्रयत्नाच्च यो
यो मूर्तेर्नखकेशवृद्धयुपरमो मर्त्यप्रकृत्यत्ययात् ।
ते घातिक्षयजा दशाप्यतिशया बाह्याश्च चेतश्चमत्–
कारोद्रेककृतो जिनस्य निहिता विंबे मयात्राधुना ॥ १८८ ॥

घातिक्षयजदशातिशयस्थापनार्थं पीठिकाया दश पुष्पाणि क्षिपेत् ।

धूलीशालोऽतः क्षितौ चैत्यगेहप्रासादाल्यो नाट्यशाला सरांसि ।
मानस्तंभाश्चाधिदिग्वीथ्यतोर्णः पूर्णं खेयं वेदिरम्यं विदिक्षु ॥ १८९ ॥
वेदीभूपा पुष्पवाट्यस्ततोंतो नाट्याशोकाद्याद्यभूर्हेमशाला ।
वेदीरुद्धावेत्वजोर्वीशतारप्राकारांतो नाट्यकल्पद्रुमोर्वी ॥ १९० ॥
वेदीद्धात. स्तूपदिग्पालयोर्वायत्पाद्युर्वीतः सनाद्यार्कशाला ।
तन्मध्येऽर्हंनांधकुट्यासने भात्यत्रास्थानीं तामिह स्थापयामि ॥ १९१ ॥

मिक्ष" इत्यादि तीन श्लोक बोलकर केवलज्ञानके समय होने वाले दस अतिशयोंके स्थापन करनेके दस फूलोंको वेदीपर चढावे १८६ । १८७ । १८८ ॥ "धूली" इत्यादि तीन

समवसरणस्थापनार्थं प्रतिमाया. समतात् पुष्पाक्षत क्षिपेत । इति समवसरणस्थापनम् ।

उपानीयं यतोदैवैर्देवदेवातिशायिनः । चतुर्दशाद्भुता भावाः स्थापयामीह तानपि ॥ १९२॥

ब्रुवतोर्द्धार्द्धसर्वांगि मागधोक्तिमयी प्रभोः । सभायामन्वकार्यंत मागधैर्वागिहास्तु सा॥१९३

जातिकारणवैरेकघस्मरेष्याश्रमे पुष्यन । यया प्रीतिकरा भर्तृभक्तान मैत्रीह भातु सा॥१९४

सर्वर्तुसंपद्भ्राजिष्णु द्रुमा रत्नमयी भुवत । या जिनाब्दतलासर्जि प्रभुभक्त्यास्तु सा प्रभुः १९५॥

यो विस्रसा विहरति प्रभौ मृद्धतिलोन्ववात् । यश्चाभूत्परमानंदः सर्वेषा तामिहापि तौ॥१९६॥

समार्जनं योजनं यद्वोर्जिनाग्रेनिलैः कृतम् । या गंधोदकवृष्टिश्च मेघैस्ते भवतामिह ॥१९७॥

यातं तं सर्वतः पद्माः पंक्तिद्वात्रिंशता ततः । सप्तसोधपदोश्चैको यत्तत्पद्मायन त्विदम् १९८

विभुवैभवनिध्यानद्रापिता पुलकानि च । फलभारानतव्रीहिव्याजाद्भूया सा त्विह ॥१९९ ॥

प्रभोर्दिशावसंहर्पाश्चनैर्मल्य दधुर्दिशः । तद्योगादिव यत्खं च प्रसन्नं तद्भवत्विह ॥ २०० ॥

वरमदं विभुभक्तुमेनैतेत्यभितो व्यधुः । यद्भावनाः समस्तान्यदेवाञ्जनं तदस्त्विह ॥ २०१ ॥

रत्नरुक् चक्रदीपारसहस्रेण रविं क्षिपन । धर्मचक्रं चचाराग्रे यत्प्रभोस्तत्स्फुरत्विदम्॥२०२॥

छत्रचामरभृंगारकुंभाब्दव्यजनध्वजान् । स्वसुप्रतिष्ठान् यानिंद्रो भर्तुस्तेनेत्र संतु तो ॥२०३॥

श्लोक बोलकर समवसरण स्थापन करनेके लिये प्रतिमाके चारोंतरफ पुष्प और अक्षत फेंके ॥ १८९ । १९० । १९१ ॥ " उपानीयं " इत्यादि बारह श्लोक बोलकर देवकृत अतिशयोंके स्थापन करनेकेलिये वेदीपर चौदह पुष्प चढावे ॥ १९२ से २०३ ॥

चतुर्दशदेवोपनीतातिशयस्थापनार्थं पीठिकाया चतुर्दश पुष्पाणि क्षिपेत् । इति दिव्यातिशय–स्थापनम् ।

स्पृश्याः स्पृशंतो नापज्ञिर्यन्नामापि तथापि तम् । येनेंद्रो यष्टभक्त्या तत् मातिहार्याष्टक त्विदम्॥

अष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनाय पीठिकायामष्टपुष्पीं क्षिपेत् ।

रत्नाशुवर्धेन्द्रधनुर्व्यातास्या हरिवाहनम् । यच्चक्रे धर्मैकात्मा सिंहपीठं तदस्त्वदः ॥२०५॥

ओं सिंहासनश्रियै स्वाहा । सिंहासने पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

भवाब्धभेद्यो मेघौघध्वनिजिद्योजन सद् । व्यामुवन् यो न केनापि व्यधाय्येष सतद्ध्वनिः ॥

ओं ध्वनिश्रियै स्वाहा । सरस्वत्या पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

यक्षैर्दोधूयमानार्हद्देहं छायाछलाश्रिता । या चामरचतुःषष्टिर्नोनटीतिस्म सास्त्वियम्॥२०७॥

ओं चतुःषष्टिचामरश्रियै स्वाहा । चामरधारियक्षयो. पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

चक्षुष्ये पश्यतां सप्त भासयत्यनिशं भवान् । भामंडले त्रुडन् यत्र विश्वतेजास्यदोस्तु तत् ॥

" स्पृश्या- " इत्यादि बोलकर आठ प्रातिहार्य स्थापन करनेकेलिये वेदीमें आठ पुष्प चढाये ॥ २०४ ॥ " रत्ना " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर सिंहासनके आगे पुष्प चढावे ॥ २०५ ॥ " भवाब्ध " इत्यादि तथा ' ओं " इत्यादि बोलकर सरस्वतीके आगे पुष्प चढावे ॥ २०६ ॥ " यक्षै " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर चमर धारण करनेवाले यक्षोंके आगे पुष्पाजलि चढावे ॥ २०७ ॥ " चक्षुष्ये " इत्यादि तथा " ओं " बोलकर मा-

ओं भामडलश्रियै स्वाहा । भामण्डले पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

रत्नरोचि नदद्भृंगखगोवातचलल्लतः । विश्वाशोकीकृते व्यक्तं योऽशोको नटदेष सः २०९

ओं रत्नाशोकाश्रियै स्वाहा । रक्ताशोके पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

मुक्तभारोहमालधि मुक्त्वा लंबूप लक्षण । छत्रत्रयं स्मावृत् श्रीनिधिं यत्र व्यात्यदोस्तु तत् ॥

ओं छत्रत्रयाश्रियै स्वाहा । छत्रत्रये पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

सभ्याः शृण्वंत्वसभ्योत्कीर्मितीवातीव योध्वनत् । सार्धद्वादशकोट्युग्रद्धादित्रोयं स दुंदुभिः ॥

ओं दुदुभिश्रियै स्वाहा । दुदुभौ पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

गंगाभिः सुभगे गुजद्भृंगौघा सुमनस्तमे । सुमनोभिः सुमनसां वृष्टिर्या सर्जे सास्त्वसौ २१२

ओं पुष्पवृष्टिश्रियै स्वाहा । मालाविद्याधरयो. पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

इत्यष्टौ प्रातिहार्याणि प्रतिमायां जिनेशिनः । स्थापितानि च निघ्नंतु भाक्तिकानां सदापदः ॥

मडलके आगे पुष्पाजलि चढावे ॥ २०८ " रत्न " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर लाल अशोकके आगे पुष्पाजलि क्षेपण करे ॥ २०९ ॥ " मुक्त " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर तीन छत्रोंकेलिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१० ॥ " सभ्या " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर दुंदुभिबाजेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २११ ॥ " गगाभ " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर पुष्पमाला धारण करनेवालोंके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१२ ॥ " इत्यष्टौ " इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे आठ पुष्पोंको चढावे ॥

प्रतिमाग्रेष्टपुष्पी क्षिपेत् । इत्यष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनम् ।

वंशे जगत्पूज्यतमे प्रतीतं पृथग्विध तीर्थकृतां यदत्र ।
तल्लांछनं संव्यवहारसिद्ध्यै बिंबे जिनस्येदमिहोल्लिखामि ॥ २१४ ॥

लाछने पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

शक्रेण सत्कृत्य सुभाक्तिकत्वात् त्रातुं नियुक्तो जिनशासनं यः ।
कामान दुहन्नीश जुषां यथास्व प्रतिष्ठितस्तिष्ठतु सैष यक्षः ॥ २१५ ॥

यक्षोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

तद्वत्स्वभूथेष्वतिवत्सलत्वान्निवारयंती दुरितानि नित्यम् ।
यथोचित शासनदेवतेति न्यस्तात्र यक्षी मतपत्यसद्मम् ॥ २१६ ॥

शासनदेवतोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

येनेह दर्शनविशुद्ध्यधिदैवतेन विश्वोपकाररासिकेन दिवीव गर्भम् ।
न्युप्ते प्रमोदरसवर्षणपर्वणैव सर्वाणि सैष निहताद् दुरितानि नोऽर्हन् ॥ २१७ ॥

॥ २१३ ॥ " वंशे " इत्यादि बोलकर चिन्हके आगे पुष्पाजलि क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ " शक्रेण " इत्यादि बोलकर यक्षके ऊपर पुष्पाजलि क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ " तद्वत् " इत्यादि बोलकर शासनदेवताके ऊपर पुष्पाजलि चढावे ॥ २१६ ॥ " येने " इत्यादि पांच श्लोक

आधीभिराधिभिरवाविपर्यीकृताया निर्गत्य मातुरुदराज्जनयन् मुदं यः ।
लोकोत्तराणि वुभुजेत्र सुखान्यजस्रं श्रेयांसि स जयतु न सदायम् ॥ २१८ ॥

समयाधिगमास्तमोहतंद्रे स्वयमुद्बुध्य झटित्यपास्तसगम् ।
प्रशमैकरसो चरत्तपो यः स जिनोयं हरतां भवज्वरं नः ॥ २१९ ॥

यः सम्यक्त्वरमावगाढदृगुपष्टंभात्सम वेदिता
द्रष्टा विश्वमुपेक्षिताप्तपरमानंदोध्यतिष्ठद्गिरम् ।
स्फूर्जत्तीर्थकरत्वनामसुकृतोद्रेकादनुमाणतीं
दिव्यां सभ्यसमीहितार्थकथनीं नस्तत् स्फुरत्वेप नः ॥ २२० ॥

योष्टादशशीलसहस्रसंयुक्तैश्चतुरशीतिगुणलक्षैः ।
परिणम्य कृत्स्नकर्मच्युतोष्ट भजते गुणान् सचेहास्ताम् ॥ २२१ ॥

एतत्पचक पठित्वा कल्याणपंचकस्थापनाभिव्यक्तये प्रतिमाया पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

इति सिद्धामरसाक्षाज्जीवन् मुक्तिश्रियं स्वसात्कृत्य ।
भजतो जगतो पत्युः ककणमिह मोक्षयाम्येपः ॥ २२२ ॥

बोलकर पाचकल्याणोंके प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके आगे पुष्पाजलि चढावे ॥ २१७ से २२१ ॥ “ इति ” इत्यादि श्लोक तथा “ ओं ” इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे पुष्प क्षेपण

पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथातो अभिषेकादिविधानान्यनुसूत्रयिष्यामः । तद्यथा-

आश्रुत्य स्नपनं विशोध्य तदिलां लब्ध्वां चतुःकुंभयुक्
कोणायां सकुशश्रियां जिनपतिं न्यस्तां तमाप्येष्टदिक् ।
नीराज्याम्बुरसाज्यदुग्धदधिभिः सिक्त्वा कृतोद्वर्तनं
सिक्तं कुंभजलैश्च गंधसलिलैः संपूज्य नुत्वा स्मरेत् ॥ १ ॥

इत्यभिषेकविधानं । अथ चलजिनेंद्रप्रतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रिया । तत्रेयं कृत्यप्रतिज्ञा । भगवन्नमोस्तु ते एषोऽहं चलजिनेन्द्रप्रतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रियां कुर्यामिति । शेषं समानम् । अथ चलजिनेंद्रप्रतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं इत्युच्चार्य सामायिकदंडकं चतुर्विंशतिस्तवं पठित्वा

अब अभिषेक आदिकी विधि कहते हैं । वह इसतरह है—वेदीके चारों कोनोंमें जलसे भरे हुए घड़े रखकर भूमिको पवित्रकर बीचमें सिंहासनपर जिन प्रतिमाको विराजमान कर पञ्चामृताभिषेक करें । उसके बाद उन जलपूर्ण घड़ोंसे अभिषेक करके पूजा करे ॥ यह अ-

सिद्धभक्तिं प्रयुजीत। एव चैत्यपचगुरुशातिसमाधिभक्तिरपि विदध्यात्। अथ स्थिरे त सिद्धभक्तिं कायोत्सर्गं करोम्यहमित्युच्चार्य सामायिकान्विधिं विधाय सिद्धचारित्रशांतिसमाधिभक्ती प्रयुजीत । अत्र केचिच्चारित्रभक्त्यनतर चैत्यपचगुरुभक्ती अपि प्रयुजते । इति क्रियाप्रयोगविधानं । " ओं जिनपूजामाहूता देवा· सर्वे विहितमहामहा स्वस्थान गच्छत २ ज ज " इति विसर्जनमत्रोच्चारणेन यागमडले पुष्पाजलिं वितीर्य देवान् विसर्जयेत् ।

इह वहिरवतारप्रत्ययेन बुधानां मखविधिपरिपाट्या भावशुद्धिं विधाय ।
वहिरिव रविविम्ब ध्वांतमध्यात्मस्थत्सु स्फुरत पुनरखंडं तत्परं ब्रह्म नोद्य ॥ २ ॥
अनेन परब्रह्माध्यात्ममध्यासयेत् । इति देवताविसर्जनाविधानम् ।

भिषेकविधि हुई ॥ १ ॥ जिनेन्द्रकी चल प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन स्नान क्रिया होती है। वहा ऐसी करनेकी प्रतिज्ञा होती है । हे भगवन् आपको नमस्कार है यह मै चल जिन प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन स्नपन क्रिया करता हू । अन्य सर्वविधि समान है। "चल" इत्यादि " करोम्यह " तक बोलकर सामायिक, चौवीसजिनस्तुति पढकर सिद्धभक्ति करे। इसीतरह चैत्यभक्ति, पचगुरुभक्ति, शाति समाधिभक्ति भी करे । और स्थिर प्रतिमामें "तं" इत्यादि " करोम्यह " तक बोलकर सामायकआदि विधि करके सिद्ध चारित्र शाति समाधिभक्तियोंको करे । यह क्रियाओंका प्रयोग कहा । " ओं " इत्यादि विसर्जनमत्र बोलकर पूजाके मांडलेपर पुष्पाजलि चढाकर देवोंका विसर्जन करे । " इह " इत्यादि श्लोक बोल-

शश्वच्चेतयते यदुत्सवमिमं ध्यायति यद्योगिनो
येन प्राणिति विश्वमिंद्रनिकरा यस्मै नमस्कुर्वते ।
वैचित्री जगतो यतोस्ति पदवी यस्यांतरप्रत्ययो
मुक्तिर्यत्र लयस्तनोतु जगतां शांतिं परं ब्रह्म तत् ॥ ३ ॥

अनेन जिनाग्रे शांतिधारा प्रकल्प्येत्थं बलिं दद्यात् । ओं अर्हद्भ्यो नम सिद्धेभ्यो नम सूरिभ्यो नम: पाठकेभ्यो नम सर्वसाधुभ्यो नम. । अतीतानागतवर्तमानत्रिकालगोचरानंतद्रव्यगुणपर्यायात्मकवस्तुपरिच्छेदकसम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानचारित्राद्यनेकगुणगणाधारपंचपरमेष्ठिभ्यो नम. । ओं पुण्याह २ प्रीयतां २ ऋषभादि महति महावीर वर्धमानपर्यंतपरमतीर्थंकरदेवान् तत्समयपालिन्योऽप्रतिहतचक्रचक्रेश्वरीप्रभृतिचतुर्विंशतिशासनदेवता गोमुखयक्षप्रभृतिचतुर्विंशतियक्षा आदित्यचंद्रमंगलबुधबृहस्पतिशुक्रशनिराहुकेतुप्रभृत्यष्टाशीतिग्रहा वासुकिशंखपालककर्कोटपद्मकुलिकानंततक्षकमहापद्मजयविजयनागा देवनागयक्षगंधर्वब्रह्मराक्षसभूतव्यंतरप्रभृतिभूताश्च सर्वेप्येते जिनशासनवत्सला

कर परब्रह्मका मनमें ध्यान करे ॥ २ ॥ यह देवताविसर्जनकी विधि हुई । "शश्व" इत्यादि बोलकर जिनदेवके आगे शांतिधारा छोडके इसप्रकार पूजन करे ॥ ३ ॥ "ओं अर्ह" इत्यादि बोलकर पुष्प क्षेपण करे । इसमें राजा प्रजा कुटुंब आदि सब जीवोंके कल्याण होनेका चिंतवन किया जाता है । इसीको पुण्याहवाचन भी कहते हैं "ये सामग्री" इत्यादिसे अंतमें

ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकायष्ट्याजकराजमंत्रिपुरोहितसामंतारक्षिकप्रभृतिसमस्तलोकसमूहस्य शांति-वृद्धिपुष्टितुष्टिक्षेमकल्याणस्वायुरारोग्यप्रदा भवतु । सर्वसौख्यप्रदाश्च संतु । देशे राष्ट्रे पुरे च सर्वदैव चौरारिमारीतिदुर्भिक्षावग्रहविघ्नौघदुष्टग्रहभूतशाकिनीप्रभृत्यशेषानिष्टानि प्रलय प्रयातु, राजा विजयी भवतु प्रजासौख्य भवतु, राजप्रभृतिसमस्तलोकाः सतत जिनधर्मवत्सला पूजादानव्रतशीलमहामहोत्सव-प्रभृतिषूद्यता भवतु, चिरकाल नदतु । यत्र स्थिता भव्यप्राणिन ससारसागर लीलयोत्तीर्यानुपमं सिद्धिसौख्यमनंतकालमनुभवति तच्चाशेषप्राणिगणशरणभूत जिनशासन नदत्विति स्वाहा ।

ये सामग्रीविशेषदृढिमभरहठात्क्षिप्तदुर्वारवैरि-
व्रातप्रेष्यत्पताकासततपरिचितज्ञानसाम्राज्यलीलाः ।
भूतार्थोच्छेदकंदव्यवहरणघटोच्छिद्यपृक्तौक्तियुक्ति-
क्षिप्तास्तं मन्यमाना जगदतिपुनते ते जिनाः पांतु विश्वम् ॥ ४ ॥
स्फूर्जच्छलस्युदर्चिर्भरमसितदशासाकृतैनःपतंगाः
स्वांगाकाराक्षरैकक्षणस्मरनिराकारसाकारचित्काः ।
व्योम्नो विश्वैकधाम्नः कृततिलकरुचः मष्टमात्मंभरीणां
व्यंजंतः स्वं सदान्यज्जिनसमयजुषाः संतु सिद्धाः शिवाय ॥ ५ ॥

कल्याण होनेका चिंतवन है ॥ ४ ॥ "स्फूर्ज" इत्यादि बोलकर सिद्धोंसे कल्याण प्रार्थना॥५॥

श्रुतधृतिवलसिद्धाः पंचधाचारमुच्चैः शिवसुखमनसो ये चारयंतश्चरंति ।
शमरसभरसंविद्भूरयः सूरयस्ते विदधतु जिनधर्माराधनाशिष्टसिद्धिम् ॥ ६ ॥

येऽगप्रविष्टवहिरंगजिनागमाब्धिपारगमा निरतिचारचारित्रसाराः ।
धर्मं यथावदनुशासति शिष्यवर्गान् पुष्णंतु पाठकनृपा जगता नमस्ते ॥ ७ ॥

बुद्ध्वा ध्यानात्परमपुरुषं तत्त्वतः श्रद्धधानाः ये विद्वांस स्वयमुपरतमत्यनीकमतापम् ।
एकीकुर्वंत्युदयदशयानदनिष्पीनचितास्ते भव्यानां दुरितमनिशं साधवः संहरंतु ॥ ८ ॥

ये मंगललोकोत्तमशरणात्मानं समृद्धमहिमानः ।
पातु जगत्यर्हत्सिद्धसाधुकेवल्युपज्ञधर्मास्ते ॥ ९ ॥

मूते भेदाभेदरत्नत्रयात्मानाद्यंताद्यतार्थोदितौ भुक्तिमुक्तौ ।
सोस्मिन् राजामात्यपौरादिलोकान् धर्मस्तन्वन् शर्म पायादपायात् ॥ १० ॥

"श्रुत" इत्यादि बोलकर आचार्यसे इष्टसिद्धिकी प्रार्थना ॥ ६ ॥ "येंग" इत्यादि बोलकर उपाध्यायोंसे प्रार्थना ॥ ७ ॥ "बुद्ध्वा" इत्यादि बोलकर साधुपरमेष्टीसे अभ्यर्थना ॥८॥ "ये मंगल" इत्यादि बोलकर अरहंत सिद्ध साधु धर्म-इन चार मंगल लोकोत्तम शरणसे अभ्यर्थना करे ॥ ९ ॥ "मूते" इत्यादि बोलकर धर्मसे अभ्यर्थना करे ॥ १० ॥ "यास्ती-

यास्तीर्थकृत्वपदतत्फलतन्निमित्तनित्यानुरक्तमतय प्रभुमाभजंति ।
ता रोहिणीप्रभृतयो दश षट् च विद्यादेव्यः सधर्मनिवहस्य दुहंतु कामान् ॥ ११ ॥

पुरैत्नौद्भूतिपूते निखकरचतुर्वणसर्वेमणूते
संभृताः क्षत्रवंशे नु परम परमब्रह्मालिप्सा प्रशस्याः ।
पूज्यंते स्वामिभक्त्या त्रिदशपरवृंदैर्गर्भजन्मोत्सवे याः
सद्भयो द्विर्द्वादशाः श प्रददतु मरुदेव्यादयास्ता जिनांवाः ॥ १२ ॥

लोके यथेष्टमणिमादिगुणाष्टकेन कीडंति ये प्रमुदितप्रमदासहायाः ।
ऐंद्रध्वजादिजिनयज्ञविधावतंद्रा द्वात्रिंशदादधतु ते सुकृतांशमिद्राः ॥ १३ ॥
ये गोमुखप्रमुखयक्षदृपा वृपादितीर्थकरक्रमसरोरुहचंचरीकाः ।
तद्ब्रह्मवर्चसमजस्रमुदग्रयति ते षट्चतुष्कमितयः सुरद ? भव्यान् ॥ १४ ॥
स्फुरत्प्रभावा जिनशासनं याः प्रभावयंत्यो विलसंति लोके ।
यक्ष्यश्चतुर्विंशतिरार्हतानां चक्रेश्वराद्या धुनतां रुजस्ताः ॥ १५ ॥

र्थ" इत्यादि बोलकर सोलह विद्यादेवीयोसे इष्टप्रार्थना करे ॥ ११ ॥ "पुरै" इत्यादि श्लोक बोलकर चौवीस जिनमाताओसे इष्ट वस्तुकी प्रार्थना करे ॥ १२ ॥ "लोके" इत्यादि बोलकर वत्तीस इन्द्रोंसे इष्टप्रार्थना करे ॥ १३ ॥ "ये गोमु" इत्यादि बोलकर चौवीस यक्षोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १४ "स्फुरत्प्र" इत्यादि बोलकर चक्रेश्वरी आदि चौवीस यक्षि-

भ्राजिष्णुशक्तिविभवा भवसिंधुसेतुसर्वज्ञशासनविभासनवद्धकक्षाः ।
याः पूजयंति विविधाद्भुतसिद्धिकामास्ताश्चाष्टविष्टपमवंतु जयादिदेव्यः ॥ १६ ॥
शक्रादेशात्तीर्थकृद्देवमातॄर्याः सेवंते स्वस्वयोग्यैर्नियोगैः ।
ताः सर्वज्ञाराधनातत्पराणां संत्वष्टपि श्रेयसे श्र्यादिदेव्यः ॥ १७ ॥

अन्येपि दौवारिकलोकपालग्रहोरगानाहृतयक्षमुख्याः ।

देवा यथास्वं प्रतिपत्तिदृष्टा निघ्नंतु विघ्नान् जिनभाक्तिकानाम् ॥ १८ ॥

तद्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः प्रदेशः संतन्यतां प्रतपतु प्रततं स काल ।
भावः स नंदतु सदा यदनुग्रहेण प्रस्तौति तत्त्वरुचिमाप्तगवी नरस्य ॥ १९ ॥
किं बहुना ।

शांतिः स तनुतां समस्तजगति संगत्वतां धार्मिकैः
श्रेयःश्री परिवर्द्धतां नयधुराधुर्यो धरित्रीपतिः ।

योंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १५ ॥ " भ्राजिष्णु " इत्यादि बोलकर जया आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १६ ॥ " शक्रा " इत्यादि बोलकर श्री आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १७ ॥ " अन्येपि " इत्यादि बोलकर इनके सिवाय अन्य देवताओंसे प्रार्थना ॥ १८॥ " तद्रव्य " इत्यादि बोलकर द्रव्य क्षेत्र काल भावोंके शुभ मिलनेकी प्रार्थना ॥ १९ ॥ बहुत कहनेसे क्या, सब जगतमें शांति रहे, धर्मात्माओंकी संगति मिले, कल्याण करनेवाली लक्ष्मी

सद्विचारसमुद्धिरंतु कवयो नामाप्यघः स्यात्तु मा
प्रार्थ्य वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ॥ २० ॥

एतेत्मार्थपरा शक्राः छत्रचामरशालिनीम् । भृंगारहस्ता मुक्तांबुधारापूतपुरो धराम् ॥२१॥
जिनार्चामनुयांतोग्रे प्रनृत्यत्ककशांगनाः । महान् तूर्यस्वनैर्भव्यजयकोलाहलोत्स्वनैः ॥ २२ ॥
पूरयंतो दिशः सप्तधान्यपुष्पाक्षतादिभिः । कल्पयंतो बलिं शाल्यै त्रिःपरीयुर्जिनालयम् २३

इति बलिविधानम् ।

अथाचार्योऽभिषेक्तव्यः फलपुष्पाक्षतद्युतः । जिनगंधांबुकुंभेन यष्ट्रे दद्यात्सदाशिषम् ॥२४॥

तद्यथा ।

आयुस्तन्वंतु तुष्टिं विदधतु विधुनंत्वापदो यंतु विघ्नान्
कुर्वंत्वारोग्यमुर्वीवलयाविलासितां कीर्तिवल्लीं सृजंतु ।

बढे, न्यायमार्गपर चलनेवाला राजा हो, कविजन उत्तम विचारसको प्रगट करें, पापका नाम भी न रहे, अन्य विशेष प्रार्थना क्या करें संसारमें एक मोक्षको दाता जैनधर्मकी ही जय हो ॥ २० ॥ आत्मकल्याण करनेमें लीन, छत्र चमर लिये हुए, स्वच्छ जलसे भरी झाड़ीको हाथमें लिए हुए, जिनमूर्तिके आगे नृत्य करते हुए इंद्र, सात तरहके धान्य पुष्प अक्षत आदि पूजा द्रव्यसे पूजा करते हुए जिनमंदिरकी तीन परिक्रमा दें ॥ २१।२२।२३ ॥ यह बलिविधान हुआ । उसके बाद प्रतिष्ठाचार्य गंधोदक अक्षत पुष्प फल दीप धूपसे प्रतिष्ठाविधि करनेवाले

धर्मं संवर्धयंतु श्रियमभिरमयंत्वर्पयंत्विष्टकामान्
कैवल्यश्रीकटाक्षानपि जिनचरणाः संजयंतु सदा वै ॥ २५ ॥
आज्ञैश्वर्यमकार्यकार्यविचयैः मंतानवृद्धिर्जयः
सौभाग्यं धनधान्यवृद्धिरभयं निःशेषशत्रुक्षयः ।
पांडित्यं कविता परार्थपरता कार्तज्ञमोजस्विता
मानित्व विनयो जयश्च भवतादर्हत्प्रसादेन वः ॥ २६ ॥
कांताः कांतिकलानुरागमधुराः पुण्यास्त्रिवर्गांकुरा
भृत्याः स्वाम्यनुरक्तिशक्तिरुचिरा श्च्योतन्मदाः कुंजराः ।
नाहास्तर्जितशक्रसूर्यतुरगाः शौर्योद्धताः पत्तयो
भूयासुर्भवतां जिनेंद्रचरणांभोजप्रसादात्सदा ॥ २७ ॥
गांभीर्यमौदार्यमजय्यमार्यशौर्यं सशौंडीर्यमवार्यवीर्यम् ।
धैर्यं त्रिपक्षार्जयमार्यभक्तिः सपद्यतां श्रीजिनपूजनाद्वः ॥ २८ ॥

वंशको आशीर्वाद दे ॥ २४ ॥ यह एसे है कि "आयु" इत्यादि ग्यारह आशीर्वाचक श्लोक पढकर यज्ञोके शिरपर अक्षत आदिका क्षेपण करे ॥ २५ से ३५ ॥ यह आशीर्वाद विधि हुई । उसके बाद यज्ञ "यज्ञोपवीतं" इत्यादि बोलकर जनेऊ आदिक यज्ञदीक्षाके

भवतु भवतामर्हद्भक्त्या सदा मुदितं मनो
ग्रहमुपचिता चौरौचित्यं मदासेन परस्परः ।
प्रणयिविवशैः स्वैसंवासौदयागयमीहितं
स्थितिरपि चित्ते मज्ञापराधपराहतिः ॥ २९ ॥

रकुसशुद्धिरतोन्यतोस्तु भवतामर्हत्प्रतिष्ठाविधे
जातु क्वापि कथंचिदीपदपि मा शील व्रतं म्लायतु ।
दूरादेव-शिरस्यधीरमरयो बध्नतु देवांजलिं
प्रेम्णा सद्गुणसंपदा च सुहृदः श्लिष्यंतु पुष्णंतु च ॥ ३० ॥

यष्टुणा याजकाना प्रातिनुतिकृतामभ्यनुज्ञायकानां
भूयस्यांतःपुरस्य क्षितिपतनुभुवां मंत्रिसेनापतीनाम् ।
सामंतानां पुरोधः पुरविषयवनादिस्थवर्णाश्रमाणां
सर्वेषामस्तु शांत्यै सततमयमिह स्थापितो विश्वनाथः ॥ ३१ ॥

विचित्रैः स्वैर्द्रव्यं प्रतिसमयमुद्यद्विपदपि
स्वरूपादुल्लोकैर्जलमिव मनागप्यविचलम् ।

जिन्होंको गुरु (आचार्य) के चरण कमलोंके आगे रखकर नमस्कार करे । यह यज्ञदीक्षा

अनेहो माहात्म्याद्दितनवनवीभावमखिलं
मणिण्वाणाः स्पष्टं युगपदिह ते पांतु जिनपाः ॥ ३२ ॥

सभुज्यार्थिभिः सविभज्य च यथाविष्ट्येत्रमेवाथवा
निर्विण्णास्तृणवद्विसृज्य कमलां स्वं स्वं स्वयं केऽपि ये ।
संवेश्यामलकेवलानलचिदानंदे सदैवासते
ते सिद्धाः प्रथयंतु वः प्रति शिवश्रीसद्विलासान् सदा ॥ ३३ ॥

मत्वा श्रद्धाय तत्त्वं भजति समरसास्वादमानान्यनीहा-
वृत्त्या प्राणानुसर्पन्मरुदनु च क्रचानष्टमे ब्रह्मरंध्रे ।
भुवयत्यत्राय मोहं प्रतिमयति मनः केवलं चापि माया-
च्छन्यध्यानेन येषां प्रपदभरामिमे योगिनस्तन्वतां वः ॥ ३४ ॥

नार्पत्यान् निस्मयार्ताहितपतनरुजो दत्तशंपान्वितन्वन्
निःश्रेणीकृत्य भोगं ग्लपितपृथुतनूल्पपार्दाहिताधि ।
श्रीकुंडद्रागगृह्यावनितरुशिखरा शैवतीर्णः स्वर्ण-
न्यासंगं संगपस्य व्यथितनुपदाः वीरनाथः स वोऽव्यात् ॥ ३५ ॥

विसर्जनकी विधि मूल ॥ ३६ ॥ उसके बाद गुरुकी आज्ञासे शांति पाठ करके कार्यको

एता आशिष पठित्वा यष्टुः शिरस्यक्षतान् क्षिपेत् । इत्याशीर्वादविधानम् ।

यज्ञोचितं व्रतविशेषपट्टतो प्रतिष्ठन् यष्टा मर्तीद्रसहितः स्वयमे पुरा भत् ।
एतानि तानि भगवज्जिनयज्ञदीक्षाचिन्हान्यथैष विसृजामि गुरोः पदाग्रे ॥ ३६ ॥

एतत्पठित्वा यज्ञोपवीतादियज्ञदीक्षाचिन्हानि गुरुपादमूले सन्यस्य नमस्येत् । इति यज्ञदीक्षा विसर्जनम् । ततो गुर्वनुज्ञया शातिभक्त्या निष्ठापयेत् । अथ जिनप्रतिष्ठानिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शातिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं । शेष पूर्ववत् । ततश्चैशान्यादिशमष्टदलकमलमालिख्य चैत्याभिमुखमेतत्पठित्वा पचाग प्रणामादिक्पालेभ्यो निजनिजमन्त्रपूतयज्ञागशेषेण सर्वश पूजा दत्वा जिनगंधोदकतीर्थोदककलशैः सर्वशातयेम्य' सम्प्लावयेत् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाथ शास्त्रोक्तं न कृतं मया तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनप्रभोः ॥ ३७॥

ततश्च क्षमापणविधिमिममनुतिष्ठेत् ।

समाप्त करे । वह ऐसे है कि–" अथ जिन " इत्यादि " करोम्यहं " तक बोलकर समाप्ति विधि करे । उसके बाद समाधि भक्ति करे । उसके बाद ईशानदिशामें आठ पत्रोंवाला कमल बनाकर प्रतिमाके सामने " ज्ञानतो " इत्यादि श्लोक पढकर पचाग प्रणाम करे । फिर पूजाकी बची हुई सामग्री सबको चढानेकेलिये देकर कलशोंसे जलधारा सब विघ्नोंकी शांतिके लिये चढावे । " ज्ञानतो " इत्यादिका अर्थ–हे जिनेंद्र मैंने जानकर अथवा अज्ञानसे शास्त्रकथितरीतिसे जो क्रिया नहीं की है वह सब आपके प्रसादसे समाप्त ही हो

चतुर्विधमहासंघं मंतर्प्याहारभेषजैः । योग्योपकरणं दत्वा यष्टा संपूजयेत्स्वयम् ॥ ३८ ॥
अत्र ये द्रष्टुमायाता प्रतिष्ठाव्यापृताश्च ये । तांबूलगंधपुष्पाद्यैस्तान् संमान्य विसर्जयेत् ॥ ३९ ॥
प्रतिष्ठाचार्यमानम्य तस्यात्मानं समर्प्य च । वस्त्रैराभरणाद्यैश्च संपूज्य क्षमयेत्ततः ॥ ४० ॥
संमान्य सूत्रधारादीन् स्वर्णवस्त्राश्वभूषणैः । गांधर्वनर्तकादींश्च यथार्हं तत्समर्पयेत् ॥ ४१ ॥
सार्वकालिकपूजार्थं भूसुवर्णार्पणादिकम् । वित्तानुसारतो दद्यात्पूजोपकरणानि च ॥ ४२ ॥

इति क्षमापना ।

॥३८॥ उसके बाद क्षमा करानेकी विधि करे । वह इस तरह है–प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान जिनकल्याणक महोत्सवके बाद आहार औषध दानसे मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका–इन चारों संघोंको संतुष्ट करके और उनके योग्य धर्मसाधनके उपकरण (शास्त्र वगैर) देकर आप उनकी पूजा करे ॥ ३८ ॥ उसके बाद जो प्रतिष्ठा देखनेकेलिये आये हों अथवा प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करानेके अभिप्रायसे आये हों उन सबको पान सुपारी फूलोंकी माला आदिसे सत्कार करके जानेको कहे ॥ ३९ ॥ उसके बाद प्रतिष्ठाचार्यको नमस्कार कर उसको कुछ भेट देकर कपड़े और आभूषण आदिसे सन्मानकर क्षमा करावे ॥ ४० ॥ प्रतिष्ठाके सूत्रधारक तथा गंधर्व व नृत्यकरनेवालोंको वस्त्र अश्व आभूषण और कुछ धन योग्यताके अनुसार दे ॥ ४१॥ उसके बाद जिनप्रतिमाकी हमेशा पूजा होनेके लिये जमीन रुपया या कुछ जायदाद आमद-नीके अनुसार दे कि जिससे मंदिर पूजा हमेशा होती रहे और पूजाके उपकरण (वर्तन आदिक)

इत्यर्हत्प्रतिमान्यासविधिर्व्यासेन वर्णितः । तादृक्सामग्र्यभावेसौ मध्यवृत्त्यापि कल्पितः ४३

तद्यथा ।

कृत्वा पुराकर्म कृतमंडपादिप्रतिष्ठितिः । मंत्रैरेवार्चयित्वा च मंडलान्यखिलान्यपि ॥ ४४ ॥
प्रतिष्ठेयां निरूप्यार्चां प्रयुक्तसकलक्रियः । संस्कृत्याकरशुद्ध्याथ वेदीपीठे निवेशयेत् ॥४५॥
कृत्वा कल्याणसंस्कारमालामंत्रादिरोहणम् । दत्वा तिलकमंत्राधिवासना संप्रकाशने ॥४६॥
सन्नेत्रोन्मीलने कृत्वा कृत्वा चाभिषवादिकम् । संक्षेपेणाथ शक्तिश्चेद्द्युभक्तः स्थापयेत्प्रभुम् ४७
तत्रैकमेव सज्ज्ञायाद्यर्चयेद्यागमंडलम् । द्वास्थानंतरमत्रैव यजेच्च श्र्यादिदेवताः ॥ ४८ ॥

वनवाके दे ॥ ४२ ॥ वह क्षमावनीकी विधि समाप्त हुई ॥ इसप्रकार अर्हंतकी प्रतिमाकी स्थापना विधि विस्तारसें वर्णन की गई है । यदि उतनी सामग्री न हो तो मध्यमरीतिसे भी स्थापना होसकती है ॥४३॥ वह इसतरह है । मंडपादि वनवाकर मंडलादिकी रचना कर उन सबको केवल मंत्रोंसे ही पूजकर प्रतिष्ठा होनेवाली जिन प्रतिमाको आकर शुद्धि आदि कही गई विधिसे संस्कारित करके वेदीके सिंहासन पर विराजमान करे ॥ ४४ । ४५ । ४६ ॥ फिर पांच कल्याण संस्कारमालारोपण तिलक अभिषेकादि करे ॥ यह मध्यमरीति है । जिस-की थोडी शक्ति हो वह दो वार भोजनकी प्रतिज्ञा कर प्रभुकी स्थापना करे ॥ ४७ ॥ उस के वाद एक यागमंडलकी पूजा करे फिर द्वारपाल और श्री आदि देवताओंकी पूजा करके मंडपके वाहर शुद्ध स्थानमें ऊंचे आसनपर मूर्तिको विराजमान करके अभिषेक करे ।

ततो मंडपगर्भकोदेशेर्चाया सुसंस्कृते । कुर्यादाकरशुद्धिं तां शेषं मध्यवदाचरेत ॥ ४९ ॥

इति मध्यमसंक्षिप्तप्रतिष्ठानुष्ठानविधानम् ।

प्रासादस्य ध्वज चिन्ह तेनासौ शोभते यतः । शुभदश्च सर्वेषां तस्मात्तमधिरोपयेत् ॥ ५० ॥
हस्तत्रिभागविस्तीर्णैरर्धहस्तायतैर्दृढैः । वस्त्रोत्तमसुसंश्लिष्टैर्ध्वजं निर्मापयेच्छुभम् ॥ ५१ ॥
सितं रक्त सित पीतं सितं कृष्णं पुनः पुनः । यावत्प्रासाददीर्घत्व तावत्संघट्टयेत् क्रमात ५२
त्रार्धचंद्रमुक्तास्रक्किंकिणीतारकादिभिः । नाना सद्रूपयुग्मैश्च चित्रैः पत्रैर्विचित्रयेत् ॥ ५३॥
अधश्छत्रत्रयं मूर्धस्तस्याधः पद्मवाहनम् । तस्याधः कलश पूर्णं पार्श्वयोः स्वस्तिकं लिखेत् ५४
दीपदंडौ लिखेत्स्वस्ति शिखायाः पार्श्वयोस्तथा । पार्श्वयोरातपत्रस्य श्वेतचामरयुग्मकम् ॥५५॥

और बाकी क्रियाओंको अर्थात् क्षमावनी आदिको पूर्वकथित रीतिसे करे ॥ ४८ । ४९ ॥ यह मध्यम और सक्षेपरीतिसे प्रतिष्ठाकी विधि कही गई है ॥ उसके बाद जिन मन्दिरके शिखरपर धुजाको चढावे उससे मंदिरकी शोभा होती है और सबको कल्याण होता है ॥ ५० ॥ बारह अंगुल लंबी और आठ अंगुल चौडी मजबूत उत्तम कप-ड़की धुजा बनवावे ॥ ५१ ॥ धुजाका कपड़ा सफेद लाल सफेद पीला सफेद काला फिर इसी क्रमसे रंगवाला तयार करावे ॥ ५२ ॥ धुजामें चन्द्रमा माला घंटरियां तारे इत्यादि अनेक चिन्ह बनाके चित्रित करे ॥ ५३ ॥ कलश सातिया दीपदंड छत्र चमर धर्मचक्र लगाकर धुजाके ऊपर जिनचिन्हका आकार बनावे। उसमें एक छत्र लगावे। उस धुजामें

मूर्धाधो धवलच्छत्रे ध्वजे वा यक्षमालिखेत् । श्याम चतुर्भुजं हस्तयुग्मेन रचितांजलिम् ५६
पराभ्यां दधतं मूर्ध्नि धर्मचक्रमृजुस्थितम् । जिनबिंबोर्ध्वमूर्धाने ह्येकछत्रसमान्वितम् ॥ ५७ ॥
दीपदंडादिसंयुक्तं नानालंकरणान्वितम् । हस्तिपृष्टसमारूढं सर्वज्ञाख्यममुं लिखेत् ॥ ५८ ॥
अशोकासननिर्यासचंपकाम्रकदंबकाः । पूगवंशादयोन्येपि दंडस्य भवभूरुहाः ॥ ५९ ॥
सादायायाममानार्धं त्रिभाग वा चतुर्थकम् । ध्वजदंडस्य मानं तद्यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥६०॥
प्रासादस्योर्ध्वतुर्यांशे वेदिका वेदिकस्थितम् । आधारं घनदंडस्य यथोक्तं परिकल्पयेत्॥६१॥
अथ मंडलमभ्यर्च्य संक्षेपाद् ध्वजदेवता । प्रतिमाप्यानादिसिद्धमंत्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६२ ॥
स्वधिवास्य ध्वजं स्तुत्वा तन्मंत्रेण घृतादिभिः । अशोकाश्वत्थवत्राद्यदर्भमालाभिवेष्टितम् ६३
ध्वजदडं समभ्यर्च्य ध्यात्वा रत्नत्रयात्मकम् ।तच्चूलिकां तथैवाभिषिच्य धीशक्तिरूपिणीं६४
सचिंत्य मंडपपुरो गर्ते शाल्यादिपूरिते । पूजिते दधिदूर्वाद्यैस्तदूर्ध्वं स्थापयेद् दृढम् ॥ ६५॥

अशोक चपा आम कदब सुपारी वंश आदिके वृक्ष चिन्हित करे ॥ ५४ से ५९ ॥ धजाके दडेका प्रमाण शोभाके अनुसार होना चाहिये ॥ ६० वह प्रमाण मंदिरकी ऊचाईसे चौथाई हो तो अच्छा है । और वेदीके ऊपर भी धुजा चढाना चाहिये ॥ ६१ ॥ उसके बाद धुजाके मडल और प्रतिमाकी स्तुतिकरके अनादिमत्र (णमोकार मत्र)को एकसौ आठवार जपकर धुजाको दडमें लगाके " ओं नमो " इत्यादि ध्वजारोपणमत्रको बोल शुभ लग्नमें शिखरमें

ध्वजश्च तुर्यसर्पेषु तत्र संयोज्य संध्वजम् । ध्यात्वा सर्वगतज्ञानरूपमर्घेण मानयेत् ॥ ६६ ॥
तस्त दंडमुद्धृत्य प्रासादं परितःश्रिया । महत्या भ्रमयित्वा त्रिः सुलग्न मंत्रमुच्चरन ॥ ६७॥

ओं नमो अरहंताणं स्वस्ति भद्र भवतु सर्वलोकस्य शांतिर्भवतु स्वाहा । ध्वजारोपणमंत्र ॥

हिरण्यपयसाकर्णि तस्याधारे समर्प्य च । प्रतिपर्व ध्वज मुंचेत् तैर्मंत्राभिमंत्रितैः ॥ ६८ ॥
प्रासाद सप्तधान्यौघविरूढकफलोत्करैः । स्नपयित्वार्चितं नव्यैः सद्रूपैः परिधापयेत् ॥६९
यावंतः प्राणिनः केतौ लग्नाः कुर्युः प्रदक्षिणाम् । तावतः प्राप्नुवत्यत्र क्रमेण विमलं पदम् ७०
मुक्ते प्राचीं गते केतौ सर्वकामानवाप्नुयात् । उत्तराशां गते तस्मिन् स्वस्थारोग्यं च संपदः७१
यदि पश्चिमतो याति वायव्ये वा दिशाश्रये । ऐशाने वा ततो वृष्टि कुर्यात्केतुः शुभानि सा ७२
अन्यस्मिन् दिग्विभागे तु गते केतौ मरुद्वशात् । शांतिक तत्र कर्तव्य दानपूजाविधानतः७३

बांधे ॥ ६२ से ६७ ॥ उस धुजामें यक्षकी मूर्ति बनाके उसका फलआदिसे सत्कार करे। फिर धुजाकी परिक्रमा दे। धुजाके कार्य करनेमें जितने प्राणी सहायता करते हैं वे सब परंपरासे निर्दोष पदवीको पाते हैं ॥ ६८ । ६९ । ७० ॥ धुजा छोडने पर पूर्व दिशाकी तरफ जावे तो यह धुजा सब इष्ट कार्योंको सिद्ध करती है ॥ ७१ ॥ पश्चिमदिशामें, तथा वायव्य व ईशानदिशामें फहरानेसे वह धुजा कल्याण करने वाली होती है ॥ ७२ ॥ अथवा हवाके निमित्तसे अन्य बची हुई दिशाओंमें लहरानेसे दान पूजा विधिसे शांति कर्म करना चा-

कलशादुच्छ्रिते हस्तं ध्वजे नीरोगता भवेत् । द्विहस्तमुच्छ्रिते तस्मात्पुत्रर्द्धिर्जायते परा ॥ ७४॥
त्रिहस्तं सस्यसंपत्तिर्नृपवृद्धिश्चतुःकरम् । पचहस्तं सुभिक्षं स्याद्राष्ट्रवृद्धिश्च जायते ॥ ७५ ॥
अंबरेण कृतो यः स्याद् ध्वजः सम्यक् समंततः । सोतिलक्ष्मीप्रदो राज्ये यशःकीर्तिमतापदः
भूपालबालगोपालकलनानां समृद्धिकृत् । राज्ञां सुखार्थदायी च धान्यैश्वर्यजयावहः ॥ ७६ ॥

अत्र विधिपूजितस्य यागमडलस्याग्रतो वेदिकातले पूर्वस्या दिशि ध्वजमवस्थाप्य तद्देवतामित्थ प्रतिष्ठयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्न यक्ष एहि २ संवौषट् । अनेन पुष्पांजलिं क्षिप्त्वा आवाहयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्नयक्ष अत्र तिष्ठ २ ठ ठ । अनेन तद्वत्स्थापयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्नयक्ष अत्र सन्निहितो भव भव वषट् । अनेन तद्वत्संनिधापयेत् । तत सर्वौषधिविमिश्रतीर्थोदकपूर्णान् कलशान् पुर संस्थाप्यामृतादि-मंत्रेण तज्जलमभिमंत्र्य ध्वजालिखितयथाभिमुख पर्णे स्थापयित्वा गधाक्षतपुष्पादीन् मगलोपकरणानि चाग्रे व्यवस्थाप्य ओं ह्रीं सर्वाह्नयक्ष इद स्नपनमर्चनं च गृहाण । ओं स्वस्ति भद्र भवतु स्वाहेति

हिये ॥ ७३ ॥ मंदिरकी शिखरके कलशोंसे एक हाथ ऊंची धुजा आरोग्यताको करती है, दो हाथ ऊंची पुत्रादि संपत्तिको, तीन हाथ ऊंची धान्यसपत्तिको चार हाथ ऊंची राजा-की वृद्धि, पांच हाथ ऊंची सुभिक्षको तथा राज्यवृद्धिको करती है ॥ ७४ । ७५ ॥ अब रखकी बनाई धुजा अत्यंत लक्ष्मीकी देनेवाली तथा राज्यमे यशको फैलानेवाली होती है और राजा प्रजा सबको सुखदाई है ॥ ७६ । ७७ ॥ यहापर विधिसे पूजित यागमंडलके आगे

मन्त्रमुच्चार्य त दर्पणप्रतिबिम्बितयक्ष तज्जलैरभिषिच्य गंधादिभिश्चार्चयित्वा मुखवस्त्रं दत्त्वा नयनोन्मीलनं सुमुहूर्ते कुर्यात् । इति ध्वजदेवताप्रतिष्ठाविधानम् ।

एवं कृत्वा ध्वजारोहं पुण्यं प्राप्याद्भुतं कृती । भुक्त्वा तथादिसुभगः श्रेयोनिर्वृतिमश्नुते ॥७८॥

इति ध्वजारोपणविधानम् ।

प्रासादप्रतिमे अनेन विधिना ये कारयित्वार्हता
भक्त्यानिह्नुतशक्तयो विदधते नित्याभिषेकादिकान् ।

वेदीके नीचे पूर्व दिशामें धुजाको रख उसमें चिन्हित यक्ष देवको इसप्रकार प्रतिष्ठित करे। "ओं" इत्यादि बोलकर आवाहन स्थापन सन्निधीकरण करे । उसके बाद सर्वौषधीसे मिलेहुए जलके भरे कलशोंको आगे रख अमृतादि पूर्व कथितमन्त्रसे उस जलको मंत्रितकर धुजाके आगे रक्खे हुए पत्तेको रख चंदन अक्षत पुष्पोंसे "ओं ह्रीं" इत्यादि मन्त्र बोलता हुआ दर्पणमें स्थित यक्षके आकारकी पूजा शुभ मुहूर्तमें करे । यह धुजाकी प्रतिष्ठाविधि कही गई है ॥ इस रीतिसे धुजारोहण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष महान पुण्यका उपार्जन करके तथा पुण्यफल भोगके मोक्षसुखको पाता है ॥ ७८ ॥ यह धुजा चढानेकी विधि पूर्ण हुई । मोक्षके इच्छुक जो भव्यजीव अर्हंत जिनका मन्दिर और प्रतिमाको तयार कराके अपनी

पूजाज्ञा विभवाधिपत्यमहिमोदग्राः शिवाशाधरा–
स्ते भुक्त्वा पदवीर्भजति परमानंदैकसांद्रं पदम् ॥ ७९ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि अभिषेकादिविधानीयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शक्तिको न छिपाकर भक्तिसहित प्रतिदिन अभिषेक पूजा करते हैं वे उत्तम भोगोंको भोगकर परमानंद स्वरूप मोक्ष पदको पाते हैं ॥ ७९ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें अभिषेकादि
विधिको कहनेवाला पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

विन्यस्यानाहतेते शिरसि विरहितं चांतरालेषु चार्थं
पंचानां सतायनां वलयतु कुशलः कोंरुधामा ययात्रिः ॥ ११ ॥
पत्रांतर्मंत्रपूर्वजिनावितनुचतुस्तीर्थसमेधचक्र—
पाद्रू वाक्यैर्ण...ततनुमयानाहतग्रंथनाद्यैः ।
स्वस्वस्थानास्थिताशेषमुपरि दधतं सप्तकं वारकं वा
स्वर्णां ब्रह्माण च स नग्रहमवनिष्टतं सत् करि रं करोति ॥ १२ ॥

इति वृहत्सिद्धचक्रोद्धरणम् ।

सामी सार्धदुशीर्ष अ . . .. ।
पेतोग्रसारं विनयमुखगुरुदिष्टवर्णाविशिष्टं
मंत्रेद्धां सिद्धचक्रं विदधतु सुधियोध्यात्ममध्यात्मवृद्धाम् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा इद वारि गधं . . . ।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सबिंदु सपर ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितम् ।

यह वृहत्सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । " सामी " इत्यादि श्लोकमें कथित रीतिसे लघु सिद्ध-
चक्र बनाके " ओं " इत्यादि बोलकर जलादि चढावे ॥ १३ ॥ " ऊर्ध्वाधो " इत्यादिमें

अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुत ह्रींकारसंवेष्टितं

देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ १४ ॥

इति लघुसिद्धचक्रोद्धरणं । अत्रायं मंत्र. । ओं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं अर्हं स्वाहा । शेष पूर्ववत् ।

ततोभिषिच्य तीर्थांभःकुंभैःप्रागुक्तकल्पनैः । गुणैरिवार्चामष्टाभिः सिद्धस्तोत्रं पुरो हितम् ॥ १५ ॥
पठित्वा तद्गुणारोपप्रभृत्यापाद्य तां स्मरन् । साक्षात्सिद्धं तिलकयेच्चंदनेन सहेंदुना ॥ १६ ॥

आकारशुद्धिं कृत्वा यस्यानुग्रहेत्यादि सिद्धस्तोत्रमधीत्य प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । तत –

आकारैर्वियुत युतं च युगपन्निध्यातृबोद्धृस्फुटं

विश्वं स्वाभिनिवेशसौम्यमसमानंदैकसंवेदनं ।

स्वस्वादक्षसमक्षपाक्षयतमस्थामावगाहोत्तमं

भात्वत्रागुरुलघ्वनंतगुणमप्यष्टात्मसिद्धं वपुः ॥ १७ ॥

कहे गये सिद्धचक्रका उद्धार करके " ओं " इत्यादि मंत्रका जाप करे ॥ १४ ॥ यह लघु-सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । शेष विधि पहलेकी तरह करें । फिर सिद्ध प्रतिमाका जलसे भरे हुए घड़ोंसे अभिषेक कर आठ गुणोंको स्मरण करता हुआ तिलक विधि करे ॥ १५।१६ ॥ आकारशुद्धि करके " यस्यानुग्रह " इत्यादि पूर्व कथित सिद्ध स्तोत्रका पाठ करके प्रति-

एतत्पठन्नर्चा समन्तात् परामृशेत् । गुणारोपणम् । ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः अत्रागच्छ । ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ स्वाहा । ओं ह्रीं मम सन्निहितो भव २ वषट् स्वाहा । आह्वानादिमन्त्र । अ सि आ उ सा सिद्धाधिपतये नमः । तिलकमन्त्र ।

ततश्च मुखवस्त्रादिविधानं कृत्वा यदेन् क्रियाम् । सिद्धभक्त्यैवमाचार्याद्यर्चान्यासेऽपि कल्पयेत्॥

ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रं ददामीति स्वाहा । मुखवस्त्रमन्त्र । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रमपनयामीति स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये प्रबुध्यस्व २ ध्यातृजनमनांसि पुनीहि पुनीहीति स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमन्त्र । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतिं तीर्थोदकेनाभिषिञ्चामीति स्वाहा । तीर्थोदकस्नपनम् । ओं ह्रीं पुण्ड्रेक्षुप्रमुखरसैरभिषिञ्चामीति स्वाहा । रसस्नपन । ओं ह्रीं हैयङ्गवीनघृतेन स्नपयामीति स्वाहा । घृतस्नपनम् । ओं ह्रीं धारोष्णगव्यक्षीरपूरेणाभिषुणोमीति स्वाहा । दुग्धस्नपन । ओं ह्रीं जगन्मङ्गलेन दध्ना स्नपयामीति स्वाहा । दधिस्नपन । ओं ह्रीं दिव्यप्रभूतसुरभिकषायद्रव्यकल्कचूर्णैरुपस्करोमीति स्वाहा । उद्वर्तनादिविधानम् । ओं ह्रीं विचित्रपवित्रमनोरमफलैर-

---

माके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे । उसके बाद "आकारे" इत्यादि बोलकर प्रतिमाको चारोंतरफसे स्पर्श करे ॥ १७ ॥ "ओं ह्रीं" इत्यादि मंत्रसे आवाहनादि करे "असि" इत्यादि तिलकमंत्रसे तिलकदान विधि करे । उसके बाद मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन सिद्धभक्ति आदि विधी करे । इसीतरह आचार्य आदिकी भी प्रतिमास्थापनामें पूर्वकथित

वतारयामीति स्वाहा । फलावतारणं । ओं परमसुरभिद्रव्यसंदर्भपरिमलगर्भतीर्थांबुसंपूर्णसुवर्णकुंभाष्टकतोयेन परिषेचयामीति स्वाहा । कलशाष्टकाभिषेकः । एष मंत्र आकरशुद्धयभिषेकेपि योज्य । ओं ह्रीं परमसौमनस्यनिबघनगंधोदकपूरेणाप्लावयामीति स्वाहा । गंधोदकस्नपनमंत्रः । ओं ह्रीं असि आ उ सा सिद्धाधिपतिं लोकोत्तरनीरधाराभिः परिचरामीति स्वाहा । तीर्थोदकमंत्रः । एवं हरिचंदनेप्यूह्यं मंत्राष्टकम् । हरिचंदन इव कलमाक्षतपुंजाष्टकमंदारप्रमुखकुसुमदामार्द्धे त्रिविधसान्नायघनसारदशामुखप्रदीपितदीपकाष्टकसुगंधद्रव्यसंयोजनाविशेषसमूतध्वजधूपघटाष्टकबंधुरगंधवर्णरसप्रीणितनरहिरंत करणमहाफलस्तबकाष्टकजलादियज्ञा दूर्वादर्भदधिसिद्धार्थादिमंगलद्रव्यविनिर्वर्तितमहार्घसत्कारोपचारैः परिचरामीति स्वाहा । जलाद्यर्घांतसपर्याविधानम् । ततः क्रियां कृत्वाभिमतप्रार्थनार्थमिदं पठित्वा पुष्पांजलिं प्रकल्पयेत् ।

आयुर्द्राघयतु व्रतं द्रढयतु व्याधीन् व्यपोहत्वयं
श्रेयांसि प्रगुणीकरोतु वितनोत्वासिंधु शुभ्रं यशः ।
शत्रून् शातयतु श्रियोभिरमयत्वश्रांतमुन्मुद्रय-
त्वानंदं भजतां प्रतिष्ठित इह श्रीसिद्धनाथः सताम् ॥ १९ ॥

क्रिया फ०२ ॥ १८ ॥ " ओं " इत्यादि मंत्र बोलकर मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन जलादि अभिषेक पूजा आदि क्रिया करनी चाहिये । उसके बाद इष्ट प्रार्थनाके लिये " आयु " इत्यादि

ततश्च पूर्ववद्विसर्जनादिकमनुतिष्ठेत् इति सिद्धप्रतिष्ठाविधानम् । अथाचार्यप्रतिष्ठाविधानम् ।
गणभृद्वलयं वेद्यामभ्यर्च्य स्नपयेच्च तम्। पंचाचारान् स्मरेत्पंच कलशांश्चतुरः पुनः ॥ २० ॥
चतुरोऽत्रानुयोगांश्च .. . . निर्त्रीणि तन्मनाः ॥ २१ ॥
ततो महर्षिस्तवनं पठित्वा चतुरो विधीन्। कृत्वा तिलकयेत्साक्षात्सूर्यादीन् प्रतिमा स्मरन्॥२२
मुखवस्त्रादिकर्माणि विधाय च त्रिधिं ततः। क्रियाकाण्डोदितां कृत्वा यथावद्विधिमाचरेत् ॥२३॥

अथ गणधरवलयमनुशिष्यते । पूर्वं षट्कोणचक्रे क्ष्मावीजाक्षरं लिखेत् तदुपरि अर्हं इति न्यसेत् तस्य दक्षिणतो वामतश्च ह्रीं विन्यसेत् पीठादध श्रीं न्यसेत् । तत ओं अ सि आ उ सा स्वाहेत्यनेन श्रीकारस्य दक्षिणतः प्रभृत्युत्तरतो यावत्प्रादक्षिण्येन वेष्टयेत् । तत कोणेषु षट्स्वपि मध्ये अप्रतिचक्रे फडिति मध्येन स्थापयेत् । तथा कोणान्तरालेषु विचक्राय स्वाहेति षड्बीजानि ओंकारोत्तराणि अपसव्ये

श्लोक पढ़कर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ १९ ॥ फिर पूर्वकी रीतिसे विसर्जन आदि करे। यह सिद्धप्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कही गई ॥ अब आचार्यप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं । बुद्धिमान गणधर वलय (चक्र) को वेदीमें स्थापन कर पांच कलशोंसे स्नपन करे और दर्शनाचार आदि पांच आचारोंको स्मरण करता हुआ उस चक्रकी पूजा करे ॥ २० ॥ फिर चार अनुयोगोंका चिंतवन करके महर्षिस्तवन पढ़के तिलकादि क्रिया करे ॥ २१।२२ २३ ॥

विन्यसेत् । तद्बहिर्वलय कृत्वाष्टसु पत्रेपु णमो जिणाण, णमो, ओहिजिणाण णमो कुट्ठबुद्धीण, णमो बीजबुद्धीण, णमो पदाणुसारीण—इत्यष्टौ पदानि क्रमेण लिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वत् षोडशपत्रेषु णमो सभिण्णसोदाराणं, णमो पत्तेयबुद्धाण, णमो सयं बुद्धाण, णमो वोहियबुद्धाण, णमो उजुमदीण, णमो विउलमदीण, णमो दसपुव्वीण, णमो अट्ठगमहाणिमित्तकुसलाण, णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताण, णमो सिज्जाहराण, णमो चारणाण, णमो समणाण, णमो आगासगामीण, णमो आसिविसाणं, णमो दिट्ठिविसाण—इति षोडशपदानि विलिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वच्चतुर्विंशतिपत्रेषु णमो घोरगुणपरक्कमाण, णमो घोरगुणवभयारीणं, णमो आमोसहिपत्ताण, णमो खेल्लोसहिपत्ताण, णमो जल्लोसहिपत्ताण, णमो विड्ढोसहिपत्ताण, णमो सव्वोसहिपत्ताण, णमो मणवलीण, णमो वचिवलीण, णमो कायवलीण, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीण, णमो महुरसवीण, णमो अमियसवीण, णमो अक्खीणमहाणसाण, णमो वड्ढमाणाण, णमो लोए सव सिद्धायदणाण, णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीण । चतुर्विंशतिपदान्यालिख्य ह्रींकारमात्रया त्रिगुण वेष्टयित्वा क्रौंकारेण निरुद्धच बहि पृथ्वीमेडलं ह्रीं श्रीं अर्हं असि आउसा अप्रतिचक्रे फट् विचकाय झ्रौं झ्रौं स्वाहा । अनेन मध्यपूजा विदध्यात् । णमो अरहताण णमो जिणाण इत्यादि ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौ ह्रः असि आउसा अप्रतिचक्रे झ्रौं

" अथ " इत्यादिसे कहे गये गणधरचक्रको बनावे । और पूर्वकी तरह आकरशुद्धि आदि क्रिया करके " निर्वेद " इत्यादि महर्षि स्तवन पढता हुआ आचार्य आदिकी प्रतिमाको

झ्रौं स्वाहा । एतेष्ट चत्वार. । अथ पूर्ववदाकरशुद्ध्यादिक कृत्वा निर्वेदेत्यादि महर्षिस्तवन पठ-न्सर्वां समतात्परामृश्य गुणारोपण कुर्यात् । ओं ह्रूं णमो आइरियाण आचार्यपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् ओं ह्रूं तिष्ठ २ ठ २, ओं ह्रूं मम सन्निहितो भव २ वषट् । तथा ओं ह्रीं णमो उवज्झायाण उपाध्यायपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् ओं ह्रौं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रौं सन्निहितो भव भव वषट् । तथा ओं ह्र णमो लोए सव्वसाहूण साधुपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् । ओं ह्र तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रः सन्निहितो भव २ वषट् । इत्याचार्यादीनामावाहनादिमन्त्रा । ततश्च ओं ह्रूं णमो आइरियाण धर्माचाराधिपतये नम· इत्यादिमन्त्रै सिद्धप्रतिमावत्तिलकादिविधीन् विदध्यात् । एवमुपाध्यायसाधुपरमेष्ठिनोऽपि करप कल्पयेत् ॥ इत्याचार्यादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम् ।

वेद्यां सारस्वत यत्रं विलिख्य तस्य शोधनम् । अनुयोगैरिवाचार्यैश्चतुर्भिस्तीर्थवार्घटैः ॥२४

यत्रेर्चां न्यस्य गां स्तुत्वा कृत्वा कर्मचतुष्टयम् ।... ..त यन्मूलमंत्रेणान्यं विधिं सृजेत्२५

स्पर्श करके उसमें गुणोंका स्थापन करे । फिर "ओं ह्र" इत्यादि बोलकर आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुका आवाहन आदि करे । उसके बाद "ओं ह्र" इत्यादि मंत्रसे सिद्ध प्रतिमाकी तरह तिलक आदि विधि करे । यह आचार्य आदि धर्मगुरुकी प्रतिष्ठाविधि हुई ॥ अब सरस्वतीकी प्रतिष्ठा विधि करते हैं । प्रतिष्ठाचार्य वेदीमें सारस्वत यंत्र लिखकर उसको सामनेके दर्पणमें प्रतिबिंबित कर चार जलके घडोंसे अभिषेक करे । उस यंत्रमें सरस्वतीकी मूर्तिको रख स्तुतिपूर्वक पूजा करे तथा सरस्वतीमंत्रका जाप करे ॥ ॥ २४ । २५ ॥

अथ सारस्वतमंत्रमनुशिष्येत् । पूर्वं कर्णिकाया ह्रींकारमालिखेद्बाह्ये हकारं सविसर्गसकारं च लिखित्वा ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः इत्यनेन मूलमंत्रेण वेष्टयेत् । तद्बहिः पूर्वादिक्रमेण चतुर्षु ओं वाग्वादिन्यै नमः, ओं भगवत्यै नमः, ओं सरस्वत्यै नमः, ओं श्रुतदेव्यै नमः । इति चतुरारव्या लिखेत् । तद्बहिरष्टसु पत्रेषु ओं नदायै नमः, ओं स्तभिन्यै नमः इत्यादि चाष्टौ देवीर्लिखेत् । तद्बहिश्च षोडशपत्रेषु ओं रोहिण्यै नमः इत्यादि मंत्रैः षोडश विद्यादेवीः स्थापयेत् । ततः पूर्वाद्यष्टदिक्षु इन्द्राय स्वाहेत्यादिमंत्रैरष्टौ दिक्पालान् विन्यसेत् । पूर्वेशानदिशोश्चांतराले ओं अधोनागेभ्यः स्वाहेति नागान् विन्यसेत् । पश्चिमदिक्पालस्योपरिष्टाच्च ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः इति परमब्रह्म प्रतिष्ठयेत् । इन्द्रादधश्च ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः इति वागधिदेवता स्थापयेत् । ततस्त्रिमायामात्रया क्रौंकारेण निरुध्य तद्वाद्यैश्च बहिः पृथ्वीमंडलं विलिखेत् इति । अथ ओं ह्रीं श्रुतदेव्यः कलशस्नपनं करोमीति स्वाहा । इत्यनेन कलशानभिमन्त्र्याकरं शोधयेत् । ततो बोधेनेत्यादि श्रुतदेवीस्तवनं पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

वारह अंग गिज्जा दंसणतिलया चरित्तवच्छहरा ।
चोदसपुव्वहराणं ठावे दव्वाय सुयदेवा ॥ २६ ॥

अब सरस्वतीयत्रका उद्धार दिखलाते हैं । पहले कर्णिका (बीचका भाग) में " ह्रीं " लिखे उसके बाहर " हं स " लिखकर " ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भग-

आचारं शिरसि सूत्रकृत् वक्त्रा तु कंठिका । स्थानेन समवायाङ्गव्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ॥२७
वाग्देवतां ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तनी । अंतकृद्दशसन्नाभिमनुत्तरदशां गतः ॥ २८ ॥
मुनितवा सुजघना प्रश्नव्याकरणश्रुतात् । विपाकसूत्रदृग्वादचरणांबरां ? ॥ २९ ॥
सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दश विभूषणाम् । तावत्प्रकीर्णकोदीर्णचारुपत्रांकुरश्रियम् ॥ ३० ॥
आप्तदृष्टप्रवाहां तद्द्रव्यभावाधिदेवताम् । परब्रह्म पथादृशां स्यादुक्ति भुक्तिमुक्तिदाम् ॥३१॥
सर्वदर्शनपाखंडदेवदैत्यं खगार्चिता । जगन्मातरमुद्धर्तुं जगदत्रावतारयेत् ॥ ३२ ॥

वति सरस्वति ह्रीं नमः " इस सरस्वतीमन्त्रको चारो तरफ वेढे । उसके बाहर पूर्व आदि दिशाके क्रमसे चार पत्तोंपर " ओं वाग्वादिन्ये नम " इत्यादि चारोंको लिखे । उसके बाहर आठों पत्तोंपर " ओं गङ्गायै नमः " इत्यादि आठ देवियोंको लिखे । उसके बाहर सोलह पत्तोंपर " ओं रोहिण्यै नमः " इत्यादि सोलह विद्यादेवियोंको लिखे । उसके बाद पूर्व आदि आठ दिशाओंमें " इन्द्राय स्वाहा " इत्यादि मंत्रोंसे आठ दिक्पालोंको स्थापन करे । पूर्व और ईशान्य दिशाओंके बीचमें " ओं अधो नागेभ्य स्वाहा " लिखकर नागकुमारकी स्थापना करे । पश्चिमदिशाके दिक्पालके ऊपर " ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः " ऐसा लिखकर परमब्रह्मकी स्थापना करे । इसके नीचे " ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः " लिखकर सरस्वती देवीकी स्थापना करे । उसके बाद तीनवार ईकारसे तथा क्रों से वेढकर बाहर पृथ्वीमंडल लिखे ॥ फिर " ओं नि " इत्यादि मन्त्रसे कलशोंको मंत्रितकर

ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापानि क्षय कर श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वालिते सरस्वति मम पापं हन २ क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसंभवे व वं हुं स्वाहा । एतत्पठन् प्रतिमाया अग-प्रत्यगपरामर्शं कुर्यात् । गुणारोपण । ओं ह्रीं श्रीं अत्र एहि २ संवौषट्, ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रीं सन्निहितो भव वषट् । आवाहनादिमत्र । ततो मूलमन्त्रेण तिलक दत्वा पूर्ववदाधिवासनाविधीन विदध्यात् ।

शुभे शिलादावुत्कीर्य श्रुतस्कंधमपि न्यसेत् । ब्राह्मीन्यासविधानेन श्रुतस्कंधमिह स्तुयात् ३३
सुलेखकेन संलिख्य परमागमपुस्तकम् । ब्राह्मीं वा श्रुतपंचम्यां सुलग्ने वा प्रतिष्ठयेत् ३४

आकरशुद्धि करे । उसके बाद " बोधेन " इत्यादि श्रुतदेवीका स्तवन पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे । उसके बाद " बारह " इत्यादि सात श्लोक तथा " ओं अर्हं " इत्यादि मत्र बोलकर सरस्वतीप्रतिमाके अंगोका स्पर्श करें ॥ २६ ते ३२ तक ॥ फिर गुणोका स्थापन करे । उसके बाद " ओं " इत्यादि मत्र बोलकर आवाहन आदि करे । उसके बाद मूलमत्रसे तिलक देकर पूर्वरीतिके अनुसार अधिवासना आदि क्रियाओंको करे । उत्तम शिला आदिमे सरस्वतीकी मूर्ति खुदवाकर स्थापना करके स्तुति करे ॥ ३३ ॥ अथवा परमागमके शास्त्रोको अच्छे विद्वान् लेखकसे लिखवाकर श्रुतपंचमीके दिन शुभ लग्नमे सरस्वतीप्रतिष्ठा करे ॥ ३४ ॥

अत्र त्वाकारशुद्ध्यादिविधिमादर्शविंबिते । कुर्यादिति श्रुतस्कंधं स्तुयात्सूत्रोदित स्मरेत ॥३५॥
आचार्यादिगुणान् शस्य सतां वीक्ष्य यथायुगम्। गुर्वादेःपादुके भक्त्या तन्न्यासविधिना न्यसेत्
घटयित्वा जिनगृहे तत्प्रतिष्ठामहोत्सवे । निषेधिकां प्रतिष्ठाप्य रक्षकांगो जनावनौ ॥ ३७॥
नीत्वा निवेशयेदत्र पठित्वाराधनास्तवम् । ध्यायेत् प्रसिद्ध संन्यासं समाधिमरणादिषु॥३८
बहिर्वाथ निर्माप्य ता स्वस्थाने निवेशिताम्। स्वयं जप्त्वा प्रियं वार्हत्प्रतिष्ठातिलकक्षणे॥३९
प्राप्य तिलकं तत्र गत्वा शेषविधिं स्वयम्। कुर्यादिद्रः सः ततः संघः कुर्याद्यथागमम् ४०
तत्रैव वा प्रतिष्ठोक्तविधिं सर्वं समासतः। कृत्वा प्रतिष्ठयेल्लग्ने तां वा वीरशिवक्षणे ॥ ४१ ॥

इति श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ यक्षादिप्रतिष्ठा ।

यहांपर अभिषेक आदि क्रिया दर्पणमें प्रतिबिंबित करके करनी चाहिये । इस प्रकार जिनसूत्रकथित रीतिसे श्रुतस्कंधकी पूजा करे ॥ ३५ ॥ आचार्य आदिके गुणोंकी स्तुति करके गुरुकी पादुका (चरणयुगल) बनवाके उनकी स्थापना करे ॥ ३६ ॥ जिनमंदिरमें एक समाधिकी जगह बनावे वहां गुरुकी पादुकाओंको स्थापन करके उनके गुणोंका तथा समाधिमरणका चिंतवन करे ॥ ३७ । ३८ ॥ ३९ ॥ वहांपर तिलक आदि विधि इन्द्र आप भी करे तथा अन्य श्रावकोंसे शास्त्रानुसार करावे ॥ ४० ॥ उस जगह यदि संक्षेप विधि करनी हो तो आगमके अनुसार सरस्वती आदिकी प्रतिष्ठा गुरुप्रतिष्ठाके समय तथा महावीर प्रभुके मोक्षकल्याणके दिन

यक्षादयो जिनार्चाकमस्तकास्तत्मतिष्ठया । मतिष्ठेयास्ततोन्येपा प्रतिष्ठाविधिरुच्यते ॥ ४२॥
अव्युत्पन्नदृशां शातक्रूरैहिकफलांश्च ते। त प्रकाशार्थं मंत्रवादे स दर्शितः ॥४३॥
सत्पुष्पमंडपे रात्रौ पचतीर्थजलोक्षिते । यक्षादिप्रतिविंबे .धिवासयेत् ॥ ४४ ॥
अर्थों ह्रीं क्रों मुख स्थाप्यमावाहनादिगर्भितम् । संवौपट् होमपर्यंतमंत्रं पद्मवरे लिखेत्४५
प्रकीर्णचूर्णे दर्भेण वेदिपृष्ठे तथाष्टसु। आदिदेवीतले ओंकारेपु चतुर्ष्वतः ॥ ४६ ॥
तेजोमायादिहोमांतान् लिखेत्पचदश क्रमात् । तिथिदेवान ग्रह . पुरान् ॥ ४७ ॥
आयुधान्यष्ट तुर्ये तु पंचमं भूपरे लिखेत् । पत्रमंडलमभ्यर्च्य विधिवत्तं प्रतिष्ठयेत् ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं क्रौं सुवर्णवर्णवृपभवाहनपरशुफलाक्षमालावरदानांकितचतुर्भुजवृपचक्रधर्मचक्रांकक्रान्-मस्तकगोमुखयक्षाय सवौपट् स्वाहेति मन्त्र कर्णिकायामालिख्य तद्बहिरष्टसु पत्रेपु ओं ह्रीं क्रो श्रियै

शुभलग्नमे करे ॥ ४१ ॥ इसतरह श्रुतदेवताकी प्रतिष्ठा विधि समाप्त हुई । अब यक्ष आदिकी प्रतिष्ठा कहते हैं । यक्ष आदिक देव भगवानकी प्रतिमाके रक्षक होते हैं इसलिये उनकी मूर्तिकी भी प्रतिष्ठा करे ॥ ४२ ॥ जो अज्ञानी है वे " शात क्रूर इस लोकके फलके देनेवाले है " ऐसा समझकर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते है यह कथन मन्त्रवाद शास्त्रोंमें दिखाया गया है ॥ ४३ ॥ यक्षादि देवोकी प्रतिष्ठा पाच स्थानोंके जलसे प्रतिविंवका अभिपेककर रात्रिमे करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ " अर्थों " इत्यादि चार श्लोकोंमें कथित कियासे आवाहन आदि करे ॥ ४५ से ४८॥ "ओ"

मंत्रैरप्द स्वाहेत्यादि दिक्कुमारीमनानष्टौ तद्बहिर्वलयात, ओं ह्रीं क्रों यक्षवैश्वानररक्षो नदतपन्नगासुर कुमारसनिश्चविद्युन्मालिनमरवैरोचनमहाविद्यमारोविश्वेश्वरपिंडभुगभिधानपञ्चदशतिथिदेवान् संस्थापयामि स्वाहेति तिथिदेवाः पञ्चदश तद्बहिर्वलयात, ओं ह्रीं क्रों सूर्यसोमागारकसौम्यगुरुमार्गवशनिराहुकेतून् संस्थापयामि स्वाहेति ग्रहान्वाष्टौ तद्बहिर्मंडलात, ओं ह्रीं क्रों किंनरेंद्रकिंपुरुषेंद्रमहोरगेंद्रगंधर्वेंद्रयक्षेंद्रराक्षसेंद्रभूतेंद्रपिशाचेंद्रान् संस्थापयामि स्वाहेति विलिखेत्। एवमंडलं वर्तयित्वा स्वस्वमंत्रैर्यक्षादिदेवान् जलगंधादिभिरभ्यर्च्य कलशाष्टकादिभिर्वेदीं भूषयेत्। अथ स्नपनमंडपे तां प्रतिमामानीय दर्भप्रस्तरे शाल्प्रस्तरे वा स्थापयित्वा क्रमेण स्नापयेत्। ततस्तत्र वेदिकाया नवकलशान् सर्वालंकारोपेतान् सर्वौषधिमिश्रशुद्धयत्रमशान्वितर्तीर्थजलपरिपूर्णान् शालिप्रस्तरोपरि लिखितमायाबीजा सलेन्य तत्प्रथमभागे स्नपनपीठं स्थापयित्वा प्रक्षाल्यालंकृत्य तदुपरि भुवनाधिपतिं लिखित्वा अक्षतपुष्पस्पर्शान् विन्यस्य तत्प्रतिमां तत्र संस्थापयित्वा पञ्चोपचारविधिनाभ्यर्च्य गृहनाष्टकलशैर्मंत्रपूर्वकमभिषिच्य चतुर्नीराजनं कृत्वा पुष्पांजलिं क्षिप्येकादशमभिषेकं मध्यकलशेनामृतमंत्रेण कुर्यात्।

तेजोपानादिकारूयानं क्रियान्वितम्। तत्तत्पल्लवसंयुक्तं करोम्यंतपदं स्मरेत्॥ ५९॥

इत्यादिमें कथित विधिसे पूजा करे। अमृतमंत्रसे यक्षप्रतिमाका अभिषेक करे। "तेजो" इत्यादि बोलकर "अथ" इत्यादिमें कही हुई विधिसे स्थापना करे॥ ५९॥ इसीप्रकार

अथैवमाकारशुद्धिं विधाय मूलवेद्या नवधौतवस्त्रसदर्भाक्षतपुष्प प्रस्तीर्य तत्र तत्प्रतिमा निवेश्याभ्यर्च्य काण्डाग्रदूर्वाग्रेण प्रोक्षण विधाय शांतिहोम यक्षमन्त्रेण कृत्वा पुण्याहं वाचयित्वा पूर्वोक्तविधिना सुमुहूर्ते तिलक दद्यात् ततोऽधिमानादिविधिं विधाय वस्त्राभरणमाल्यादिभिरभ्यर्च्य निसर्जनादिक कुर्यात् । तत प्रभृति च तानि सपूजयेत् ।

एष एव च शेषाणां यक्षाणां स्थापनाविधिः । यक्षीणा च मितः भेदाश्रयौ भवेत्५०
क्षेत्रपालं कर्णिकायां मन्त्रपनायुधादिभिः । सचूर्णवेधामालिख्य पत्रेष्वष्टसु संलिखेत् ।।५१।।
समंत्रान् दिक्पतीनिंद्रादधोभागानुपर्यपि । वरुणस्य लिखेत्सोमं मायोर्वीभ्यां च वेष्टयेत् ५२
तत्पश्च पूजयेद्गंधपुष्पधूपाक्षतादिभिः । अथ तत्प्रतिमां रात्रिमुषितां दर्भसंस्तरे ॥ ५३ ॥
तीर्थांबुस्नापितां तत्र निवेश्यारोप्य तद्गुणान् । आवाहनादि कृत्वा च सूत्रयुक्त्या प्रतिष्ठयेत् ५४

ओं ऱ्हां क्रौं घोराधकारसप्रभमण्डलगदाधारणव्यग्रोग्रचतुर्भुज अत्र क्षेत्रपालाय संवौषट् स्वाहेति कर्णिकायामालिख्य पूर्वादिदलेष्वष्टसु । ओं ऱ्हीं इन्द्राय स्वाहेत्यादिक्रमेण दिक्पालान संस्थाप्य इन्द्राध ओं ऱ्हीं नागेभ्य. स्वाहेति वरुणादूर्ध्वं च ओं ऱ्हीं सोमाय स्वाहेति विन्यस्य बहिर्मायामात्रया नि परिक्षिप्य क्रौंकारेण निरुध्य भूमण्डलेन वेष्टयेदिति मण्डलवर्तनम् ।

यक्षी क्षेत्रपाल वरुण आदिकी प्रतिष्ठा "एष" इत्यादि पांच श्लोकोंमे कथित रीतिसे

इष्यनुर्ध्वभुजा धृतासिफलकः सव्येन रक्षासितं
श्वानं सिंहसमं करेण भयदामन्येन विभ्रद्गदाम् ।
नागालंकरणः किलाशु डमरुकारावोल्वणांघ्रिक-
सेवतत्परमत्रयोस्त्यधिकृतः क्षेत्रे स साक्षादयं ॥ ५५ ॥

ओं ह्रीं नियुक्तक्षेत्रपाल अत्रावतरावतर संवौषट् आवाहन, ओं ह्रीं अत्र तिष्ठ २ ठ २ स्थापन, ओं ह्रीं मम सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधापनम् । तत सूत्रोक्तविधिना तिलक दत्त्वा विधापनान्तिकं कृत्वा सद्वस्त्रभूषादिभिः सत्कुर्यात । इति यक्षादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ पत्रादिप्रतिष्ठा ।

श्रीचंदनादिवेद्यां तु पट्टादौ सम्यगुद्धृतम् । सिद्धचक्रादि सपूज्य तत्पत्रं पुष्पमंडपे ॥ ५६ ॥
मंगलद्रव्यसर्वौषधपुनिश्रतीर्थवारिणि । निशामुषितमानीयं निवेश्य स्नपनमंडपे ॥ ५७ ॥
आप्लाव्य दुग्धदध्याज्यैः प्रागुक्तमंत्राभिमंत्रितैः । प्रक्षाल्य मृत्स्ना श्रीखंडं तीर्थपाथोभिरादरात्

करे ॥ ५० से ५४ ॥ " ओं ह्रां " इत्यादि कथित रीतिसे माण्डला बनावे । "इष्य" इत्यादि श्लोक तथा " ओं ह्रीं " बोलकर क्षेत्रपालका आवाहन आदि करे ॥ ५५ ॥ उसके बाद जिनशास्त्र कथित विधिसे तिलक देकर अधिवासना करके उत्तम वस्त्र आभूषणादिकोंसे सत्कार करे ॥ यह यक्षादि प्रतिष्ठाकी विधि हुई । अब तांबे आदिके खुदे हुए पत्रोंकी प्रतिष्ठा विधी कहते हैं । चंदन आदिकी बनी हुई वेदीमें पटे पर सिद्धचक्र आदिकी पूजा करे ॥ ॥ ५६ ॥ फिर मंगलद्रव्य सर्वौषधिसे मिले हुए जलाशयके जलमें अभिषेक करे ॥ ५७।५८ ॥

पूर्वपूजितचक्राग्रे न्यस्य ध्यात्वा च तन्मयम्। तत्प्रक्षालनमादाय तत्स्थाने न्यस्य तेन तत्॥५९
संस्नाप्य सुमुहुर्तैतभूतत्वे विस्तीडया । मूलमंत्र प्रजपते स्थापयेच्चंदनद्रुना ॥ ६० ॥
ततोऽभिषिच्य सपूज्य महार्घेणाभिराध्य तत्। कुर्याच्छेपविधिर्नित्यं पूजयेच्च तदादि तत्। ६१ ।
चित्रादिर्वा प्रतिष्ठायामपि योज्योल्पशो विधिः। स एवाकरशुद्ध्यादिविधिः कुर्यात्तु दर्पणे६२॥
अक्षादिस्थापना त्वद्य जिनादीनां न कारयेत्। प्रायो लोकः कलौ क्षुद्रः कल्पयत्यन्यथा हि ताम्
एकाशीतिपदं प्राच्यं स्थाप्यमर्हत्स्त्रभाग्यपि । लोकं जिनादि तच्चैत्यं निचिताशत्तु सस्मरेत्॥६४

एवं व्याससमासदर्शनपरं स्वोपज्ञधर्मामृत–
ग्रंथांगं जिनयज्ञकल्पमकरोदाशाधरः श्रेयसे ।

उसके बाद जिसका यत्र हो उसके मूलमन्त्रका जाप करे। जाप करनेके बाद अभिषेक पूर्वक उस यत्रकी पूजा करे। इसतरह प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये ॥ ५९ । ६० । ६१ ॥ चित्राम आदिकी अभिषेकविधि दर्पणमें प्रतिबिंबित करके करनी चाहिये ॥ ६२ अर्हंत आदि मूर्तिकी तदाकार स्थापना करनी चाहिये । क्योंकि कलियुगमें मिथ्याती पुरुष विपरीत ही कल्पना कर डालते हैं । इसलिये चौपडकी तरह मूर्तिकी अतदाकार स्थापनाका निषेध किया गया है ॥ ६३ ॥ पूर्वकथित इक्यासी पत्रोंका यत्र पूजाकर प्रतिमाकी स्थापना करनी योग्य है ॥ ६४ ॥ इसप्रकार विस्तारसे तथा सक्षेपसे जिनप्रतिष्ठा आदिकी

एन सम्यगधीत्य ये गुरुमुखाद्बुध्वा तदर्थं क्रिया
निर्मास्यंति सुमेधसो बुधनताः प्राप्स्यंति ते निर्वृत्तिम् ॥ ६५ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सिद्धादि
प्रतिष्ठाविधानीयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विधिको कहनेवाले जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रंथको मुझ " आशाधरने " कल्याण होनेकेलिये किया है। जो भव्यजीव गुरुके मुखसे इसको पढ़कर इसकी क्रियाएं करेंगे वे बुद्धिमान देवोंसे पूजित हुए परंपरासे मोक्षको पायेंगे ॥ ६५ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प दूसरे नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें
सिद्ध आदिकी मूर्तिप्रतिष्ठाको कहनेवाला छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

ग्रंथकर्तुः प्रशस्तिः ।

श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषण-
स्तत्र श्रीरतिधाम मंडलकरं नामास्ति दुर्गं महत् ।
श्रीरत्न्यामुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वया-
च्छ्रीसल्लक्षणतो जिनेंद्रसमयश्रद्धालुराशाधरः ॥ १ ॥

सरस्वत्यामिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत् । यः पुत्रं छाहड गुण्यं रंजितार्जुनभूपतिम् ॥२॥

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षुराशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥ ३ ॥

इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योभिनंदितः प्रीत्या ।
प्रज्ञापुंजोसीति च योभिमतो मदनकीर्तियतिपतिना ॥ ४ ॥

म्लेंच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति-
त्रासाद्विंध्यनरेंद्रदोःपरिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि ।
प्राप्तो मालवमंडले बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥ ५ ॥

आशाधरत्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौंदर्यमजर्यमार्य ।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपंचः ॥ ६ ॥
इत्युपश्लोकितो विद्वद्बिल्हणेन कवीशिना । श्रीविंध्यभूपतिमहासांधिविग्रहिकेण यः ॥ ७ ॥
श्रीमदर्जुनभूपालराज्ये श्रावकसंकुले । जिनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरेऽवसत् ॥ ८ ॥
यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान्
सत्तर्कं परमास्त्रमाप्य नयतः प्रत्यर्थिनः कोक्षिपत् ।
चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
पीत्वा काव्यसुधां यतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के ॥ ९ ॥
स्याद्वादविद्याविशदप्रसाद प्रमेयरत्नाकरनामधेयाः ।
तर्कप्रबंधो निरवद्यविद्यापीयूषपूरे वहतिस्म यस्मात् ॥ १० ॥
सिद्ध्यंकं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबंधोज्ज्वलं
यस्त्रैविद्यकवीन्द्रमोदनमयं स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।
योऽर्हद्वाक्यरसं निबंधरुचिर शास्त्रं च धर्मामृतं
निर्माय न्यदधात मुमुक्षुविदुषामानंदसान्द्रे हृदि ॥ ११ ॥
आयुर्वेदविदामिष्टां व्यक्तुं वाग्भटसंहिताम् । अष्टांगहृदयोद्योतं निबंधमसृजच्च यः ॥ १२ ॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबंधनम् । व्यधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्जगौ ॥ १३ ॥
रौद्रटस्य व्यधात्काव्यालंकारस्य निबंधनम् । सहस्रनामस्तवनं सनिबंधं च योर्हताम् ।१४।
अर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम् । चक्रे नित्यमहोद्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनाम् ॥१५॥
रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्म्यवर्णनम् । रत्नत्रयविधानाख्यं शास्त्रं वितनुतेस्म यः ॥१६॥

प्राच्यानि संचर्च्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैंद्रं ।
आम्नायविच्छेदतमश्छिदेयं ग्रंथः कृतस्तेन युगानुरूपः ॥ १८ ॥

खाण्डिल्यान्वयभूषणाल्हणसुतः सागारधर्मे रतो
वास्तव्यो नलकच्छचारुनगरे कर्ता परोपक्रियाम् ।
सर्वज्ञार्चनपात्रदानसमयोद्योतप्रतिष्ठाग्रणीः
पापात्साधुरकारयत्पुनरिमं कृत्वोपरोधं मुहुः ॥ १९ ॥

विक्रमवर्षसपंचाशीति द्वादशशतेष्वतीतेषु ।
आश्विनसितांत्यदिवसे साहसमल्लापराक्षस्य ॥ १९ ॥
श्रीदेवपालनृपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये ।
नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रंथोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे ॥ २० ॥

अनेकार्हत्प्रतिष्ठाप्तप्रतिष्ठैः केल्हणादिभिः । सद्यः सूक्तानुरागेण पठित्वायं प्रचारितः ॥ २१ ॥

अलमतिप्रसंगेन ।

यात्रीलोक्यां जिनमंदिरार्चास्तिष्ठंति शक्रादिभिरर्च्यमानाः ।
तान्‌जिनादिप्रतिमाप्रतिष्ठाः शिवार्थिनोऽनेन विधापयंतु ॥ २२ ॥

किंच ।

नंद्यात्खांडिल्यवंशोत्थः केल्हणो न्यासवित्तर ।
लिखितो येन पाठार्थमस्य प्रथमपुस्तकम् ॥ २३ ॥

इति प्रशस्तिः ।

इत्याशाधरविरचितो जिनयज्ञकल्पापरनामा प्रतिष्ठासारोद्धार समाप्त ।

अब ग्रंथकारकी प्रशस्ति कहते हैं–" श्रीमान " इत्यादि श्लोकसे लेकर २३ तक प० आशाधरका वक्तव्य दिखलाया गया है ॥ १ से २३ ॥

इति प० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाला प्रतिष्ठासारोद्धार समाप्त हुआ ॥

समाप्तोऽयं प्रतिष्ठापाठः ।

---

१ " सनिबंध यश्च जिनयज्ञकल्पमरीरचत् । त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रं यो निबन्धालंकृतं व्यधात् ॥ ? ॥ यह श्लोक सागारधर्मामृतकी प्रशस्तीमें है ।

प्रतिष्ठासारोद्धारका परिशिष्ट ।

मत्यात्मावृतिहानिमूलविभव लब्ध्यक्षराद्यागमप्रामोद्दामवपु प्रकाडमुचिताचारादिशाखोच्चयम् ।
बाह्यश्रुत्युपशाखमुक्तिसुदल सद्युक्तिपुष्पश्रुतस्कधं स्वर्थफलाकुल घनशमच्छाय भजेभच्छिदे ॥ १ ॥

पट्त्रिंशत्त्रिशतैरवग्रहमुखै. स्मृत्यादिभि सोजसा मत्यै स्वावरणक्षयोपशमस्वस्वातोत्थयात्मा यया ।
देशेनेहसि सकरव्यतिकरापोहेन वस्तूचिते योग्य द्वादशधा बहुप्रभृतिभिर्विद्यात्पुरश्चारुदक् ॥ २ ॥

एतद्द्वय पठित्वा श्रुतस्कधस्थापनार्थे पुस्तकोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

लोकालोकदृश सदस्यसुकृतैरास्याद्यदर्थश्रुत निर्यात ग्रथित गणेश्वरवृषेणातर्मुहूर्तेन यत् ।
आरातीयमुनिप्रवाहपतित यत्पुस्तकेष्वर्पित तज्जैनेंद्रमिहार्पयामि विधिना यष्टु श्रुत शाश्वतम् ॥ ३ ॥

विधियज्ञप्रतिज्ञानाय पुस्तकोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

सर्पच्छीकरवारवारितपतद्घाधभृगव्रज निर्यत्या कनकाद्रिशृंगसमयोभृगारनालाननात् ।
स्वर्गगाद्युपनीतपूतसुरभिद्रव्याढ्यवार्धारया स्यात्कारजननीं जगद्विजयिनीं जैनीं यजे भारतीम् ॥४॥ जल ।

---

१ यहांसे सरस्वतीदेवीकी पूजाका आरभ है । इससे पहलेका " इंद्र " इत्यादि पाठ दूसरे अध्यायमें आगया है ।

अतस्तापनिबर्हिणी बहु बहिस्तापच्छिदा शालिना मदामोदविधायिनीमनुपदामोदानुलानीलिना ।
स्याद्वादामृतगर्भिणी परिणमत्कर्पूररेणुश्रिणा श्रीखंडेन महान्यखडमहिमब्रासयेर्हद्गिरम् ॥ ५ ॥ गंधं ।
घ्राणाप्रीणनचातुरीचणगुणोत्कर्षाविशेषोन्मिषज्जिघ्रामापरिबद्धधोरणिरणत्साररगानोन्मदान् ।
मत्यामन्यातमयामदानमधुरिमोद्गारैरवल्गद्रसान् । वाग्देवीमभिपूजयामि ललितान् शाल्यक्षतानक्षतान् ॥६॥
अक्षत ।
मदारादिसुरद्रुमै सरसिजैर्जातीजयापाटलामल्लीचंपकनीपकुंदबकुलाशोकादिजैश्च स्थितैः ।
सत्पुष्पैर्मकरन्दमेदुररजःकिंजल्कगुंजन्मधुव्रतैः काचनपुष्पकादिभिरपि प्रार्चामि जैनीं गिरम् ॥७॥ पुष्पम् ।
शाल्यन्नं शुचिहेमपात्रनिचितं चाप्यायमानं मुहुः पक्वान्नं घृतपाकखण्डतुहिनव्योपादिसंस्कारवत् ।
नानाव्यंजननानमुत्कटरसं गैर्निष्णुपुण्यद्रुचे रुच्यं चारु चरूकरोमि भगवद्वाग्देवतायाः पुरः ॥८॥ नैवेद्यम् ।
शिशोद्योतपरम्पराकृतहरिन्मकाधकारोदयैर्नित्यानन्दसुधाम्बुनः नयनमुत्पीयूपवर्णक्रियैः ।
स्त्याशी. स्तुतिगीतमगत्रमिलद्वादित्रनादोत्स्वनः श्रीवाणीं मणिदीपकैरुपचराम्यानन्दभक्तिग्रह ॥९॥ दीपम् ।
कृष्णैर्यागविशेषमज्जितजगद्घ्राणे रूपैः स्फुरत्पर्यायातस्वारुगवल्हरीरज्यन्निलिपत्रजे ।
नासाद्वन्द्वनिनर्तपणतपन्मूर्धक्षिपगोच्छलद्धूमन्यासकदुन्मुखैर्भगवती गां धूपयाम्यार्हतीम् ॥ १० ॥ धूपं ।
आम्रैर्जम्बुनिमनोरमैरुपचितैः श्रीनैर्गुलुञ्छैर्निचितैर्मोचैर्नेवुभिरम्बुदोदयमुदैरन्यैरपीदृग्विधैः ।
ईषत्यक्वमपक्वपाकनिहितैर्नोत्पुक्वयामगानेतरैः स्वर्णयुग्मगणसमर्पे श्रावये जिनोक्तिं फले ॥ ११ ॥ फलं ।

सावित्रप्रियधर्मभक्तिरसिका मेधाविनेयात्मना कर्तुं सूरिवरैरनुग्रहमिमां सर्वज्ञवाक्पद्धतिम् ।
ता न्यस्तामिह पुस्तकेष्वधिकृतश्रीदेवतागेपु वा सद्वस्त्रैः परिधापयामि विविधै सद्बोधससिद्धये॥१२॥वस्त्र ।
गधाढ्योदकधारया हृदयहृद्गन्धैर्विशुद्धाक्षतै रोचिष्णुप्रसवैर्विचित्रचरुभिः स्फारस्फुरद्दीपकै ।
गीर्वाणस्पृहणीयधूमविलसद्धूपैः सुधारुक्फलस्तोमैः स्वस्तिकपूर्वकैश्च रचित श्रुत्यै ददेर्घं विभो ॥ १३ ॥

पुष्पांजलि । नमोस्तु श्रुतज्ञानभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् णमो अरहताणमित्यादि ।

देवि श्रीचतुराननप्रभुमुखाभोजाधिवासोत्सवे ब्राह्मि ब्रह्मकलाविकाशिनि जगन्मातस्तमोनाशिनि ।
एतानस्खलितस्वभक्तिनटितानध्यास्य शश्वद्यशोविद्यायुर्वसुविक्रमैरुपचिनु ब्रह्माढ्ययज्ञे धिनु ॥ १४ ॥

एतत्पठित्वा प्रणमेत् । इति श्रुतपूजाविधानम् ।

अथ गुरुपूजा[1] ।

सदा सम्यक्त्वार्के प्रतपति विधूताघतमस लसद्धिश्वालोक विलसति वितार्केकनयने ।
भजंते ये वृत्तामृतमपिजने सविभजते घटत्पुष्टिं तेपामिह गणभृता मानुचरणा ॥ १५ ॥

पादुकास्थापनम् ।

इमास्तिस्रो गुप्तीरिव शमयितु कल्मपरजश्चरती चिच्छक्तीरिव बहिरुतान्वेष्टुमहितान् ।
सुवर्णालूनालात्सुरभिवपुराशानुपतिता लुठतीरब्धारा क्रमभुवि गुरूणा प्रणिदधे ॥ १६ ॥ जलधारा ।

---

१ अब गुरु पूजा कहते हैं ।

मुमुक्षूणा प्रेंखन्नखमणिमयूखव्यतिकराद भीक्ष्ण शीर्षाणि प्रणतिषु पुन शेखरयत. ।
भवाभोधे सेतून्गिवृषभपादान् वृषभ्रज स्तनाम श्रीखडद्रवतिलकलक्ष्माविलसितान् ॥ १७ ॥ गंध ।
गुणग्रामप्रेमगुणनपरिणामोल्बणमनोवच कायोपायार्जितसुकृतपुजप्रतिभटे ।
शरण्यंत्रगुण्यप्रणयनमनाचार्यचरणानुपस्कुर्मोऽमीभिस्त्रिभिरमलशाल्यक्षतचये ॥ १८ ॥ अक्षत ।
स्वाम्युद्यद्भक्तिप्रणतसुमनोमौलिसुमन समागच्छद्भृगोन्मदनमकरंदैकरुचिभि ।
परागोद्गाराभि प्रवरसुमनोभि सुमनसा नमस्यामस्तेमो मुनिपरिवृढाघीनवहत ॥ १९ ॥ पुष्प ।
निनिम्लग्रासानयनरमनाह्लादनगुणैर्यथास्व स्वमादिप्रकृतिषु सुपात्रेषु निचितै ।
परब्रह्मास्वादप्रमदभरानिर्नाणमनसा क्रमेणाचार्याणा वयमुपचरामश्चरुवरै ॥ २० ॥ चरुं ।
त्रिसर्पत्कर्पूरप्रणयमधुरामोदनयनाप्रियार्थि सदोहप्रमथितनम स्तोममभगे ।
प्रदीपैन्द्रीपीकृतमुकृतपाथेयमुरवा स्फुरच्छायीकुर्मश्चरणकमलान्यार्यमहताम ॥ २१ ॥ दीप ।
इमैर्धूमैर्धूमध्वजमुखपतद्धूपपटलादिसर्पद्भिः स्वैर प्रतिदिशमुपास्तिव्यसनिनाम् ।
मनासि प्रीणाद्भि सुमितमनसामाचरतुरै स्वय भूयायामश्चरणारनैरंगचरणान ॥ २२ ॥ धूप ।
नगद्रक्ष्मीनिचतरुभवनानागमुपगाम्मितत्वगैः श्रेयश्चयमुदयदोज फलयितुम् ।
मुमुक्षोनाम्रजमुकुक्षपूरप्रभृतिभि फलै स्फारोकुर्मो गणिचरणपीठाग्रभरणीम् ॥ २३ ॥ फल ।

पयोधारात्रय्यामलयजरसैरक्षतचयैः प्रसूनैर्नैवेद्यै प्रमदभरतो दीपनिकरैः ।
वरैर्धूपोद्गारै फलचयकुशाद्यैश्च रचित विदध्मोर्घं सूरिक्रमसरसिजोत्तारुचिरम् ॥ २४ ॥ अर्घं ।
पचाचाराचरणसचिवाचारणैकक्रियाणा स्फारस्फूर्जद्गुणत्रितयशःशुभ्रिताशाम्बराणाम् ।
सेत्सूरीणामिति विधिकृताराधनाः पादपद्माः श्रेयोस्मभ्यं ददतु परमानदनिःस्यंदसाद्रम् ॥ २५ ॥

एतत्पठित्वा पञ्चाङ्गप्रणामं कुर्यात । गुरव पान्त्वित्यादि ।

अथ प्रतिष्ठासारसंग्रहस्य श्लोकाः[1] ।

शुद्ध शुद्धात्मसद्भाव सिद्धसज्ज्ञानदर्शनम् । सिद्ध शुद्धप्रमाणाप्तिनिरस्तपरदर्शनम् ॥ १ ॥
विश्वकर्मार्थिलोकस्य विश्वकर्मोपदेशकम् । विश्वकर्मक्षयार्थिभ्यो विश्वकर्मक्षयप्रदम् ॥ २ ॥
आदिदेव जिन नौमि विश्वकर्मजय प्रभुम् । शेपाश्च वर्धमानातजिनान् प्रवचन गुरून् ॥ ३ ॥
विद्यानुवादसत्सूत्राद्वाग्देवीकल्पतस्तत । चद्रप्रज्ञप्तिसज्ञाया सूर्यप्रज्ञप्तिसन्निकात् ॥ ४ ॥
तथा महापुराणार्थात् श्रावकाध्ययनश्रुतात् । सारं सगृह्य वक्ष्येह प्रतिष्ठासारसग्रहम् ॥ ५ ॥
तत्र तावत्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । तस्योपदेशतो वक्ष्ये विश्वकर्मप्रवर्तनम् ॥ ६ ॥
शरण्य सर्वभूताना वरागगुणभूपणम् । नत्वा जिनेश्वर वीर वच्म्याचार्येंद्रयोर्गुणम् ॥ ७ ॥

---

१ यहांसे वसुनंदि आचार्यकृत प्रतिष्ठासारसंग्रहका आरभ है ।

आचारादिगुणाधारो रागद्वेषविवर्जित । पक्षपातोज्झित शात साधुवर्गाग्रणीर्गणी ॥ ८ ॥
अशेषशास्त्रवित्तत्त्वज्ञ प्रव्यक्त लौकिकस्थितिः । गभीरो मृदुभाषी न स सूरि. परिकीर्तितः ॥ ९ ॥
कुलीनो जातिसम्पन्न कुत्साहीन सुदेशज । कल्याणाङ्गो रुजाहीन प्रसन्नः सकलेंद्रिय ॥ १० ॥
शुभलक्षणसम्पन्न सौम्यरूप सुदर्शन । विप्रो वा क्षत्रियो वैश्यो विकर्मकरणोज्झितः ॥ ११ ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा सम्यग्दृष्टिर्जितेंद्रियः । नि कषाय प्रशातात्मा वेश्यादिव्यसनोज्झित ॥ १२ ॥
उपासकाध्ययनाचार्यो दृष्टसृष्टक्रियोऽसकृत् । श्रद्धालुर्भक्तिसम्पन्न. कृतज्ञो विनयान्वित ॥ १३ ॥
व्रतशीलतपोदानजिनपूजासमुद्यत । जिनवदनकर्मादिष्वनुष्ठानपर शुचि ॥ १४ ॥
श्रावकाध्ययने दक्ष प्रतिष्ठाविधिवित्सुधी । महापुराणशास्त्रज्ञो वास्तुविद्याविशारद ॥ १५ ॥
एवगुणो महासत्त्व प्रतिष्ठाचार्य इष्यते । नचार्थार्थी न च द्वेषी भ्रष्टलिंगी कलकवान् ॥ १६ ॥
नैव पाखडिपुत्रो वा देवद्रव्योपजीविक । नाधिकाङ्गो न हीनाङ्गो नातिदीर्घो न वामन ॥ १७ ॥
न निकृष्टक्रियावृत्तिर्नातिवृद्धो न बालक । गीतवाद्योपजीवी नो भाटो वैतालिको नट ॥ १८ ॥
उन्मत्तो ग्रहग्रस्तो वा भोजने पक्तिवर्जित । गर्भाधानादिसस्कारैर्विहीनो नातिमोहवान् ॥ १९ ॥
ज्ञाता उपासकाध्ययने न तपो न महाव्रती । शास्त्रज्ञ कुलजातोपि वर्जनीयस्तथाविध ॥ २० ॥
एव समासत प्रोक्त प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । प्रतिष्ठाग्रासशुद्धि भणिष्यामो यथागमम् ॥ २१ ॥

यदि मोहात्तयाभूत· प्रतिष्ठा कुरुते तदा । पुर राष्ट्र नरेंद्रश्च प्रजा सर्वा विनश्यति ॥ २२ ॥
न कर्ता फलमाप्नोति नापि कारयिता स्वकम् । अथोक्तलक्षणापेतो यदि पूजयते त्वमुम् ॥ २३ ॥
प्रशस्तलक्ष्मा यदि पूजयेत पुमान् । जिनेंद्रचद्रार्चितपादपकजम् ।
पुर च राष्ट्र च नृपश्च वर्धते स्वय जन. कारयितानुपगतः ॥ २४ ॥
अथोक्तलक्षणोपेत· प्रतिष्ठाचार्यसत्तमः । जलमत्रव्रतस्नान त्रिसंध्यं वंदना भजेत् ॥ २५ ॥

इति श्री वसुनंदिसैद्धांतविरचित–प्रतिष्ठासारसंग्रहे प्रथमः परिच्छेदः ।

---

१ यहांतक ही लिखी पुस्तकोंमें मिलता है इसलिये आवश्यक समझकर अंतमें लगाया गया है ।

श्रीप्रतिष्ठासारोद्धारकी विषयसूची ।

लभ्याभ्यर्च्य चरुस्रगादिभिरमूं नीराजयाम्योजसे ।
लावण्योद्धतयेन्नतार्थं लवणस्तामं पवित्रार्णसा
संपूर्णानवतारयामि कलशानस्या महिम्नेष्ट च ॥ १४४ ॥

प्रोक्षणादिविधि । इति वेदिकास्थापन । अथातो यागमडलवर्तनविधानम् ।

नागेंद्रार्थपते हरित्प्रभजपां भासासिताभप्रिया
युक्ता एत्य सवर्णचूर्णनिचयैः प्रीतेंद्रवेद्यामिव ।
वेद्यां द्वित्रिचतुर्गुणाष्टदलयुक्पद्मं चतुर्धाश्चतु-
ष्कोणं वर्तयतात्र मडलमथो वज्राल्लिखेंद्राश्रिपु ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं क्ष्मीं श्वेतपीतहरितारुणकृष्णमणिचूर्णं स्थापयामि स्वाहा । चूर्णस्थापनमन्त्रः ।

चद्राभचंद्राभविमानमाल्यभूषांगरागा वरनागराज ।
हस्तांबुजस्थार्जुनरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं नागराजायामिततेजसे स्वाहा । श्वेतचूर्णस्थापनम् ।

" प्रोक्ष्य " इत्यादि कहकर वेदीपर जल छिडके ॥ १४४ ॥ यह प्रोक्षणादिविधि हुई । इस-प्रकार वेदीका स्थापन जानना । अब यागमडलकी विधि कहते है । " नागेंद्रा " इत्यादि " ओं ह्रीं " कहकर पाचो रंगका चूर्ण स्थापन करे ॥ १४५ ॥ " चंद्राभ " इत्यादि " ओ ह्रीं " इत्यादि बोलकर नागराजकेलिये सफेद चूर्ण स्थापन करे ॥ १४६ ॥ " हेमाभ " इत्यादि

हेमाभ हेमामविलेपनस्रग्विमानभूषांशुकयक्षराज ।
हस्तार्पिता रत्नसुवर्णचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेन्द्रयज्ञे ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं हेमप्रभाय धनदाय ठ ठ स्वाहा । पीतचूर्णस्थापनम् ।

हरित्प्रभामर्त्त हरित्प्रभस्रग्वासोविमानाभरणागराग ।
करात्तगारुत्मतरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४८ ॥

ओं ह्रीं हरित्प्रभाय शत्रुमथनाय स्वाहा । हरितचूर्णस्थापनम् ।

रक्तप्रभामर्त्य जपाभभूषास्रग्वर्णकालंकरणाभ्रमाय ।
कराब्जराज कुरुविंदचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं रक्तप्रभाय सर्ववशकराय वषट् वौषट् स्वाहा । अरुणचूर्णस्थापन ।

भृंगाभवृंदारककृष्णवस्त्रविलेपनाकल्पविमानदामन् ।
पाणिप्रणीतासितरत्नचूर्णैर्वेदीं लिखागत्य जिनेंद्रयज्ञे ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं कृष्णप्रभाय मम शत्रुविनाशनाय फट् २ घे घे स्वाहा । कृष्णचूर्णस्थापनम् ।

" ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर कुबेरके वास्ते पीले चूर्णको चढावे ॥ १४७ ॥ " हरित्प्रभा " " ओं ह्रीं " इत्यादिसे हरित्प्रभदेवको हराचूर्ण चढावे ॥ १४८ ॥ " रक्तप्रभा " " ओं ह्रीं " बोलकर रक्तप्रभदेवको लाल चूर्णका स्थापन करे ॥ १४९ ॥ " भृंगाभ " ' ओं ह्रीं " इत्यादि कहकर कृष्णप्रभदेवको शत्रुनाशनकेलिये काले चूर्णका स्थापन करे ॥ १५० ॥ " शची "

शचीकटाक्षेपु शरव्यशक्र त्वमेत्य विघ्नौघविघातहेतो
करस्फुरद्वज्ररजोभरेण कोणेपु वज्राणि लिखाद्य वेद्याः ॥ १५१ ॥
वेदीकोणेषु प्रत्येकं हीरक न्यसेत् । वज्रस्थापनम् । इति यागमडलवर्तनाविधानम् ।

इत्याम्नायनिरस्तमोहतिमिरः सम्यग्जिनेज्यादिभिः
काचिद्भावविशुद्धिमाप्य विधिभिः सौधर्मभावं भजन् ।
कृत्वा मंडलपूजनं वितनुते योर्हत्प्रतिष्ठाविधिः
सोत्रामुत्र च मोदते शुभनिधिः स्तुत्यः शिवाशाधरैः ॥ १५२ ॥
इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि तीर्थोदकादानादिविधानीयो
नाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

इत्यादि बोलकर वेदीके कोनोंमें हीरे रत्नका स्थापन करे ॥ १५१ ॥ इस तरह यागमंडल विधान कहा है। इस प्रकार गुरुआम्नायसे सब जानकर भावोंको निर्मल कर अपनेको सौधर्म समझता हुआ जो प्रतिष्ठाचार्य मंडल पूजन आदिसे अर्हंतकी प्रतिष्ठाविधिका सब जगह प्रचार करता है वह पुण्यका खजाना प्रतिष्ठाचार्य दोनों लोकमें सुख पाता है और मोक्षके चाहनेवाले भव्योंसे अथवा मुझ आशाधरसे पूजित होता है ॥ १५२ ॥

इस प्रकार पं० आशाधरविरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें तीर्थोदक लाने आदिको
कहनेवाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

शचीकटाक्षेपु शरव्यशक्र त्वमेत्य विघ्नौघविघातहेतो
करस्फुरद्वज्ररजोभरेण कोणेपु वज्राणि लिखाद्य वेद्याः ॥ १५१ ॥

वेदीकोणेषु प्रत्येकं हीरक न्यसेत् । वज्रस्थापनम् । इति यागमंडलवर्तनाविधानम् ।

इत्याम्नायनिरस्तमोहतिमिरः सम्यग्जिनेज्यादिभिः
काचिद्भावविशुद्धिमाप्य विधिभिः सौधर्मभावं भजन् ।
कृत्वा मंडलपूजनं वितनुते योर्हत्प्रतिष्ठाविधिः
सोत्रामुत्र च मोदते शुभनिधिः स्तुत्यः शिवाशाधरैः ॥ १५२ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि तीर्थोदकादानादिविधानीयो
नाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

इत्यादि बोलकर वेदीके कोनोंमें हीरे रत्नका स्थापन करे ॥ १५१ ॥ इस तरह यागमंडल विधान कहा है। इस प्रकार गुरुआम्नायसे सब जानकर भावोंको निर्मल कर अपनेको सौधर्म समझता हुआ जो प्रतिष्ठाचार्य मंडल पूजन आदिसे अर्हंतकी प्रतिष्ठाविधिका सब जगह प्रचार करता है वह पुण्यका खजाना प्रतिष्ठाचार्य दोनों लोकमें सुख पाता है और मोक्षके चाहनेवाले भव्योंसे अथवा मुझ आशाधरसे पूजित होता है ॥ १५२ ॥

इस प्रकार पं० आशाधरविरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें तीर्थोदक लाने आदिको
कहनेवाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

त्रिभुवनसधर्मिकामध्येषणाय समतात्पुष्पाक्षत विकिरेत् ।

दृग्शुद्ध्यादिसमिद्धशक्तिपरमब्रह्मप्रकाशोद्धुर
शब्दब्रह्मशरीरमीरितविपद्यन्मूलमंत्रादिभिः ।
इंद्राद्यैरभिराध्यते तदभितो दीप्राग्नि सः क्ष्मासने
न्यस्यार्चामि सुशुक्तिदमहब्रह्मार्हमित्यक्षरम् ॥ ३ ॥

शब्दब्रह्मावर्जनाय कर्णिकामध्ये पुष्पाजलिं विसृजेत् ।

चिद्रूपं विश्वरूपव्यतिकरितमनाद्यंतमानदसांद्रं
यस्माक् तैस्तैर्विवर्तैर्न्यतदतिपतद्दुःखसौख्याभिमानैः ।
कर्मोद्रेकात्तदात्मप्रतिघमलाभिदोद्भिन्ननिःसीमतेजः
प्रत्यासीदत्परौजः स्फुरदिह परमब्रह्म यक्षेर्हमाह्वम् ॥ ४ ॥

परमब्रह्मयज्ञप्रतिज्ञानाय कर्णिकातः कुसुमांजलिमावपेत् । इति प्रस्तावना ॥

"दृग्शुध्या" इत्यादि कहकर शब्द ब्रह्मके नामसे कर्णिकाके बीचमें पुष्पांजलि क्षेपण करे॥३॥ "चिद्रूपं" इत्यादि पढकर परब्रह्म अर्हतकी पूजाके अभिप्रायसे कर्णिकाकेमध्यमे पुष्पोको क्षेपण करे ॥ ४ ॥ " स्वामिन् " इत्यादि "ओं ह्रीं" इत्यादि बोलकर आह्वानन स्थापन सन्निधीकरण

स्वामिन् सवौषट् कृतावाहनस्य द्विष्ठांतेनोट्टंकितस्थापनस्य ।
स्त्वं निर्नेत्तुं ते वषट्कार जाग्रत् सान्निध्यस्य प्रारभेयाष्टधेष्टिम् ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्रीपरमब्रह्म अत्रावतरावतर सवौषट् । अनेन कर्णिकामध्ये पुष्पाजलिं प्रयुज्या-वाहयेत् । ओं ह्रीं अर्हं श्री परमब्रह्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ । अनेन तद्वत् प्रतिष्ठयेत् । ओं इत्यादि मम सन्निहितं भव भव वषट् । अनेन तद्वत्सनिधापयेत् । आह्वानादिपुरस्सरपूजावसरप्रार्थना ।

अथ पूजा ।

चंचद्रत्नमरीचिकांचनकनद्भृंगारनालश्रुत–
श्रीखंडस्फुटिकादिवासितमहातीर्थांबुधाराश्रिया ।
हंतं दुःकृतमेतया स्वसमयाभ्यासोद्यतैराश्रितां
सत्कुर्वीय मुदा पुराणपुरुष त्वत्पादपीठस्थलीम् ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री परब्रह्म . ... नीरधारा ।

इमैः संतापार्चिः सपदि जयदसैः परिमल–
प्रथामूर्च्छद्घ्राणैरनिपदगंशुन्यतिकरात् ।

करे फिर पूजा करना आरंभ करे ॥ ५ ॥ " चंचद्रत्न " इत्यादि और 'ओं ह्रीं' कहकर जल-धारा चढावे ॥ ६ ॥ " इमैः " इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं पढकर चंदन चढावे ॥ ७ ॥ " सुगंधि "

स्फुरत्पीतच्छायैरिव शमनिधे चंदनरसै-
विलिंपेयं पेय शतमखदृशां त्वत्पदयुगम् ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं . .. . गधं ।

सुगंधिमधुरो जूसकलतंदुलछद्मना सुभक्तिसलिलोक्षितैरिव निरीय पुण्यांकुरैः ।
सुपुंजरचनाजित प्रणयपंचकल्याणकैर्भवांतकभवत्क्रमांवुप हरेयमेभिः श्रियै ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं . . .. अक्षत ।

हृदयकमलमन्वचद्भिरामोदयोगाद्रसविसरविलासाल्लोचनाब्जे इसद्भिः ॥
विशदिमजितवोधैर्बुद्धभावत्क्रमेतैश्चरणयुगमनूनैः प्रार्चयेयं प्रसूनैः ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं .. -- . ...पुष्प ।

सुस्पर्शद्युतिरसगंधशुद्धिभंगी वैचित्री हृतहृदयेंद्रियैरमीभिः ।
भूतार्थक्रतुपुरुष त्वदंघ्रियुग्मं सान्नाय्यैरमृतसखैर्यजेय मुख्यैः ॥ १० ॥

ओं ह्रीं . .. .. , ...नैवेद्यं ।

इत्यादि और 'ओंह्रीं' कहकर अक्षत चढावे ॥८॥ " हृदय " इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' बोलकर पुष्प चढावे ॥९॥ " सुस्पर्श " इत्यादि और 'ओं ह्रीं' वोलकर नैवेद्य चढावे ॥१०॥"जाड्या"

जाड्याधायित्ववैरादिव शशिनमपि स्नेहयुक्तं दहद्भिः
सोदर्यैस्त्वर्णयोगात् पटुतररुचिभिः सोदरत्वादिवाक्ष्णाम् ।
प्रेयोभिस्तत्मतापापहतिमिरहरैर्विश्वलोकैकदीपः
श्राद्धश्चंचद्भिरेभिस्तव पदकमले दीपयेयं प्रदीपैः ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं.... . . ..आरार्तिक ।

धूपानि मानसकृदुद्यदुदीरधूमस्तोमोल्लसन्नूनयनहृद्दलनेत्रनासान् ।
दुष्कर्मगर्मुदचिरोद्धृतये धुताघ त्वत्पादपद्मयुगमभ्यहमुत्क्षिपेयम् ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं ... ... धूप ।

शाखापाकप्रणयविलसद्वर्णगंधर्द्धिसिद्ध–
ध्वस्तद्रव्यांतरमधुरसास्वादरज्यद्रसज्ञैः ।
एभिश्चोचक्रमुकरुचकश्रीफलाम्रातकाम्र–
प्रायैः श्रेयः सुखफलफलैः पूजयेयं त्वदंघ्रीन् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं . ... .फलम् ।

इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर दीप चढावे॥११॥ " धूपा " इत्यादि और 'ओंह्रीं' कहकर धूप चढावे ॥ १२ ॥ " शाखा " इत्यादि तथा 'ओंह्रीं' कहकर फल चढावे ॥ १३ ॥ " जलगंधा-

जलगंधाक्षतप्रसूनचरुदीपधूपफलोत्तमै-
र्दधिदूर्वादिमंगलयुतैः पृथुकांचनभाजनार्पितैः ।
रचितमिमं विचित्रतौर्यत्रिककीर्तनजयजयस्वन
स्वस्त्ययनेद्धसभ्यमुदमर्घमनर्घ्यं परिक्षिपेय ते ॥ १४ ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री परब्रह्मणे अनंतानंतज्ञानशक्तये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं अर्घं च निर्वपामीति स्वाहा । इमान् मंत्रान् ह्युच्चारयन् पूजां दद्यात् । एवं सर्वत्र । इति परमपुरुषार्चनविधानम् ।

तद्बीजं परमं सर्वान् विघ्नान् येनाधिवासितं । निहंति मूलमंत्राय तस्मै पुष्पांजलिं क्षिपेत् १५

ओं नमो अरहंताणं ह्रौं स्वाहा । मूलमंत्रपूजा ।

ऋषभः केवलज्योतिरुन्मेषाय स्मरंति यम् । तस्मै केवलिमंत्राय ददामि कुसुमांजलिम् १६

ओं ह्रीं हं अर्हत्सिद्धसयोगिकेवलिभ्यः स्वाहा । केवलि मंत्रपूजा ।

क्षत " इत्यादि तथा " ओंह्रीं " इत्यादि बोलकर अर्घ चढावे ॥ १४ ॥ इसतरह परम पुरुष श्री अर्हंतदेवका पूजन हुआ । " तद्बीज " इत्यादि तथा " ओं नमो " इत्यादि बोलकर मूलमंत्रको पुष्पांजलि चढावे ॥ १५ ॥ " ऋषभः " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " इत्यादि बोल-कर केवलिमंत्रको पुष्प चढावे ॥१६॥ " पुण्यश्रेणी " इत्यादि तथा "ओं अर्हं" इत्यादि पढ-

पुण्यश्रेणिशुद्धदृग्व्रत्तसेवारागाढ्ढ्यास्तत्तदैश्वर्यभुक्ता ।
या संहार्याभ्यर्णयत्युग्रबोधिं पुंसो नंद्यावर्तमालां यजे तं ॥ १७ ॥

ओं अर्हं नंद्यावर्तवलयाय स्वाहा । नंद्यावर्तमालार्चनम् ।

शिवपथमनुबध्नतः समाधि प्रशमवतः सुखपर्वणां प्रबंधम् ।
यववलयमनल्पबुद्धिकाम्यं वरकुसुमांजलिनांजसार्चयामि ॥ १८ ॥

ओं अर्हं यववलयाय स्वाहा । यववलयार्चनम् ।

भित्वा कर्मगिरीन् प्रबुद्धसकलज्ञेयादिसंतः शिवः
पुंसां शुद्धिविशेषतोच्छमनसा सेवाविधौ यस्य ताम् ।
सौख्यं लांति वृषार्पणादघहृतेर्ये वा मलं गालयं–
त्यर्घेणोपचरामि मंगलमहत्तानर्हतोभ्यर्हितान् ॥ १९ ॥

ओं अर्हन्मंगलार्घम् ।

कर नंद्यावर्तमालाको पुष्पोंसे पूजे ॥ १७ ॥ " शिवपथ " इत्यादि तथा ओं अर्हं इत्यादि कहकर यववलयकी पूजा पुष्पोंसे करे ॥ १८ ॥ " भित्वा कर्मगिरी " इत्यादि पढकर अर्हत मंगलको अर्घ चढावे ॥ १९ ॥ " नामध्वसा " इत्यादि पढकर सिद्धमंगलको अर्घ चढावे

नामध्वंसा तैजसादायुरंतादुत्क्रम्यांगादुत्तमौदारिकाच्च ।
ये भत्क्षणां मंगलं लोकमूर्ध्नि प्रद्योतंते तान् भजेऽर्घेण सिद्धान् ॥ २० ॥

ओं सिद्धमंगलार्घम् ।

ये मार्गस्याचारका देशका ये ये चासक्तं ध्यायकाः साधयंति ।
सिद्धिं साधून् मंगलं भावुकानां तान सर्वानप्युद्धभक्त्यार्घयामि ॥ २१ ॥

ओं साधुमंगलार्घम् ।

दृग्बोधवर्धिष्णुदयाभभूष्णोः क्षांत्यादिदोष्णो जगदेकजिष्णो ।
सन्मंगलस्योपहरामि केवलिप्रज्ञप्तधर्मस्य सुवर्मणोऽर्घम् ॥ २२ ॥

ओं केवलिप्रज्ञप्तधर्ममंगलार्घम् ।

निश्चित्य श्रुत्या नैगमेनानुचिंतन् न्यस्याद्वा नामस्थापनाद्रव्यभावैः ।
भव्यैः सेव्यंते ये सदा मुक्तिकामस्तेभ्योऽर्हद्भ्योऽर्घोस्त्वेष लोकोत्तमेभ्यः ॥ २३ ॥

अर्हल्लोकोत्तमार्घं ।

॥ २० ॥ " ये मार्ग " इत्यादि पढकर साधु मंगलको अर्घ चढावे ॥ २१ ॥ " दृग्बोध " इत्यादि पढकर केवलिकथित धर्ममंगलको अर्घ चढावे ॥ २२ ॥ " निश्चित्य " इत्यादि पढकर अर्हल्लोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २३ ॥ " नामादिभि " इत्यादि पढकर सिद्ध लोको-

नामादिभिर्येऽष्टभिरप्यदुष्टैरिष्टाय सति प्रणिधीयमाना ।
विन्यस्य नो आगमभावतस्ताल्लोकोत्तमान् साधु यजेत्र सिद्धान् ॥ २४ ॥

सिद्धलोकोत्तमार्घम् ।

त्र्यूना कोट्योनगारर्षियतिमुनिभिदो ये नवोत्कर्षवृत्त्या
नानादेशान् नृलोके शिवपथमनिशं साधयतः पुनंति ।
घस्रे घस्रे सनीडी भवदमृतरमासंगमा साधवस्ते
भूता भव्या भवांतो विधिवदपचिताः पांतु लोकोत्तमा नः ॥ २५ ॥

साधुलोकोत्तमार्घम् ।

श्रद्धाय व्यवहारतत्त्वरुचिधी चर्यात्मरत्नत्रय
प्रादुःष्यतत्परमार्थतत्रयमयस्वात्मस्वरूपं बुधाः ।
सद्युक्तागमचक्षुषो विदधते लोकोत्तमः केवलि-
प्रज्ञप्तोऽभ्युदयापवर्गफलदः सोऽर्घ्येत धर्मोऽनघः ॥ २६ ॥

केवलिप्रज्ञप्तधर्मलोकोत्तमार्घम् ।

त्तमको अर्घ चढावे ॥ २४ ॥ " त्र्यूना " इत्यादि पढकर साधुलोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २५ ॥ " श्रद्धाय " इत्यादि पढकर केवलिप्रणीतधर्म लोकोत्तमको अर्घ चढावे ॥ २६ ॥

विद्या प्रियाः षोडश दृग्विशुद्धि-पुरोगमार्हन्त्यकृदर्थरागाः ।
यथायथं साधु निवेश्य विद्या-देवीर्यजे दुर्जयदोश्चतुष्काः ॥ ३२ ॥

विद्यादेवीसमुदायपूजाविधानाय समस्तहव्यद्रव्यपूर्णपात्रपरमपुरुषचरणकमलयोरवतार्य पार्श्वतो निवेशयेत् । एव सर्वत्रापि विधेयम् ।

विद्याः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः ।
अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ॥ ३३ ॥
भगवति रोहिणि महति प्रज्ञप्ते वज्रशृंखले स्वचलित्ते ।
वज्रांकुशे कुशलिके जांबूनदिकेस्तदुर्मदिके ॥ ३४ ॥
पुरुधाम्नि पुरुषदत्ते कालि कलाढ्ये कले महाकालि ।
गौरि वरदे गुणर्द्धे गांधारि ज्वालिनि ज्वलज्ज्वाले ॥ ३५ ॥

कहते है । "विद्याप्रियाः ' इत्यादि पढकर विद्यादेवियोंके समूहकी पूजाके लिये सब पूजासामग्रीको अर्हतके चरणकमलोंमें आरतीरूप करके समीपमे रक्खे ॥ ३२ ॥ " विद्या संशब्द " इत्यादि पढकर आह्वाननादि करे ॥ ३३ ॥ " भगवति " इत्यादि तीन श्लोक बोलकर आवाहनआदिपूर्वक हर एककी पूजाके लिये पत्रोंमें पुष्प अक्षत क्षेपण

मानवि देवि शिखडिनि खंडिनि वैरोटि शुकृच्युतेऽच्युतिके ।
मानसि मनस्विनि रते यशसि महामानसीदमुचितं वः ॥ ३६ ॥

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेपु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अथ प्रत्येकपूजा ।

विशोध्य यो चेष्टगुणैः सरागो दृष्टिं विरागश्च परां प्रचक्रे ।
स कुंभशंखाब्जफलांबुजस्था–श्रिताच्यसे रोहिणि रुक्मरुक्तम् ॥ ३७ ॥

ओं ह्रीं रोहिणि इद गधं पुष्प धूप दीपं चरु बलिं स्वस्तिक यज्ञभाग च यजामहे प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

दृग्ज्ञानचारित्रतपस्सु सूरिपुरस्सरेष्वप्यकृतादरो यः ।
तद्भाक्तिकां स्वाश्वगतेलिनीलां प्रज्ञप्तिकेर्चामि सचक्रखड्गाम् ॥ ३८ ॥

ओं ह्रीं प्रज्ञप्ते इद .... स्वाहा ।

रोहिणीको जलादि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ३७ ॥ " दृग्ज्ञान " इत्यादि और ओंह्रीं इत्यादि बोलकर प्रज्ञप्तिको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ३८ ॥ " व्रतानि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वज्रशृंखलाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥३९॥ " ज्ञानोपयोग " इत्यादि, "ओंह्रीं"

व्रतानि शीलानि च जातु योंतर्द्वयाभनग्नो वहिरीहया वा ।
तद्भागिभ स्यापविशृंखलास्ना पीता च तृप्तिं पविशृंखलेस्मिन् ॥ ३९ ॥

ओं ह्रीं वज्रशृंखले ... . ।

ज्ञानोपयोगं व्यदधादभीक्ष्णं यस्तं भजंतं श्रितपुष्पयानाम् ।
वज्रांकुशे त्वा सृणिपाणिमुद्यद्वीणारसां मञ्जु यजे जनाभाम् ॥ ४० ॥

ओं ह्रीं वज्रांकुशे . ... ।

धर्मे रजद्धर्मफलेक्षणे च योजन्मभीस्तस्य मखे शिखिस्था ।
जांबूनदाभा धृतखड्गकुंतां जांबूनदे स्वीकुरु यज्ञभागम् ॥ ४१ ॥

ओं ह्रीं जांबूनदे .... ।

शक्त्यार्थिनां वोधनसंयमांगं यस्त्यागमाधत्त तमानमंतीम् ।
कोकाश्रितां वज्रसरोजहस्तां यजे सितां पूरुषदत्तिके त्वाम् ॥ ४२ ॥

ओं ह्रीं पुरुषदत्ते . . .. . . ।

इत्यादि बोलकर वज्रांकुशाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४० ॥ " धर्मे " इत्यादि तथा "ओंह्रीं" कहकर जांबूनदाको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ ४१ ॥ " शक्त्यार्थिनां " इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर पुरुषदत्ताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥४२॥ " तपांसि " इत्यादि

तपांसि कष्टान्यनिगूढवीर्यश्चरन् जगत्त्रैधमधश्चकार ।
यस्तन्नतार्चा भज कालि भर्मप्रभा मृगस्था मुसलासिहस्ता ॥ ४३ ॥

ओं ह्रीं कालि... ... . ।

चक्रे धिकसाधुषु यः समाधिं तं सेवमाना शरमाधिरूढा ।
श्यामाधनुः खड्गफलास्त्रहस्ता वलिं महाकालि जुषस्व शांत्यै ॥ ४४ ॥

ओं ह्रीं महाकालि... .. .. ।

तपस्विना सयमबाधवर्जं भतिबधतात्मवदापदो यः ।
गोधागता हेमरुगब्जहस्ता गौरि प्रमोदस्व तदर्चनांशैः ॥ ४५ ॥

ओं ह्रीं गौरि.. ।

तेने शिवश्रीसचिवाय योर्हत्, भक्तिं स्थिरां क्षायिकदर्शनाय ।
चक्रासिभ्रत्कूर्मगनीलमूर्ते गृहाण गांधारि तदंघ्रिगंधम् ॥ ४६ ॥

तथा "ओं ह्रीं" बोलकर कालीको अर्घ चढावे ॥ ४३॥ "चक्रेधिक" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर महाकालीको अर्घ चढावे ॥ ४४ ॥ "तपस्विना" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर गौरीको अर्घ चढावे ॥४५॥ "तेने" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर गांधारीको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं गाधारि... .. .. ।

सत्सूरिभक्तिं प्रतिदेवता यो भेजे यजे ज्वालिनि तन्महे त्वाम् ।
शुभ्रां धनुः खेटकखड्गचक्राद्युग्राष्टबाहुं महिषाधिरूढाम् ॥ ४७ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनि . ... ।

शुद्धोपयोगैकफलश्रुतार्थं यो भक्तिमभ्यासबहुश्रुतेषु ।
स्वं धिन्वतो मानवि केकिकण्ठनीलाकिटिस्थासझपत्रिशूला ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं मानवि शिखंडिनि . . .. ।

यो स्पृष्टदृष्टविरोधमर्हदुपज्ञमन्वागममन्वरज्यत् ।
त्वां सिंहगामात्तदर्पसर्पा यज्ञेस्य वैरोटि यजेभ्रनीलाम् ॥ ४९ ॥

ओं ह्रीं वैरोटि ... . ।

॥ ४६ ॥ " सत्सूरि " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर ज्वालामालिनीको अर्घ चढावे ॥४७॥ " शुद्धोप " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर मानवीको अर्घ चढावे ॥ ४८ ॥ " यो स्पष्ट " इत्यादि तथा " ओ ह्रीं " कहकर वैरोटीको अर्घ चढावे ॥४९॥ "पोढौ" इत्यादि तथा " ओ ह्रीं " बोलकर अच्युताको अर्घ चढावे ॥ ५० ॥ " मार्गे " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

पोढौ नयी व्याधिवशोप्यवश्यं नावश्यकं यः समथाद्यपेक्षम् ।
धौतासिहस्तां हयगेच्युते त्वां हेमप्रभांत प्रणतां प्रणौमि ॥ ५० ॥

ओं ह्रीं अच्युते .. . . ।

मार्गं वृषे निश्चलयन विनेयान् प्राभावयत्रः सुतपः श्रुताद्यैः ।
रक्ताहिगा तत्प्रणताप्रणामसुद्रान्विता मानसि मेसि मान्या ॥ ५१ ॥

ओं ह्रीं मानसि .. . ।

योधात्सधर्मस्वतिवत्सलत्वं रक्ता महामानसि तत्प्रणामे ।
रक्ता महाहंसगतेक्षसूत्रवरांकुशस्त्रक्सहितां यजे त्वाम् ॥ ५२ ॥

ओं ह्रीं महामानसि .. .. ।

सत्पूजावलिदानलालितमनाः स्फारस्फुरद्वत्सली–
भावावेशवशीकृताः कृतवियामिष्टाश्च पूर्णाहुतिम् ।
विद्यादेव्य इमां प्रतीच्छत जिनज्येष्ठाप्रतिष्ठांजसा
निष्ठा मुख्यमनोरथान फलवत कर्तुं यतध्वं मम ॥ ५३ ॥

मानसीको अर्घ चढावे ॥ ५१ ॥ "योधात्" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर महामानसीको अर्घ चढावे ॥ ५२ ॥ "सत्पूजा" इत्यादि बोलकर सबको पूर्णाहुति दे ॥ ५३ ॥ "एवं

पूर्णाहुतिः ।

एवं विद्यादेवताश्चंदनाद्यै रोहिण्याद्याः प्रीणिता मंत्रयुक्तैः ।
निघ्नंतोर्हद्यागविघ्नानशेषान् प्रीत्युत्कर्षं तज्जुषां पोषयंतु ॥ ५४ ॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पाजलिं क्षिपेत् । इति विद्यादेवतार्चनविधान । अथ चतुर्विंशतिदलन्यस्त-जिनमात्रिकार्चनम् ।

यासां गर्भगृहे हरिमणिहितश्र्यादिक्रिया सस्कृते
दिव्यैंभोरुहविष्टरे किल निजामाधाय शक्तिं पराम् ।
उद्भूता वृषभादयो जिनवृषा विश्वेश्वरा निष्कला-
स्तांश्चाये जिनमातृकाः कजलन्यस्ताश्चतुर्विंशतिः ॥ ५५ ॥

जिनमातृसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

विद्या " इत्यादि बोलकर इष्ट प्रार्थनाके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार विद्यादेवियोंकी पूजाविधि हुई । अब चौवीस पत्रोंपर स्थित चौवीस जिनमाताओंकी पूजा कहते है । " यासां " इत्यादि श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी पूजाके लिये पहलेकी तरह पूजाद्रव्यको समीप रखे ॥ ५५ ॥ " अंवा " इत्यादि बोलकर आवाहनादिपूर्वक प्रत्येक

अंबाः सशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् ५६

आवाहनादिपुरस्सर प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

साकेताधिपमन्वनूकतिलक—श्रीनाभिराजप्रिये
सद्वृत्ते पुरदेवसंभवभवद्देवेंद्रसेवोत्सवे ।
त्रैलोक्याग्रपितामहि स्तुतगुणे स्तुत्यैरपीहाभिदा
देवि श्रीमरुदेवि भावयमह दृष्टिप्रसादेन मे ॥ ५७ ॥

ओं मरुदेव्यै इद . . ... ।

मन्विक्ष्वाकुमहोनुवद्धदिनकृद्वंशस्फुरत्कोशला—
स्वामिश्रीजितशत्रुपार्थिवमनोरोलंबराजीविनि ।
विष्वग्ववधुजयमदा जितजिनाधीशोद्धवन्यक्कृत—
न्यक्षश्रीप्रसवस्मयेत्र विजये त्वार्चन्नधिस्याजये ॥ ५८ ॥

ओं विजयसेनायै . ।

पूजाकी प्रतिज्ञा करनेकेलिये पत्रोंमें पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ५६ ॥ "साकेता" इत्यादि तथा 'ओं मरुदेव्यै' इत्यादि बोलकर मरुदेवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥५७॥ "मन्विक्ष्वाकु" इत्यादि तथा 'ओं ह्रीं' बोलकर विजयसेनाको अर्घ चढावे ॥५८॥ "स्वावस्ति" इत्यादि

स्त्रावस्तिपुरेश्वर पुरवंशज दृढराज दृढतम मणयाम् ।
शंभवजिनरत्नखानिं सुखिनि सुषेणे महन्महीये त्वाम् ॥ ५९ ॥

ओं सुषेणायै . ...।

साकेतपतौ भवतीमिक्ष्वाकुवरे स्वयंवरे निरताम् ।
अभिनंदनजिनजननीं सिद्धार्थेर्चामि सिद्धार्थाम् ॥ ६० ॥

ओं सिद्धार्थायै... . . .. ।

नाभेयवंशनिपधाद्रिखेरयोध्यानाथस्य मेघरथभूमिपतेः सुपत्नि ।
सेवाप्रपन्नसुमतेः सुमतेः सवित्रि त्वां मंगले भुवनमंगलमर्चयामि ॥ ६१ ॥

ओं सुमंगलायै . . .. ।

मनुकुलजलधींदोर्देवि कौशाम्ब्यधीश–प्रणयिनि धरणस्य क्ष्माविपद्वारणस्य ।
भवदपचितिसज्जेकानपद्मप्रभार्हन्–मणिधरणि सुसीमेस्यान्मयि श्रीरभीमे ॥६२॥

ओं सुसीमायै .... ।

"ओं ह्रीं" बोलकर सुषेणाको अर्घ चढावे ॥५९॥ "साकेतपतौ" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सिद्धार्थाको अर्घ चढावे ॥६०॥ "नाभेय" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सुमंगलाको अर्घ चढावे ॥ ६१ "मनुकुल" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं बोलकर सुसीमाको अर्घ चढावे ॥६२॥

इक्ष्वाकुमुख्यकाशीशसुमतिष्ठनृपमिश्राग् । त्वा यजे पृथिवीपेणे सुपार्श्वजिनमातरम्६३

ओं वसुधरायै . . .. ।

मूर्यान्वयं चंद्रपुराध्विचंद्रं श्रिता महासेनमभेदवृत्त्या ।

चंद्रमभेशप्रभवप्रभावात् कस्य मतीक्षासि न लक्ष्मणेस्मिन् ॥ ६४ ॥

ओं लक्ष्मणायै .. . ।

काकंद्यधीशे पुरुदेववंश्ये सुग्रीवराजे निरुपाधिरागाम् ।

त्वा पुष्पदंतप्रसवाभिरामे यजामि यज्ञे जय रामिकेस्मिन् ॥ ६५ ॥

ओं रामायै . ।

त्वां राजभद्र पुरनृप वृषभान्वयदृढरथानुरागरथा ।

शीतलजिनाभिनंद्ये वंदे वंद्ये सतां सुनंद्येद्य ॥ ६६ ॥

ओं सुनदायै . ।

" इक्ष्वाकु " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर वसुंधराको अर्घ चढावे ॥६३॥ " सूर्यान्वयं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लक्ष्मणाको अर्घ चढावे ॥ ६४ ॥ " काकंद्यधीशे " इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर रामाको अर्घ चढावे ॥६५॥ "त्वा राजभद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर सुनंदाको अर्घ चढावे ॥ ६६ ॥ " प्राणप्रियां " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " बोलकर

प्राणप्रियां सिंहपुरारिजिष्णोः प्रकाशितेक्ष्वाकुकुलस्य विष्णोः ।
त्वां देवि नंदेर्चयतोद्यधन्यं श्रेयोजनन्यस्य जनस्य जन्म ॥ ६७ ॥

ओं विष्णुश्रियै . ... |

यथार्हमिक्ष्वाकुविभक्तसंपच्चंपाधिपश्रीवसुपूज्यवश्याम् ।
श्रीवासुपूज्यप्रजनोपजातजगज्जयेर्चामि जयावति त्वाम् ॥ ६८ ॥

ओं जयायै . . . . |

कांता कांपिल्यनाथार्ककुलश्रीकृतवर्मणः । जय श्यासे यजामि त्वां जननीं विमलेशिनः ६९

ओं सुशर्मलक्ष्म्यै . . . |

साकेतनायकैक्ष्वाकुसिंहसेन नमः सुधाम् । पूजयामि जयश्यामे त्वामनंतजितोंबकाम् ॥७०

ओं सुव्रतायै |

देवीं भानुमहाराजनाम्नो रत्नपुरेशिन. । कुरुवर्यस्य धर्मार्कप्राचीं त्वार्चामि सुप्रभे ॥ ७१ ॥

विष्णुश्रीको अर्घ चढावे ॥ ६७ ॥ "तथार्ह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जयाको अर्घ चढावे ॥ ६८ ॥ "कांता कांपिल्य" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुशर्मलक्ष्मको अर्घ चढावे ॥ "साकेतनाय" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुव्रताको अर्घ चढावे ॥ ७० ॥ "देवीं भानु" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पेरणीको अर्घ चढावे ॥ ७१ ॥ "हस्तिनाग"

ओं ऐरण्यै ।

हस्तिनागनगरे कुरुवशे विश्वसेननृपतेर्दयितायाः ।

शांतिकल्पतरुभोगभुवस्ते प्रार्चयामि चरणद्वयमैरे ॥ ७२ ॥

ओं कमलायै ।

कुरुकुलशशांकहास्तिनपुरपरिदृढशूरसेननृपकांताम् ।

श्रीकांते कुंथुजिनप्रसवित्रीं पूजयामि त्वाम् ॥ ७३ ॥

ओं सुमित्रायै ।

श्रीहास्तिसेनकुरुपस्य पत्नीं सुदर्शनाद्यस्य सुदर्शनस्य ।

मात: सवित्रीमरतीर्थकर्तुस्त्वां मित्रसेनेत्र महे महामि ॥ ७४ ॥

ओं प्रभावत्यै . ... . . ।

मिथिलारक्षकेक्ष्वाकुप्रभुकुंभाग्रवल्लभाम् । प्रजापति यजे माल्लिजिने त्वां प्रजापतिं ॥ ७५ ॥

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कमलाको अर्घ चढावे ॥ ७२ ॥ "कुरुकुल" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुमित्राको अर्घ चढावे ॥ ७३ ॥ "श्रीहास्तिसेन" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रभावतीको अर्घ चढावे ॥७४॥ "मिथिलार" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पद्मावती को अर्घ चढावे ॥ ७५ ॥

ओं पद्मावत्यै . . .., ... |

हरिवंशवंशसुमणे राजग्रहेशप्रियां सुमित्रस्य ।

मुनिसुव्रतजिनजननीं सोमे सौम्यां यजामि त्वाम् ॥ ७६ ॥

ओं-वप्रायै . ... |

मिथिलानाथनृपान्वयविजयमहाराजसंज्ञनृपराज्ञीम् ।

सपूजयामि नमिजिनजनयित्रीं वप्पिले भवति ॥ ७७ ॥

ओं विनीतायै .. . . |

द्वारवतीपरमेश्वरहरिवंशोत्तरसमुद्रविजयवशाम् ।

मातरमरिष्टनेमेः शिवदेवि यजे शिवाय त्वाम् ॥ ७८ ॥

ओं शिवदेव्यै . . .. |

काशीश्रियस्त्यायिनि विश्वसेने प्रेमाकुलामुग्रकुलां वरार्के ।

पार्श्वप्रसूत्युद्धृतविश्वलोकां ब्रह्माह्वये देवि महाम्यहं त्वाम् ॥ ७९ ॥

"हरिवश" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वप्राको अर्घ चढावे ॥ ७६ ॥ "मिथिला" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर विनीताको अर्घ चढावे ॥ ७७ ॥ "द्वारवती" इत्यादि और ओं ह्रीं पढकर शिवदेवीको अर्घ चढावे ॥ ७८ ॥ "काशीश्रिय" इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ओं देवदत्तायै . . . . ।

स्वर्लक्ष्मीमदखंडिकुंडनगरश्रीकाममर्माविधो
नाथानुकाविशेषकस्य माहिषी सिद्धार्थधात्रीपतेः ।
अंबां दुर्दमदुःषमासहचरद्धर्मश्रुतेः सन्मते-
र्यायाडिम प्रियकारिणि प्रियकरी त्वाास्मिन् प्रातिष्ठोत्सवे ॥ ८० ॥

ओं प्रियकारिण्यै इद . . . . ॥

नाभेयाद्यर्हदंबाः स्वभिहितमरुदेव्यादयः कोशलादि
क्ष्माभृन्नाभ्यादिदिव्यो हृदयसरसिजे भासमानाःसमर्च्य ।
पूर्णार्घे प्राप्यमाणा निजतनुजगुणग्रामगाढानुरागैः
प्रत्याहृत्यांतरायान् प्रथयत जगतां यूयमुच्चैः प्रमोदम् ॥ ८१ ॥

इति पूर्णार्घम् ।

इत्येता जिनमातरः सुदृगनुस्यूताखिलश्रीघना—
श्लेषानंदनिदानपुण्यरचना चार्च्यश्चतुर्विंशतिः ।

बोलकर देवदत्ताको अर्घ चढावे ॥ ७९ ॥ " स्वर्लक्ष्मी " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्रिय-कारिणीको अर्घ चढावे ॥ ८० ॥ ' नाभेया " इत्यादि पढकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ८१ ॥

भक्त्यास्मिन्नखिलक्षयज्ञसमयेऽस्माभिः समभ्यर्चिताः

प्रत्यूहानपहृत्य विघ्नपहितां तात्सिद्धिमातन्वताम् ॥ ८२ ॥

एतद्वंदनामुद्रया पठित्वा भक्त्या पञ्चाङ्गप्रणाम कुर्यात् । इति जिनमातृपूजनविधानम् । अथ द्वात्रिंशत्पुत्रारोपितशक्रार्चनम् ।

तत्तादृक्सुतपोनुषंगमपृथक् पुण्यानुभावोद्भव

स्वर्गैश्वर्यपराभिमानिकरसश्रोतोवगाहोत्सवान् ।

हृत्वान्यस्य यस्य मन्त्रविहिता सतीन् कराब्जोल्लस—

द्यज्ञांगोल्बणितश्रुवीन् सुरपतीन् द्वात्रिंशत संयजे ॥ ८३ ॥

त्रिभुवनपतियज्ञे व्यापृतानां व्यवायान् खरमृदुकुदृशां तु द्वेपमस्पष्टतां च ।

प्रतिनियतनियोगव्यक्तदुर्वारशक्तीन् व्युपशमयितुमिंद्रानद्य संमानयामः ॥ ८४ ॥

द्वात्रिंशदिंद्रसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात्

" इत्येता " इत्यादि श्लोक पढकर वंदनामुद्रासे पचांग नमस्कार करे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार जिनमाताओंकी पूजाविधि कही गई है । अब बत्तीस इंद्रोंकी पूजा कहते हैं–" तत्तादृक् " इत्यादि दो श्लोकोंसे बत्तीस इन्द्रोंकी समुच्चयपूजा करनेके लिये पूर्वकी तरह कही हुई विधि करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ " इन्द्रा " इत्यादि श्लोक पढकर आवाहन आदि पूर्वक हर एककी पूजा

इद्राःसंशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात ॥८५

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अथासुरेन्द्रादीनां पृथक् पूजा ।

कोणस्थमग्न्यादिदिग्द्वयसप्त कोणाग्रनीक दृढमुद्गराख्यम् ।
विशिपपादांबुजसक्त्यक्त्यच्चूडामणिं चारु यजेऽसुरेंद्रम् ॥ ८६ ॥

ओं ह्रीं असुरकुमारेन्द्राय इदं जलं गंधं .. ..

कूर्माश्रितं सप्तदिगाश्रिनोरु नावादिसैन्यं फणिपाशपाणिम् ।
जिनांघ्रिपुष्पाक्रफलाक्रमौलिं नागेंद्रमुन्निद्रमुदर्चयामि ॥ ८७ ॥

ओं ह्रीं नागकुमारेंद्राय इदं ...

ताक्ष्यादिकक्षाकुलसप्तदिक्क धौतासिदंडं द्विरदाधिरूढम् ।
यजे सुपर्णेन्द्रमपास्तमोहविपद्रपादाप्तशिरः सुपर्णम् ॥ ८८ ॥

करनेके नियमके लिये पत्तोपर पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ८५ ॥ अत्र सुरेंद्रोंकी जुदी २ पूजा कहते हैं । " कोणस्थ " इत्यादि तथा " ओ ह्रीं " इत्यादि बोलकर असुरेंद्रको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ८६ ॥ " कूर्माश्रित " इत्यादि तथा ओ ह्रीं " बोलकर नागकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८७ ॥ " ताक्ष्यादिकक्षा " इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर सुपर्णकुमार इंद्रको

भक्त्यास्मिन्नखिलक्ष्मयज्ञसमयेऽस्माभिः समभ्यर्चिताः

प्रत्यूहानपहृत्य त्रिष्टपाहितां तात्सिद्धिमातन्वताम् ॥ ८२ ॥

एतद्वदनामुद्रया पठित्वा भक्त्या पचागप्रणाम कुर्यात । इति जिनमातृपूजनविधानम्र । अथ द्वात्रिंशत्पुत्रारोपितशक्रार्चनम् ।

तत्तादृक्सुतपोनुपंगजपृथक् पुण्यानुभावोद्भव
स्वर्ङैश्वर्यपराभिमानिकरसश्रोतोवगाहोत्सवान् ।
हृत्वान्यस्य यस्य मत्राविहिता सतीन् कराब्जोल्लस—
द्यज्ञांगोल्वणितद्युवीन् सुरपतीन् द्वात्रिंशत संयजे ॥ ८३ ॥

त्रिभुवनपतियज्ञे व्यापृतानां व्यवायान् खरमृदुकुदृशां तु द्वेपमस्पष्टतां च ।
प्रतिनियतनियोगव्यक्तदुर्वारशक्तीन् व्युपशमयितुमिंद्रानद्य संमानयामः ॥ ८४ ॥

द्वात्रिंशदिंद्रसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात्

" इत्येता " इत्यादि श्लोक पढकर वदनामुद्रासे पचाग नमस्कार करे ॥ ८२ ॥ इसप्रकार जिनमाताओंकी पूजाविधि कही गई है । अव वत्तीस इंद्रोंकी पूजा कहते हैं—" तत्तादृक् " इत्यादि वो श्लोकोंसे वत्तीस इंद्रोंकी समुच्चयपूजा करनेके लिये पूर्वकी तरह कही हुई विधि करे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ " इंद्रा " इत्यादि श्लोक पढकर आवाहन आदि पूर्वक हर एककी पूजा

इद्राःसंशब्दये युग्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान वो यजे प्रत्येकमादरात ॥८५

आवाहनादिपुरस्सरं प्रत्येकपूजाप्रातिज्ञानाय पत्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अथासुरेन्द्रादीनां पृथक् पूजा ।

कोणस्थमग्न्यादिदिगुग्रसप्त कोणाग्रनीक दृढमुद्गरास्त्रम् ।
विशेषणादांबुजसक्तरक्तच्चूडामणिं चारु यजेऽसुरेंद्रम् ॥ ८६ ॥

ओं ह्रीं असुरकुमारेन्द्राय इद जल गध . . .. .. ।

कूर्मश्रितं मसदिगाश्रिनोरु नावादिसैन्यं फणिपाशपाणिम् ।
जिनांघ्रिपुष्पांकफलांकमौलिं नागेंद्रमुन्निद्रमुदर्चयामि ॥ ८७ ॥

ओं ह्रीं नागकुमारेंद्राय इद —— . .. .. ।

तार्क्ष्यादिकक्षाकुलसप्तदिक्क धौतासिदडं द्विरदाधिरूढम् ।
यजे सुपर्णेन्द्रमपास्तमोहविपद्रपादाप्तशिरः सुपर्णम् ॥ ८८ ॥

इन्द्रोंको बुलाकर बिठाके ॥ ८५ ॥ अत्र सुरेंद्रोंकी जुदी २ पूजा करनेके नियमके लिये पत्तोंपर पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ८५ ॥ अब सुरेंद्रोंकी जुदी २ पूजा कहते हैं । " कोणस्थ " इत्यादि तथा " ओं ह्रीं " इत्यादि बोलकर असुरेंद्रको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ८६ ॥ " कूर्मश्रितं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं " बोलकर नागकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८७ ॥ " तार्क्ष्यादिकक्षा " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सुपर्णकुमार इंद्रको

ओं ह्रीं सुपर्णकुमारेंद्राय इदं . . .. . . ।

सप्तासनसप्तगजादिसप्त सप्तेष्टयष्ट्योत्कटसप्तकाष्टम् ।
द्वीपेंद्रमर्हाम्यहमर्हदंघ्रिनखेंदुलक्ष्मीकृतमौलिपीलुम् ॥ ८९ ॥

ओं ह्रीं द्वीपकुमारेंद्राय इद . . . ... ।

जलेभयात्रो मकरादिचक्रव्याकीर्णदिक्को वडिदंडचंडः ।
ईष्टां मदिष्टेरुदधीश्वरोर्हत्क्रमांशुरज्यन्मकरांकमूर्द्धा ॥ ९० ॥

ओं ह्रीं उदधिकुमारेंद्राय इद . .. . . ।

सिंहाधिरूढं धृतधौतखड्गं खड्गाद्यधिष्ठातृसुरैः परीतम् ।
अर्हत्पदार्धीकृतमौलिवज्रं संभावयामि स्तनितामरेंद्रम् ॥ ९१ ॥

ओं ह्रीं स्तनितकुमारेंद्राय इद. .

वराहवाहं करभादिदडचंडं तडिद्दंडकरालहस्तम् ।
छायाछलस्वस्तिकरत्कृतार्हत्पादासनं विद्युदिनं धिनोमि ॥ ९२ ॥

अर्घ चढावे ॥ ८८ ॥ " सप्तासन " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर द्वीपकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ८९ ॥ " जलेभयात्रो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर उदधिकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९० ॥ " सिंहाधिरूढ " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर स्तनितकुमारको अर्घ चढावे ॥ ९१ ॥ " वराहवाहं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर विद्युत्कुमारको अर्घ चढावे ॥ ९२ ॥ " दिक्कुं-

ओं ह्रीं विद्युत्कुमारेंद्राय इदं ....।

दिक्कुंजरस्थं परिघच्छतारिं सिंहाश्वनंद्रीचरसप्तचक्रम् ।

नतिक्षणार्हच्चरणांकुशांकाकरांकासिंहं पयजे दिगेंद्रम् ॥ ९३ ॥

ओं ह्रीं दिक्कुमारेंद्राय इदं . . ..

स्तंभाधिरोहं शिबिकादिसैन्यव्याप्ताशमुल्काग्युधमग्निमौलिं ।

अग्नींद्रमर्चामि जिनक्रमाग्रश्रीकुंभलालायितमौलिकुंभम् ॥ ९४ ॥

ओं ह्रीं अग्निकुमारेंद्राय इदं . . .. ।

कुरंगयुग्य नगहेतिमश्व प्रष्टामरानीकपरीतमूर्तिम् ।

वायेनिलेंद्रं नतमस्तकाब्जच्छायैर्जिनांघ्रिस्थलमंकयतम् ॥ ९५ ॥

ओं ह्रीं वातकुमारेंद्राय इदं .... ।

सैन्यैरश्वरथेभपत्तिकलभाग्र्यादिभिःकौणनौ

तार्क्ष्ये भास्वरगंडकोष्ठकरटिद्विपाप्ययानार्वगैः ।

जरस्थ " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर दिक्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९३ ॥ " स्तंभाधिरोहं " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अग्निकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९४ ॥ " कुरंगयुग्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वातकुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९५ ॥ सैन्यै " इत्यादि दो श्लोक बोल-

सप्ता भाक्तनसप्तकक्रमहृताश्रूडाश्मदर्शीखगे—
न्द्रेत्यब्जघ्नरुवर्द्धमानकमृगेट्कुंभाश्वमौलिध्वजाः ॥ ९६ ॥
असुरफणिसुपर्णद्वीपवार्ध्यष्टविद्युद्दिगनलपवनानां भावनानामधीशाः ।
दशविधपरिवर्गोपरुरत्नाढ्यधर्माभरणभवनभाजामस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ ९७ ॥
पूर्णाहुति । इति भावनेंद्रार्चनम् ।
अथेह सर्वज्ञपदारविंदद्विरेफमभ्युद्यदरेफवेषम् ।
नागायुधं किंनरशक्रमिष्टिमष्टापदाधिष्ठितमर्पयामि ॥ ९८ ॥
ओं ह्रीं किंनरेंद्राय इद ... . . ।
नेतुं स्वसंज्ञार्थमिवान्यथात्वं शुश्रूषमाणं पुरुषोत्तमांघ्री ।
आलापये किं पुरुषेन्द्रमुद्यज्जयश्रियसायकमुद्वहंतम् ॥ ९९ ॥
ओं ह्रीं किंपुरुषेंद्राय इद ... . ।

कर पूर्णाहुति दे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ इसप्रकार भवनवासी इन्द्रोंकी पूजाविधि हुई । "अथेह" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किन्नरेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९८ ॥ "नेतु" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंपुरुषेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ९९ ॥ "मुमुक्षु" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मुमुक्षुशार्दूलमदूरमुक्ति श्रीमेयसीं मश्रयतः श्रयंतम् ।
शार्दूलमारूढमयोग्रापिष्ट द्विष्टं महामहोरगेंद्रम् ॥ १०० ॥

ओं ह्रीं महोरगेंद्राय इद . . ..

गंधर्ववृंदारकगीयमानशुभ्रोरुकीर्तिश्रितमर्हदीशम् ।
मीणामि गंधर्वहरिं मरालकीलागतिक्लिष्टमरालपत्र ॥ १०१ ॥

ओं ह्रीं गन्धर्वेन्द्राय इद ... ।

आराद्वज्ञातनिधिव्रजार्हद्देवक्रमाराध्यसशकसेवम् ।
यक्षामि यक्षेद्रमाधिष्ठिताहिपृष्टफाणिश्लिष्टनिधीद्धदप्यम् ॥ १०२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेन्द्राय इद . . .. ।

आनंक्ष्यमाणं क्षपिताक्षरक्षः रक्षैः परं पूरुषमाश्रिताय ।
श्रितोग्रहस्ताय हरिश्रिताय रक्षोधिराजाय बलिं ददामि ॥ १०३ ॥

ओं ह्रीं राक्षसेंद्राय इदं ... .. ।

महोरगेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०० ॥ " गधर्व " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गंधर्वेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०१ ॥ " आराध्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०२ ॥ " आनक्ष्य " इत्यादि तथा ओ ह्रीं कहकर राक्षसेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०३ ॥

भूतेशिने भूतदयामयाय भूतार्थनिष्ठायमुहुर्नमंतम् ।
भूतेंद्रमाक्रांततुरंगराजं वलिमदानेन सुखाकरोमि ॥ १०४ ॥

ओं ह्रीं भूतेंद्राय इद ... ... |

ध्येयं सतां मोहपिशाचशांत्यै शांतैकनेतारमुपासितारम् ।
हेमांडकोड्डुमरदंडचंडं पिशाचशक्रं वलिना धिनोमि ॥ १०५ ॥

ओं ह्रीं पिशाचेंद्राय इद ... ... |

किन्नरकिंपुरुषगरुडगंधर्वनिधिपनिशाटभूतपिशाचैः ।
प्रतिपन्नशासनानां जिनशासन महिमभासनव्यसनानाम् ॥ १०६ ॥

ताभ्यां द्वाभ्यां प्रियाभ्यामपहृतमनसां द्विद्विदेवीसहस्र-
प्रेमार्द्रार्द्राक्षिभाजां पुरनिकरतताष्टांजनादिक्षितीनाम्
नित्योत्पादादिभौमव्रजविनयसृजां लोकरक्षैकदोष्णां
पूर्णापत्योत्सवानां युगपतिभिरसावस्तु पूर्णाहुतिर्वः ॥ १०७ ॥

" भूतेशिने " आदि तथा ओं ह्रीं बोलकर भूतेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १०४ ॥ " ध्येयं सतां " इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर पिशाचेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०५ ॥ " किन्नर " इत्यादि दो श्लोक पढकर पूर्णाहुति दे ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इस प्रकार व्यतरेंद्रका पूजन हुआ । " सार्ह-

द्राम्या पूर्णाहुतिः । इति व्यतरेन्द्रार्चनम् ।

सार्द्धचैत्यग्रहांकरम्यनगरोत्तानार्धगोलाकृति—
प्रव्यासांक्रमणीद्धमंडलकरव्रातामृतैः प्लावयन् ।
भूलोकं हरिवाहनः परिवृतो भोडुग्रहोपग्रह—
वृद्धैः कुंतकरश्चरस्थिरविभूपेतोथ सोमोऽर्च्यते ॥ १०८ ॥

ओं ह्रीं सोमेंद्राय इद . . ..

हित्वाधो दश योजनानि गगने तारा सदैकाध्वगा
मार्गैर्नित्यनवैश्चरन्निह करोति द्यां निशां य. स्थितिः ।
तप्तस्वर्णभलोहितासपुरभृद्दिवः स सूर्यश्चरै—
र्नालोकैरपरैः स्थिरैश्च रविभिः सत्रार्चतेर्चं जिनम् ॥ १०९ ॥

ओं ह्रीं सुर्येंद्राय इद .. . . ।

विंशत्येकयुतानि योजनशतान्येकादशाद्रीश्वरं
मुक्त्वा क्ष्मामपि तच्छतानि त्रिदशान्यष्टौ विमानानि खे ।

चैत्य " इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर सोमेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०८ ॥ " हित्वाधो " इत्यादि तथा ओ ह्रीं बोलकर सूर्येंद्रको अर्घ चढावे ॥ १०९ ॥ " विंशत्येक " इत्यादि तथा ओं ह्रीं

उद्योतच्छतमाघनोदधिदशोपेतं ततान्याश्रितान्
ज्योतिष्काननुगृह्णतोऽजरवयः पूर्णाहुतिर्वोर्प्यये ॥ ११० ॥

पूर्णाहुतिः । इति ज्योतिरिंद्रार्चनम् ।

एकत्रिंशद्युपटलमितेष्टादशे यास्कनाम्नि
श्रेणीवद्धे सततवसतिः पंचवर्णैर्विमानैः ।
तिस्रः श्रेणीर्वसुगुणचतुर्लक्षसंख्यैरवंतं
सौधर्मं प्राक् स्वरुकामिशार्चाम्यथैरावणस्थम् ॥ १११ ॥

ओं ह्रीं सौधर्मेंद्राय इदं

तद्वच्छ्रेणीवद्धमाग्योदगेकश्रेणीद्रोष्टाविंशति पंचवर्णाः ।
यक्षाः पाति स्वःपुरीर्यो जिनांघ्रिस्रक्चूलं तं यष्टुमीशानमीशे ॥ ११२ ॥

ओं ह्रीं ईशानेंद्राय इद

बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ ११० ॥ इसतरह ज्योतिष्कदेवेंद्रका पूजन हुआ। " एकत्रिंश " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर सौधर्मेन्द्रको अर्घ चढावे ॥ १११ ॥ " तद्वच्छ्रेणी " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ईशानेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११२ ॥ " सतस्वपाक " इत्यादि तथा ओं

सप्तस्वपाकद्युपटलेषु सभाह्वमंत्ये श्रेणीनिबद्धमधितिष्ठति षोडश यः ।
त्रिश्रेणिगाद्विपविकृष्णविमानलक्ष-सार्चा नमन् जिनमुपैतु सनत्कुमारः ॥ ११३ ॥

ओं ह्रीं सनत्कुमारेंद्राय इद . . .. ।

एकाष्टकृष्णोनविमानलक्षश्रेणीशमर्हत्प्रभुमाभजंतम् ।
महामि माहेंद्र मुदा वसंतं दिव्यास्पदः षोडश एव तद्वतः ॥ ११४ ॥

ओं ह्रीं माहेंद्राय इद . .. . ।

पात्या स्थितोऽपाक्पटले चतुर्थे चतुर्दशं ब्रह्मपदं चतस्रः ।
यः कृष्णनीलोनविमानलक्षा ब्रह्मेंद्रमर्चामि तमाप्तभक्तम् ॥ ११५ ॥

ओं ह्रीं ब्रह्मेंद्राय इद .. . ...

द्वैतीयैके द्वादशं लांतवाख्यं श्रेणीबद्धं यः श्रितो प्राक्छुचक्रे ।
लक्षार्धं प्राग्भानि भुंक्ते विमानान्यर्हद्भक्तं तं यजे लांतवेंद्रम् ॥ ११६ ॥

ह्रीं बोलकर सनत्कुमारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११३ ॥ "एकाष्ट" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर माहेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११४ ॥ "पात्या स्थितो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्मेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११५ ॥ "द्वैतीयैके" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर लांतवेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११६ ॥ "शुक्रेंद्र" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शुक्रेंद्रको अर्घ चढावे

ओं ह्रीं लतवेन्द्राय इद . . . . . . ।

शुक्रेंद्रमैकपटलिक चत्वारिंशत्सहस्रपीतासितद्याम् ।
दशममहाशुक्रोदकश्रेणीवद्धास्पदं यजे जिनभक्तम् ॥ ११७ ॥

ओं ह्रीं शुक्रेन्द्राय इद . . . ।

पीतार्जुनैकेंद्रकषट्‌सहस्रविमानभुक्ति जिनपूजनोक्तम् ।
यजे शतारेन्द्रमिहाष्टमेहं स्थितं सहस्रार उदाग्विमाने ॥ ११८ ॥

ओं ह्रीं शतारेंद्राय इद . . ।

सप्तश्वेतौकः शतैः षट् पटल्यां षष्ठ्यां अेकश्रेणिपाये पटल्याम् ।
षष्टे तिष्ठंत्यादे दाक्षिणोदक्श्रेण्योश्चाये ताश्चतुःकल्पशक्रान् ॥ ११९ ॥

तत्रानतेंद्रं जिनमाग्रहस्य संस्कारविद्रावितमोहतंद्रम् ।
अप्यद्भुतैर्भोगसुखैरलुप्तश्रापण्यशर्मस्मृतिमर्चयामि ॥ १२० ॥

ओं ह्रीं आनतेंद्राय इद . . . ।

॥ ११७ ॥ "पीतार्जुन" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर शतारेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ११८ ॥
"सप्तश्वेतौ" इत्यादि दो श्लोक और ओं ह्रीं बोलकर आनतेंद्रको अर्घ चढावे ॥११९॥१२०॥

स्वभोगवर्गप्रसृताक्षवर्गोऽप्युदीच्यदेशासुखैः प्रसक्तः ।
अर्हत्प्रभौ व्यक्तविचित्रभावो भजत्विमां प्राणतजिष्णुरिज्याम् ॥ १२१ ॥

ओं ह्रीं प्राणतेंद्राय इदं .. .. ।

स्थितोऽपि मौले वपुषि प्रदेशैस्तनूमुदीचीमनुसंदधानः ।
भजत्यनंतर्हितवाजिनं यस्तं प्रीणम्यर्हणयारणेंद्रम् ॥ १२२ ॥

ओं ह्रीं आरणेंद्राय इदं . .. . ।

कदाचिदप्यच्युतमुच्यतेऽभक्तेश्चतेर्दुश्चरितात्परीतम् ।
एकान्नषष्ट्यग्रशतं विमानान्यधीशितारं प्रयतेऽच्युतेंद्रम् ॥ १२३ ॥

ओं ह्रीं अच्युतेंद्राय इदं . . . .. ।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रवासवब्रह्मेंद्रा
लांतवशुक्रशतारानतशक्रा प्राणतारणाच्युतशक्राः ।

" स्वभोगवर्ग " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर प्राणतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२१ ॥ " स्थितो पि " इत्यादि और ओं ह्रीं बोलकर आरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२२ ॥ " कदाचिद " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अच्युतेंद्रको अर्घ चढावे ॥ १२३ ॥ " सौधर्म " इत्यादि दो श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ " इत्थं " इत्यादि श्लोक कहकर इष्टप्रार्थनाके

बालाग्रातरमेरुचूलिकषयोवायूभयोस्त्रभातिभूषांगनाः
कल्पेंद्राः प्रददामि वोर्धिताजिना यज्ञेश्र पूर्णाहुतिम् ॥ १२४ ॥
ये चत्वारिंशतेंद्रैर्भवनदिविषदा व्यंतराणां द्वियुक्त—
त्रिंशत्संख्यैर्ग्रुधाम्ना त्रिगुणवमुतैः सिंहसम्राट् शशीनैः ।
अभ्यर्च्यंते चतुर्भिः समवसृतिपितैस्तन्मखारंभमुख्या
दद्यां पूर्णाहुतिं वो भवनवनसुरज्योतिरुद्धामरेंद्राः ॥ १२५ ॥

द्वात्रिंशत्पूर्णाहुतिः ।

इत्थ यथोचितविधिमतिपत्तिपूर्वयज्ञांशदानभृशदीपितपक्षपाताः
सर्वंक्षयज्ञपरिपूर्तिदुरीहितं मे मुख्यानुषंगिकफलैः प्रथयंतु शक्राः ॥ १२६ ॥
इष्टप्रार्थं नाय पुष्पाजलिंक्षिपेत्। इति द्वात्रिंशादिद्रार्चनविधान

अथ पत्रातरालस्थापितचतुर्विंशतियक्षार्चनम्

नाभेयाद्यपसव्यपार्श्वविहितन्यासांस्तदाराधका
अव्युत्पन्नदृशः सदैहिकफलप्राप्तीच्छयार्चंति यान् ।
आमंत्र्य क्रमशो निवेश्य विधिवत्पत्रांतरालेषु तान्
कृत्वारादधुना धिनोमि बलिभिर्यक्षांश्चतुर्विंशतिम् ॥ १२७ ॥

लिये पुष्पांजलिको क्षेपण करे ॥ १२६ ॥ इस तरह बत्तीस इंद्रोंकी पूजाविधि हुई । अब

गोमुखादिचतुर्विंशतियक्षसमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्षाः संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः।अत्रोपविशतैतान् वो यजे प्रत्येकमादरात् १२८

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रातराले पुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

सव्येतरोर्ध्वकरदीप्रपरश्वधाक्षसूत्रं तथा धरकराङ्कफलेष्टदानम् ।
प्राग्गोमुखं वृषमुखं वृषगं वृषांकभक्तं यजे कनकभं वृषचक्रशीर्षम् ॥ १२९ ॥

ओं ह्रीं गोमुखयक्षाय इद .... ।

चक्रत्रिशूलकमलांकुशवामहस्तो निस्त्रिंशदंडपरशूद्यवराण्यपाणिः ।
चामीकरद्युतिरिभांकनतो महादियक्षोऽर्च्यतो जगतश्चतुराननोऽसौ ॥ १३० ॥

पत्रके मध्यमें स्थापन किये गये चौवीस यक्षोंकी पुजाविधि कहते हैं। "नाभेयाद्य" इत्यादि श्लोक बोलकर गोमुखादि चौबीस यक्षोंकी समुच्चयपूजामें पहलेकी तरह विधि करे ॥ १२७॥ "यक्षा सं" इत्यादि श्लोक बोलकर आवहनादि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्रके मध्यमें पुष्प अक्षतोंको डाले ॥ १२८ ॥ अब हरएककी पूजा कहते हैं– "सव्येतरो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गोमुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १२९ ॥ "चक्र त्रिशूल" इत्यादि ओं ह्रीं बोलकर महायक्षको अर्घ चढावे ॥ १३० ॥ "चक्रासि" इत्यादि

ओं ह्रीं महायक्षाय इद .... . ।

चक्रासिसृण्युपगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् श्रितकार्तिकाच ।
वाजिध्वजमप्रुनतः शिखिगोंजनाभ-रुयक्षः प्रतीक्षतु बालिं त्रिमुखाख्ययक्षः ॥ १३१ ॥

ओं ह्रीं त्रिमुखाख्याय इद . . . ।

प्रेंखद्धनुःखेटकवामपाणिं सकंकपत्रास्यपसव्यहस्तम् ।
श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ १३२ ॥

ओं ह्रीं यक्षेश्वरयक्षाय इद . .. . ।

सर्पोपवीत द्विपपन्नगोर्द्धकरं स्फुरद्दानफलान्यहस्तम् ।
कोकांकनम्रं गरुडाधिरूढं श्रीतुम्बरं श्यामरुचिं यजामि ॥ १३३ ॥

ओं ह्रीं तुम्बरयक्षाय इद .. ‘ ।

तथा ओं ह्रीं बोलकर त्रिमुखयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३१ ॥ "प्रेंखद्धनुः" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर यक्षेश्वरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३२ ॥ "सर्पोपवीत" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर तुंबरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १३३ ॥ "मृगारूढं" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर

मृगारुहं कृतकरापसव्यकरं सखेटा भयसव्यहस्तम् ।
श्यामांगमब्जध्वजदेवसेव्यं पुष्पाख्ययक्षं परितर्पयामि ॥ १३४ ॥

ओं ह्रीं पुष्पयक्षाय इद |

सिंहाद्रिरोहस्य सदंडशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य ।
कृष्णत्विषः स्वस्तिककेतुभक्तेर्मातंगयक्षस्य करोमि पूजाम् ॥ १३५ ॥

ह्रीं मातंगयक्षाय इद |

यजे स्वधित्युग्रफलाक्षमाला वराकवामान्यकरं त्रिनेत्रम् ।
कपोतपत्रं प्रभयाख्यया च श्यामं कृतेदुध्वजदेवसेवम् ॥ १३६ ॥

ह्रीं श्यामयक्षाय इद |

सहाक्षमाला वरदानशक्तिफलाय सव्यापरपाणियुग्मः ।
स्वारूढकूर्मो मकरांकभक्तो गृह्णातु पूजामजितः सिताभः ॥ १३७ ॥

ा अर्घ चढावे ॥ १३४ ॥ " सिंहादि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर मातंगयक्षको
वे ॥ १३५ ॥ ' यजेस्वधि ' इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर श्यामयक्षको अर्घ
॥ १३६ ॥ सहाक्षमाला " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर अजितयक्षको अर्घ चढावे
७ ॥ " श्रीवृक्ष " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ब्रह्म यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३८ ॥

ओं ह्रीं अजितयक्षाय इद ... ... ।

श्रीवृक्षकेतननतो धनुर्दंडखेटवज्राढ्यसव्यसय इंदुसितोंबुजस्थः ।
ब्रह्मासरश्वाधितिखड्ग वरप्रदानव्यग्रान्यपाणिरुपयातु चतुर्मुखोर्चाम् ॥१३८॥

ओं ह्रीं ब्रह्मयक्षाय इदं ।

त्रिशूलदंडान्वितवामहस्त करेक्षसूत्रं त्वपरे फले च ।
बिभ्रत्सितो गंडककेतुभक्तो लात्वीश्वरोर्चा वृषगस्त्रिनेत्रः ॥ १३९ ॥

ओं ह्रीं ईश्वरयक्षाय इदं

शुभ्रो धनुर्वभ्रुफलाढ्यसव्यहस्तोन्यहस्तेषु गदेष्टदानः ।
लुलायलक्ष्मप्रणतास्त्रिवक्त्रः प्रमोदतां हंसचरः कुमारः ॥ १४० ॥

ओं ह्रीं कुमारयक्षाय इद ।

यक्षो हरित्सपरशूपरिमाष्टपाणिः कौक्षेयकाक्षमणिखेटकदंडमुद्राः ।
बिभ्रच्चतुर्भिरपरैः शिखिगः किरांकनम्रः प्रतृप्यतु यथार्थचतुर्मुखाख्यः १४१

" त्रिशूलदंड " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर ईश्वर यक्षको अर्घ चढावे ॥ १३९ ॥ " शुभ्रो-धनु " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कुमारयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४० ॥ " यक्षो हरित् " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर चतुर्मुख यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४१ ॥ " पातालक "

ओं ह्रीं चतुर्मुखयक्षाय इदं ।

पातालकः सशृणिशूलकजापसव्यहस्तः कपाहलफलांकितसव्यपाणिः ।
मेधाध्वजैकशरणो मकराधिरूढो
रक्तोर्च्यतां त्रिफणनागशिरास्त्रिवक्रम् ॥ १४२ ॥

ओं ह्रीं पातालयक्षाय इदं ।

सचक्रवज्रांकुशवामपाणिः समुद्गराक्षालिवरान्यहस्तः ।
प्रवालवर्णस्त्रिमुखो झषस्थो वज्रांकभक्तोंचतु किंनरोऽर्च्याम् ॥ १४३ ॥

ओं ह्रीं किंनरयक्षाय इदं । ।

वक्रानधोऽधस्तनहस्तपद्मफलोन्यहस्तार्पितवज्रचक्रः ।
मृगध्वजार्हत्प्रणतः सपर्यां श्यामः किटिस्थो गरुडोभ्युपैतु ॥ १४४ ॥

ओं ह्रीं गरुडयक्षाय इदं ।

इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर पातालयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४२ ॥ " सचक्र " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर किंनरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४३ ॥ " वक्रान " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर गरुडयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४४ ॥ " सनाग " तथा ओं ह्रीं बोलकर गंधर्वयक्षको

सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोधः करद्वयात्तेषु धनुः सुनीलः ।
गंधर्वयक्षः स्तभकेतुभक्तः पूजामुपैतु श्रितपक्षियानः ॥ १४५ ॥

ओं ह्रीं गधर्वयक्षाय इद ।

आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चाप पवि
पाशं मुद्गरमंकुशं च वरदः षष्ठेन युंजन् परैः ।
वाणाभोजफलस्रगच्छपटलीलीलाविलासास्त्रिदृक्
षड्वक्त्रगरांकभक्तिरसितः खेंद्रोन्र्यते शंखगः ॥ १४६ ॥

ओं ह्रीं खेन्द्रयक्षाय इद ।

सफलकधनुर्दंडपद्म खड्गमदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम् ।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्रचापद्युतिकलशांकनतं यजे कुबेरम् ॥ १४७ ॥

ओं ह्रीं कुबेरयक्षाय इद ।

जटाकिरीटोष्टमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः ।
कूर्मांकनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकाय उपैतु तृप्तिम् ॥ १४८ ॥

अर्घ चढावे ॥ १४५ ॥ "आरभ्यो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर खेन्द्रयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४६ ॥ "सफलक" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर कुबेरयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४७ ॥ "जटाकिरीटो" इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर वरुणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १४८ ॥ "खेटा-

ओं ह्रीं वरुणयक्षाय इद ... . ।

खेटासिकोदंडसरांकुशाब्ज–चक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम् ।

चतुर्मुखं नंदिगमुत्पलाकभक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि ॥ १४९ ॥

ओं ह्रीं भृकुटियक्षाय इद ।

श्यामास्त्रिवक्त्रो द्रुघणं कुठारं दंडं फलं वज्रवरौ च बिभ्रत् ।

गोमेदयक्षः क्षितशंखलक्ष्मा पूजां नृवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं गोमेदयक्षाय इदं . ... ।

ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणंता ।

श्रीनागराजककुदं धरणोऽभ्रनीलः कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् १५१

ओं ह्रीं धरणयक्षाय इद . ।

मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं बिभ्रत्फलं वामकरेऽथ यच्छन् ।

वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंगयक्षोऽगतु तुष्टिमिष्ट्या ॥ १५२ ॥

सि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर भृकुटि यक्षको अर्घ चढावे ॥ १४९ ॥ " श्यामस्त्रि " इत्यादि तथा ओं ह्रीं पढकर गोमेदयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५० ॥ " ऊर्ध्वद्विहस्त " इत्यादि तथा ओं ह्रीं बोलकर धरणयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५१ ॥ " मुद्गप्रभो " इत्यादि तथा ओं ह्रीं

ॐ ह्रीं मातंगयक्षाय इदं ... ... ।

इत्थं योग्योपचारव्यतिकरपरमो जागरान गृह्यग्र्यापाराः
शश्वदर्हत्प्रभुसमयमहस्तायिनो यक्षमुख्याः ।
तद्भक्तोद्धर्षहर्षाहृतजलधिनिरुच्छ्वासलीलावगाह
मत्पुहापोहकृक्ष्य: सृजतु परमसौपर्चपूर्णाहुतिर्वः ॥ १५३ ॥

पूर्णाहुतिः । इति चतुर्विंशतियक्षार्चनविधानम् । अथ चतुर्विंशतिपत्राग्रस्थापितशासनदेवतार्चनम् ।

संभावयंति वृषभादिजिनानुपास्य तद्वामपार्श्वनिहिता वरालिप्सवो याः ।
चक्रेश्वरीप्रभृतिशासनदेवतास्ताः द्विद्वादशादलमुखेषु यजे निवेश्य ॥ १५४ ॥

चतुर्विंशतिशासनदेवतासमुदायपूजाविधानाय पूर्वविधिं विदध्यात् ।

यक्ष्य: संशब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् १५५

बोलकर मातंगयक्षको अर्घ चढावे ॥ १५२ ॥ "इत्थ योग्यो" इत्यादि श्लोक पढकर पूणार्घ दे ॥१५३॥ इसप्रकार चौवीस यक्षोंकी पूजाका विधान हुआ । अथ चौवीस पत्रोंके अग्रभागमें स्थापित शासनदेवताओंकी पूजा करते हैं । "संभावयान्ति" इत्यादि श्लोक पढकर चौवीस शासनदेवताओंकी समुदायपूजाकेलिये पूर्व कही हुई विधि करे ॥ १५४ ॥ " यक्ष्य " इत्यादि

आवहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्राग्रेषु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ प्रत्येकपूजा ।

भर्माभाद्य करद्वयाकुलिशा चक्रांकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेंबुजे ।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ १५६ ॥

ओं ह्रीं अप्रतिहतचक्रे देवि इद ।

स्वर्णद्युतिशङ्खरथांगशस्त्रा लोहासनस्थाभयदानहस्ता ।
देवं धनुः सार्धचतुःशतोच्चं वदारुवीष्टापिह रोहिणीष्टेः ॥ १५७ ॥

ओं ह्रीं अजितदेवि इद ... ।

पक्षिस्थार्धेंदुपरशुफलासीढीवरैः सिता । चतुश्चापशतोच्चार्हद्भक्ता प्रज्ञप्तिरिज्यते ॥ १५८ ॥

श्लोक बोलकर आवाहन आदि पूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पत्रके अग्रभागमें पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १५५ ॥ अब प्रत्येककी पूजा कहते है–"भर्मा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर चक्रेश्वरी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ १५६ ॥ "स्वर्णद्युति" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अजितादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५७ ॥ "पक्षिस्था"

ओं ह्रीं नम्रे देवि इद ... ... ।

सनागपाशोरुफलाक्षसूत्रा हंसाधिरूढा वरदानुयुक्ता ।
हेमप्रभार्धत्रिधनुः शतोन्नतीर्थेशनम्रा पविशृंखलार्चाम् ॥ १५९ ॥

ओं ह्रीं दुरितारि देवि इद... ... ... ।

गजेंद्रगावज्रफलोथचक्रवरांगहस्ता कनकोज्ज्वलांगी ।
गृह्णानुदंडत्रिशतोन्नतार्हन्नतार्चनां खड्गवराच्यते त्वम् ॥ १६० ॥

ओं ह्रीं मोहिनि देवि इद ... ... ।

सिता गोवृषगा घंटां फलशूलवरावृताम् । यजे कालीं द्विको दंडशतोच्छ्रायाजिनाश्रयाम् ॥

ओं ह्रीं मानेविदाव इद ... ... ।

चंद्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम् ।

इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर नम्रादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १५८ ॥ "सनाग" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर दुरितारि देवीको अर्घ चढावे ॥ १५९ ॥ "गजेंद्र" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मोहिनी देवीको जलादि चढावे ॥ १६० ॥ "सिता" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर मानव देवीको जलादि चढावे ॥१६१ ॥ "चंद्रो" इत्यादि

श्रीज्वालिनीं सोर्धधनुःशतोच्चजिनानतां कोणगतां यजामि ॥ १६२ ॥

ओं ह्रीं ज्वालामालिनीदेवि इद . .. . ।

कृष्णा कूर्मासनाधन्यशतोन्नतजिनानता । महाकालीज्यते वज्रफलमुद्गरदानयुक् ॥ १६३ ॥

ओं ह्रीं भृकुटि देवि इद . .. . ।

झषदामरुचक्रदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरिताम् ।
नवतिधनुस्तुङ्गजिनप्रणतामिह मानवीं प्रयजे ॥ १६४ ॥

ओं ह्रीं चामुंडे देवि इद .. .. ।

सद्मुद्गराब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम् । गौरीं यजेशीतिधनुः प्रांशु देवीं मृगोपगाम १६५

तथा "ओंह्रीं" बोलकर ज्वालामालिनीदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६२ ॥ "कृष्णा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" पढकर भृकुटि देवीको जलादि चढावे ॥ १६३ "झष" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" कहकर चामुंडा देवीको जलादि चढावे ॥ १६४ ॥ "समुद्ग" इत्यादि तथा ओं ह्रीं कहकर गोमेधकिदेवीको जलादि अष्टद्रव्य चढावे ॥ १६५ ॥ "सपक्ष" इत्यादि

ओं ह्रीं गोमधकि देवि इद ... .. ।

सपभमुशलांभोजदाना मकरगा हरित् । गांधारी सप्ततीष्वास तुंगप्रभुनताच्यते ॥ १६६ ॥

ओं ह्रीं विद्युन्मालिनि देवि इद .. .. ।

पष्ठिदंडोच्चतीर्थेशनता गोनसवाहना । ससर्पचापसर्पेषुवैरोटी हरिताच्यते ॥ १६७ ॥

ओं ह्रीं विद्यादेवि इद ।

हेमाभा हंसगा चापफलबाणवरोद्यता । पंचशच्चापतुंगार्हद्भक्ता नतमतीज्यते ॥ १६८ ॥

ओं ह्रीं कुभिणि देवि इद ... ... ।

सांबुजधनुदानांकुशशरोत्पला व्याघ्रगा प्रवालनिभा ।
नवपंचकचापोच्छ्रितजिननम्रा मानसीह मान्येत ॥ १६९ ॥

तथा "ओंह्रीं" कहकर विद्युन्मालिनीदेवीको जलादि चढावे ॥ १६६ ॥ पष्ठि" इत्यादि तथा ओंह्री" बोलकर विद्यादेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६७ ॥ "हेमाभा" तथा ओंह्रीं" बोलकर कुभिणिदेवीको जलादि द्रव्य चढावे ॥ १६८ ॥ "सांबुज" इत्यादि तथा "ओंह्रीं"

ओं ह्रीं परभृते देवि इदं.... .... ।

चक्रफलेदिव्यरांकितकरां महामानसीं सुवर्णाभाम् ।
शिखिगां चत्वारिंषद्धनुरुन्नताजिनमतां प्रयजे ॥ १७० ॥

ओं ह्रीं कदर्पदेवि इदं .... ।

सचक्रशंखासिवरां रुक्माभां कृष्णकोलगाम् । पंचत्रिंशद्धनुस्तुग् जिननम्रां यजे जयाम्॥१७१

ओं ह्रीं गांधारिणी देवि इदं .. .. ।

स्वर्णाभां हंसगां सर्पमृगवज्रवरोद्धुराम् । चाये तारावतीं त्रिंशच्चापोच्चप्रभुभाक्तिकाम्॥१७२॥

ओं ह्रीं कालिदेवि इदं .. .. ।

पंचविंशतिचापोच्चदेवसेव्यापराजिता । शरभस्याच्र्यंते खेटफलासिवरयुक् हरित् ॥ १७३ ॥

ओं ह्रीं मनजातदेवि इदं. ....।

बोलकर परभृतादेवीको जल आदि चढावे ॥ १६९ ॥ "चक्रफले" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर कंदर्पदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७० ॥ "सचक्र" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर गांधारिणी देवीको जल आदि चढावे ॥ १७१ ॥ "स्वर्णाभा" इत्यादि तथा "ओंह्रीं बोलकर काली देवीको जल आदि चढावे ॥ १७२ ॥ "पचविंशाति" इत्यादि तथा "ओंह्रीं" बोलकर मनजातदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७३ ॥ "पीता" इत्यादि तथा

पीतां विंशतिचापोच्चस्वामिका बहुरूपिणीम् । यजे कृष्णाहिगां खेटफलखड्गवरोच्चराम् १७४॥

ओं ह्रीं सुगंधिनि देवि इदं . ... ।

चामुंडा यष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरित् । मकरस्थार्च्यते पंचदशदंडोन्नतेशभाक् ॥ १७५ ॥

ओं ह्रीं कुसुममालिनि देवि इदं....... .. ।

सव्यंकद्युपगप्रियंकर सुतुक् प्रीत्यै करे बिभ्रतीं
दिव्याम्रस्तबकं शुभंकरकरश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितभामाम्रद्रुमच्छायगां
वंदारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रा यजे ॥ १७६ ॥

ओं ह्रीं कूष्माडिनि देवि इदं . . . ।

येष्टुं कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तंसा द्विषो यात षट्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखास्यादिदो अष्टका ।
ता शांतामरुणां स्फुरच्छृणि सरोजन्माक्षव्यालांबरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनता यायज्मि पद्मावतीम् ॥ १७७ ॥

"ओंह्रीं" बोलकर सुगंधिनिदेवीको जल आदि चढावे ॥ १७४॥ "चामुंडा" इत्यादि तथा 'ओंह्रीं बोलकर कुसुममालिनीको जल आदि चढावे ॥ १७५ ॥ "सव्ये" इत्यादि तथा 'ओंह्रीं बोलकर कूष्माडिनी देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ १७६ ॥ "येष्टुं" इत्यादि

ओं ह्रीं पद्मावतीदेवि इदं.. .. ।

सिद्धायिका सप्तकरोच्छ्रितागजिनाश्रयां पुस्तकदानहस्ताम् ।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेहम् ॥ १७८ ॥

ओं ह्रीं सिद्धायिनि देवि इद .. ।

इत्यावर्जितचेतसः सम्रुचितैः सन्मानदानैः स्फुरन्
स्यात्कारध्वजशासनद्विपदपक्षेपोच्छलद्युक्तयः ।
यक्ष्यं संघनृपादिलोकविपदुच्छेदादिहार्हन्मखे
कुर्वाणाः सहकारितां सममिमां गृह्णंतु पूर्णाहुतिम् ॥ १७९ ॥

पूर्णाहुतिः । इति शासनदेवतार्चनविधानम् । अथ द्वारपालानुकूलनम् ।

सोमयमवरुणधनदा जिनदेवीद्वारपालननियुक्ताः ।
स्वं स्वमिहैत्य नियोग कुर्वन्त्यः को न वः स्पृहयेत् ॥ १८० ॥

सोमादिद्वारपालसामुख्यविधानाय दिक्षु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

तथा " ओंन्हीं " बोलकर पद्मावती देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥१७७॥ "सिद्धायिका इत्यादि तथा " ओंह्रीं " बोलकर सिद्धायिनी देवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे १७८॥ "इत्यावर्जित " इत्यादि श्लोक कहकर आठ द्रव्यसे सबको पूर्णार्घ दे ॥ १७९ ॥ इस प्रकार

कोदंडकांडस्फुटदृष्टिमुष्टिप्रकटोत्थकथानुरक्तम् ।
नेत्राः पुरो द्वारमिमामवंतं सोमोपगृह्णाम्युचितैर्भवंतम् ॥ १८१ ॥

ओं धनुर्धराय अर अर त्वर त्वर हू सोम आगच्छागच्छ इदं जलं.... .... ।

द्विदुर्गदंडोद्यतचंडदंडं प्रचंडसामाजिकसंकथास्थम् ।
वेदिमतीद्वारमपाच्यमेतं पांतं यम त्वामनुकूलयामि ॥ १८२ ॥

ओं दंडधराय अर २ त्वर २ हू यम आगच्छागच्छ इदं . ..... ।

विषाक्तजिह्वायुगलीढसृक्कस्फुलिंगवांत्युग्रभुजगरज्जुः ।
प्रतीच्यवेदीमुखदक्षभृत्यव्रतः प्रचेतः कुरु चारुचेतः ॥ १८३ ॥

ओं पाशधराय अर २ त्वर २ हू वरुण आगच्छागच्छ इदं. . . ।

शासनदेवताओंका पूजन समाप्त हुआ । अब द्वारपालोंको अनुकूल करते हैं । "सोम" इत्यादि श्लोक बोलकर उन सोम आदिको सन्मुख करनेके लिये दिशाओंमें पुष्प अक्षतको बखेरै ॥ १८० ॥ "कोदंड" इत्यादि तथा "ओं धनु" इत्यादि बोलकर सोमको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥१८१ ॥ "द्विदुर्ग" इत्यादि तथा "ओं दंड" इत्यादि बोलकर यमको जल आदि चढावे ॥ १८२ ॥ "विषाक्त" इत्यादि तथा "ओं पाश" इत्यादि बोलकर वरुणको जल आदि चढावे ॥ १८३ ॥ "इतस्ततो" इत्यादि तथा "ओं गदा" इत्यादि बोलकर

इतस्ततो नाभिगिरेः सगर्भा गदां सलीला भ्रमयन्नुदीच्ये ।
द्वारे निषण्णोनुचरैर्वितर्दैः कुबेर वीरानुसरोपचार ॥ १८४ ॥

ओं गदाधराय अर २ त्वर २ हूं कुबेर आगच्छागच्छ इदं ।

एवं प्रियाकृताः सोमप्रमुखा द्वास्थकुंजगः। क्षुद्रान् क्षिपंतो विशतः सलुनु मन्यताम्॥१८५॥

पुष्पांजलिं । इति द्वारपालानुकूलनविधानम् । अथ दिक्पालानुकूलनम् ।

इंद्राग्निश्राद्धदेवाः शरपतिवरुणस्पर्शनश्रीदरुद्राः
पूर्वाद्यासासु वेधास्त्रिजगदधिपतेः मासरक्षाधिकाराः ।
तद्यज्ञेस्मिन्नवात्मभगति विहरतामेत्य पल्यादियुक्ता
विघ्नंतो यथास्वं वितनुत समयोद्योतयोनित्य कृम्पाः ॥ १८६ ॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सरार्घ्यपणाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

रूप्याद्रिस्पर्द्धिघंटायुगपट्टुकटुटंकारनानिशुंभ—
द्रूपासख्यातिचित्रोज्ज्वलविलसल्लक्ष्मवर्ष्मेंद्रयस्थं ।

कुबेरको जल आदि चढावे ॥ १८४ ॥ "एवं प्रिया" इत्यादि बोलकर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १८५ ॥ इसतरह द्वारपालोंको अनुकूलकरनेकी विधि हुई । अब दिक्पालोंको प्रसन्न करनेकी विधि कहते हैं । "इंद्रादि" इत्यादि श्लोक बोलकर इंद्र आदि दिक्पालोंका आवाहन आदि करनेके लिये चारोंतरफ पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ १८६ ॥ अब इनकी जुदी जुदी पूजा

रुप्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं रूप्यसंख्यादि देवी
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिंद्रं यजामि ॥ १८७ ॥

ओं ह्रीं इन्द्र आगच्छागच्छ इद्राय स्वाहा .. ..।

रुक्मारुग्घुर्घुरस्रग्गलचद्धुकपृथुमायभृंगाभतुंग—
स्थं रौद्रपिंगेक्षणयुगममलं ब्रह्मसूत्र-शिखास्रम् ।
कुंदी वामप्रकोष्ठे दधतमितरपाण्यात पुण्याक्षसूत्रं
स्वाहान्वीतं धिनोमि श्रुतिमुखरसभं प्राच्यपाच्यंतरेऽग्निम् ॥ १८८ ॥

ओं ह्रीं अग्ने आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा ।

कल्पाताब्दोघजेतृ त्रिगुणफणिगुणोद्ग्राहितग्रैवघंटा
टंकारात्युग्रशृंगक्रमहृतभधरव्रातरक्ताक्षसंस्थं
चंडार्चिः कांडदंडोद्धुमरकरमतिक्रूरदारादिलोक
क्राण्योद्रेकं नृशंस प्रथमपथ यम दिश्यपाच्यां यजामि ॥ १८९ ॥

कहते हैं ॥ "रूप्याद्रि" इत्यादि तथा "ओह्रीं" बोलकर इंद्रको पूजाद्रव्य चढावे ॥१८७॥
"रुक्मा" इत्यादि तथा "ओह्रीं" इत्यादि बोलकर अग्निको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८८ ॥
"कल्पाता" इत्यादि तथा "ओआ" इत्यादि बोलकर यमको पूजाद्रव्य चढावे ॥ १८९ ॥

ओं आ क्रौं ह्रीं यमागच्छागच्छ यमाय स्वाहा ।

आरूढं धूमधूम्रायतविकटसटास्ताग्रदिक्रुक्षरूक्षा
लक्षाक्षावशिष्टास्फुटरुदितकला योद्रमाभांगमृक्षम् ।
क्रूरक्रव्यातपरीतं तिमिरचयरुचं मुद्गरक्षुण्णरौद्र–
क्षुद्रौघं त्रात याम्या परहरतमह नैर्ऋत तर्पयामि ॥ १९०

ओं आ क्रौं ह्रीं नैर्ऋत्यागच्छागच्छ नैर्ऋत्याय स्वाहा ।

नित्यांभः कोलिपांडूत्कटकापिलविशच्छेदसोदर्यदंत–
प्रोत्फुल्यत्पद्मखेलत्करकरिमकरव्योमयानाधिरूढम् ।
प्रेंखन्मुक्तामत्रालाभरणभरमुपस्थाद्वदाराहताक्षं
स्फूर्जद्धीमाहिपासं वरुणमपरादिग्रक्षणं प्रीणयामि ॥ १९१ ॥

ओं आ क्रौं ह्रीं वरुणागच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा ।

वलगच्छृंगाग्रभिन्नांबुदपटलगलत्तोयपीतश्रमाभ्र
प्लुत्यस्तस्वांतरंहः खुरकपितकुलग्रावसारंगयुग्यम् ।

"आरूढ" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्यको अर्घ चढावे ॥ १९० ॥
नित्यांभ" इत्यादि तथा" ओं आ" इत्यादि पढकर वरुणको अर्घ चढावे॥ १९१ ॥" वला"

व्यालोलद्ध्वात्रयंत्रं त्रिजगदसुधृतिं प्रमुग्रदुमास्त्र

सर्वार्थानर्थसर्गप्रभुमनिलमुदक् प्रत्यगंतः प्रणौमि ॥ १९२ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं अनिलागच्छागच्छ अनिलाय स्वाहा ।

हांसोघो नाह्यमानं पवननरिवृतत्केतुपंक्तिं विमानं

स्वारूढः पुष्पकाख्यं क्रमसखरसनादामपुक्ताकलापः ।

अग्राम्योद्दामनेपः सुललितधनदेव्यादिवक्त्राब्जभृंगः

शक्तीभिन्नारिमर्मा भजतु वलिमुदग्भुक्तिवीरः कुवेरः ॥ १९३ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं कुवेरागच्छागच्छ कुवेराय स्वाहा ।

सास्नावाचालकिंकिण्यनणुरणनझणत्कारमंजीरासिंजा

रम्योद्यच्छृंगहेलाविहरदुरुशरच्चंद्रशुभ्रर्षभस्थम् ।

भास्वद्भूषाभुजंगभुजगसितजटांकितकार्द्धेंदुचूलं

दधत्शूलं कपालं सगणवमिहार्चामि पूर्वोत्तरेशम् ॥ १९४ ॥

ओं आ क्रों ह्रीं ईशानागच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा ।

इत्यादि तथा "ओं आ" इत्यादि बोलकर वायुको अर्घ चढावे॥१९२॥ "हांसो" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि पढकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ १९३ ॥ "सास्ना" इत्यादि तथा "ओं" इ-

इत्यर्हन्मदुसामवायिकनयाह्वानादियोग्यक्रमै—
दिक्पालाः कृततुष्टयः परिजनोत्कृष्टश्रियोऽग्र्यम् ।
द्रष्टा कापटमर्हदध्वरमरं दिक्चक्रमाक्रामतो
भव्यान् संदधतः शुभैः सह भजंत्वेतर्हि पूर्णाहुतिम् ॥ १९५ ॥

पूर्णाहुतिः । इति दिक्पालार्चनविधानम् । अथ दिक्चतुष्टयनिविष्टप्रभावनोद्भटयक्षानुकूलनम् ।

प्रभु भक्तुमिहागत्य प्राचीं चिन्वान्निजश्रिया । बलिं विजययक्षेश मंत्रपूतां स्वसात्कुरु ॥१९६॥

ओं क्ष्लर्व्यूं विं विजययक्ष बलिं गृहाण गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

अत्रापाचीमलंकृत्य भजमानो जगत्पतिम् । यथार्हबलिसंतुष्टो वैजयंत जयत नु ॥ १९७ ॥

ओं क्ष्लर्व्यूं वैं वैजयंत बलिं . ... ।

देवाधिदेवसेवार्थे प्रतीचीं दिशमास्थितः । बलिदानेन संप्रीतो जयंत जय दुर्जयान् ॥ १९८॥

ॐ क्ष्लर्व्यूं जं जयत बलिं . .. . ।

त्यादि कहकर ईशानको अर्घ चढावे ॥ १९४ ॥ "इत्यर्ह इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १९५ ॥ इसतरह दिक्पालोंकी पूजाविधि पूर्ण हुई । अब चारों दिशाओंके यक्षोंका सत्कार करते हैं । "प्रभु" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर विजययक्षको अर्घ चढावे ॥ १९६ ॥ "अत्रापा" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर वैजयंतको अर्घ चढावे ॥ १९७ ॥ "देवाधि इत्यादि तथा "ओं"इत्यादि बोलकर जयंतको अर्घ चढावे ॥ १९८ ॥ "उदीचीं" इत्यादि

उदीचीं भूषयन भूत्या सर्वज्ञोपासनोत्सुकः। अपराजित यक्ष त्वं मीयस्व बलिनामुना॥१९९॥

ॐ झ्म्ल्व्र्यूं अं अपराजित बलिं . . . ।

एव संमानिता यूयं जिनेंद्रसमये रताः। प्रतिष्ठासमयेऽमुष्मिन् यतध्वं विश्वशांतये ॥ २०० ॥

पूर्णाहुति । इति विजयादियक्षानुकूलनविधानम् । अथैशानदिश्यनावृतार्चनम् ।

जंबूवृक्षस्य नानामणिमयवपुषः प्राग्यजंबूवृतस्य
प्राक्शाखामावसंत नवजलदरुचं पक्षिराजाधिरूढम् ।
कुंडीशंखाक्षमालारथचरणकरं त्राणनिःशेषजंबू—
द्वीपश्रीकं यजेस्मिन् विधुरविधुतयेनावृतं व्यंतरेंद्रम् ॥ २०१ ॥

ओं दशदिशाधिनाथ त्रैलोक्यदंडनायक जंबूद्वीपाधिपति गरुडपृष्ठमारूढ स्निग्धभिन्नाजनाप-मक्षसूत्रकमंडलुन्यग्रहस्त चतुर्भुज शंखचक्रविधृतभुजादंडं यक्षिणीसहितं सपरिजन सपरिवारमनावृत देव समाह्वयामीह स्वाहा हे अनावृतागच्छागच्छ अनावृताय स्वाहा अनावृतपरिजनाय स्वाहा ।

तथा 'ओं" इत्यादि बोलकर अपराजितको अर्घ चढावे ॥१९९॥ "एवं समा" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २०० ॥ इस प्रकार विजयादि यक्षोंका सत्कार हुआ । अब ईशानदिशाके अनावृत यक्षकी पूजा कहते हैं। "जंबूवृक्ष" इत्यादि तथा "ओं दश" इत्यादि पढकर जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ २०१ ॥ "ब्रह्मांते" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

आग्नेयांति दिक्षु रुद्राद्यधिपतिषु समाग्न्यामसूर्याभपूर्व—
द्विद्विस्वर्भूगणैकोत्तरभूतिषु वसंत्यष्ट सारस्वताद्याः ।
यद्वर्गास्ते स्वतंत्राः क्षतविषयतृषो भाविजन्माप्यमोक्षाः
पूर्वज्ञा मेध्य लौकांतिकसुरमुनयस्तीर्थकृच्छंसिनोऽर्च्याः ॥ २०२ ॥

ओं ह्रीं लौकांतिकदेवेभ्यः पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । ब्रह्मेंद्रोपरि देवर्षिपुष्पांजलिः ।

मुख्योपचारिकचरित्रचितोरुपुण्यपाकाग्रखस्थसितरत्नविमानवासान् ।
अर्हत्प्रतिष्ठितिमिमामनुमोदमानान् संमानयामि कुसुमांजलिनाहमिंद्रान् ॥ २०३ ॥

ओं ह्रीं अहमिंद्रदेवेभ्य. पुष्पांजलिं निर्वपामीति स्वाहा । अच्युतेंद्रोपरि अहमिंद्रपुष्पांजलिः ।

अथ विधिशेषम् ।

पूर्वादिदिक्षु वेद्या मंगलशांतिकृजयेष्टसिद्ध्यर्थम् ।
मंगलशस्त्रपताकाकलशानथ योजयेष्टशः क्रमशः ॥ २०४ ॥

मंगलादिस्थापनाप्रतिज्ञानाय दिक्षु पुष्पाक्षतं क्षिपेत् ।

लौकांतिक देवोंके लिये पुष्पोंको चढावे ॥ २०२ ॥ "मुख्यो" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अहमिन्द्र देवोंके लिये पुष्पांजलि चढावे ॥ २०३ ॥ अब शेष विधान कहते हैं । "पूर्वादि" इत्यादि श्लोक पढकर मंगल आदि आठ द्रव्योंकी स्थापनाके लिये दिशाओंमें पुष्प अ-

छत्राब्दध्वजचामरयुगतोरणतालवृंतनंद्यावर्तम् ।
दीपं च प्रणवमुखं न्यसामि मंत्रार्पितं श्रियै स्वाहांतम् ॥ २०५ ॥

ॐ श्वेतछत्राश्रियै स्वाहा । एवमन्येष्वपि मगल्यष्टकस्थापनम् ।

दधती पविमिंद्राणी चक्रं वैष्णव्यासिं च कौमारी ।
सीरं वाराही मुशलं ब्रह्माणी गदां महालक्ष्मी ॥ २०६ ॥
शक्तिं चामुंडायिनि माहेशी भिडमालमाम्नंतु ।
विभ्रान् प्रणवमुखाख्या गर्भस्वाहांतमंत्रविन्यस्ताः ॥ २०७ ॥

ओं इद्राण्यै स्वाहा । एवमन्यास्वपि आयुधाष्टकस्थापनम् ।

पीता प्रभारुणा पद्मा कृष्णाभा मेघमालिनी । हरिन्मनोहरा श्वेता चंद्रमा केंद्रनीलभा ॥ २०८ ॥
सुप्रभाख्या जया श्यामा विजया पंचवर्णभा । दिक्षु तिष्ठंत्विमा देव्यः सवर्णध्वजपाणयः २०९

ओं प्रभायै स्वाहा । एवमन्यास्त्रपि पताकाष्टकस्थापनम् ।

क्षत वगैरे ॥ २०४ ॥ "छत्र" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि पढकर श्वेतछत्रादि आठ मंगल द्रव्योंको जलादि चढावे ॥ २०५ ॥ "दधती" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठ आयुध (हथियार) स्थापना करे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥ "पीता" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठ पताकाओंका स्थापना करे ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ "शुभ्रान्" इ-

शुभ्रान् मकुसमरणोत्तममंगलार्थान् कुंभान् मुखार्पितसुपल्लवमातुलिंगान् ।
स्रक्चंदनाक्षररुचोंबुभृताभिवेश्य सूत्रेण पंचरुचिना त्रिगुणं वृणोमि ॥ २१० ॥

कलशाष्टकस्थापनम् ।

वाणैर्जयाय सिद्धार्थैरर्थसिद्ध्यै यवारकैः । संतानवृद्ध्यै च चतुर्वेदीकोणान् विभूषये: २११

वाणचतुष्टयादिस्थापनम् ।

सगुडलवणां सलोष्टां पांडुशिलासोदरेसु सूत्रवृताम् ।
भोगोपभोगसंपत्प्रथनीं वेद्यां पुरः शिलां निदधे ॥ २१२ ॥

ओं सर्वजनानंदकारिणि सौभाग्यवति तिष्ठ २ स्वाहा । शिलास्थापनम् ।

हैमं रूप्यं चाद्नमाहोस्वित् सीरवृक्षज पट्टम् ।
धौतासितवस्त्रपिहितं प्रभुमधिकर्तुं न्यसामि वेद्यंतः ॥ २१३ ॥

ओं भद्रासनश्रियै स्वाहा । पट्टस्थापनम् । अथ पीठचतुष्टयार्चनम् ।

तद्वेदीचतुरंतसांगुलवितस्त्युद्देशशुंभत्कर—
व्यासायामयुतासनेषु कमलान्यालिख्य तत्कर्णिकाः ।

त्यादि श्लोक बोलकर आठ कलशोंका स्थापन करे ॥ २१० ॥ "वाणै" इत्यादि श्लोक पढकर वाण आदि चार मुख्योंको स्थापन करे ॥ २११ ॥ "सगुड" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर शिलाकी स्थापना करे ॥ २१२ ॥ "हैम" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर

प्राग्वत् प्राच्यं तथा दलेष्वनुदिशं देवीर्जयाद्याः पृथक्—
जंभाद्याश्च विदिग्दलेषु विनुयां दिग्द्वाररैराक्षिणः ॥ २१४ ॥

बहिर्मंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पाजलिं क्षिपेत् । अत्रापि पूर्ववत् कर्णिका, परब्रह्मादिपदैः पूरयित्वा तत्पद्मदलेषु पूर्वादिदिक्षु ओं जये स्वाहा, ओं विजये स्वाहा, ओं अजिते स्वाहा, ओं अपराजिते स्वाहा । आग्नेय्यादिविदिक्षु च ओं जंभे स्वाहा, ओं मोहे स्वाहा, ओं स्तंभे स्वाहा, ओं स्तंभिनि स्वाहा इति लिखित्वा बहिश्चतुर्द्वारचतुष्कोणमंडलं विलिख्य तद्बहिः पूर्ववद्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षदेवांश्च संस्थाप्य चिद्रूप विश्वरूपेत्यादिविधिना कर्णिकार्चनं संक्षेपेण कृत्वा जयादिदेवीर्दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च पूजयेत् । अथ जयादिदेवतार्चनम् ।

जयाद्याः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदा । अत्रोपविशतैता वो यजे प्रत्येकमादरात् २१५

काष्ठासन (पट्टा) स्थापित करे ॥ २१३ ॥ अब चार पीठोंकी पूजा कहते हैं । "तद्वेदी" इत्यादि श्लोक कहकर बाह्यमंडलकी पूजाके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ यहांपरभी पहलेकी तरह कर्णिकामें अरहंत आदि पदोंको लिखकर उस कमलपत्रपर पूर्व आदि दिशाओंमें "ओं जये" इत्यादि चार पद लिखे । फिर आग्नेयी आदि विदिशाओंके पत्तोंपर "ओं जंभे" इत्यादि चार पद लिखे । उसके बाद बाहरके चार दरवाजोंपर चौकोन मंडल लिखकर उसके बाहर पहलेकी तरह दिक्पाल, द्वारपाल और यक्षदेवोंको स्थापन करके "चिद्रूपं" इत्यादि कही हुई विधिसे कर्णिकाकी संक्षेपसे पूजा करे । फिर जयादि देवी, दि-

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

जये जयाख्ये विजये विजैनि जैन जितपराजितेऽस्मिन् ।

जंभेचमोहनेऽस्ति भाः स्तंभिनि रक्ष रक्षास्मान ॥ २१६ ॥

स्वोपग्रहाय पत्रेषु पुष्पाक्षतानि क्षिपेन् । अथ प्रत्येकपूजा ।

इहार्हतो विश्वजननीनवृत्तेः कृतां कृतारातिजये जये त्वाम् ।

सद्गंधपुष्पाक्षतदीपधूपफलादिसंपादनया धिनोमि ॥ २१७ ॥

ओं ह्रीं जये देवि आगच्छागच्छ इद . ... ।

जिनाधिराजे विजयैकविघ्ने जगद्विजेतुः कुसुमायुधस्य ।

विजेतरि स्फारितभूरिभक्ति त्वामत्र यज्ञे विजये यजेहम् ॥ २१८ ॥

ओं ह्रीं विजये देवि .... ।

क्पाल, द्वारपाल, और यक्षोंको पूजे ॥ अब जया आदि देवताओंकी पूजा कहते हैं । जया इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हर एककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञाके लिये पुष्प-अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ "जये" इत्यादि श्लोक बोलकर अपने उपकारके लिये पत्रोंपर पुष्प अक्षतको क्षेपण करे ॥ २१६ ॥ अब प्रत्येककी पूजा करते हैं । "इहा" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जया देवीको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २१७ ॥ "जिना" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर विजयाको अर्घ चढावे ॥ २१८ ॥ "जग' इत्यादि तथा "ओं ह्रीं"

जगज्जयोज्जागरिणां कषायद्विषां न केनापि जितं जिनेंद्रम् ।
आवर्जयंतामूर्जितोर्जितोजामूर्जासये त्वामजितेर्चयामि ॥ २१९ ॥

ओं ह्रीं अजिते .... ।

पराजितारेरपराजितास्त्रैरप्याश्रितस्यारिपराजयाय ।
जगत्प्रभोरत्र महे महामि पराजिते त्वामपराजितेत्र ॥ २२० ॥

ओं ह्रीं अपराजिते . . . . ।

व्यामोहनिद्रां भुवनानि जंभ विशंत्युद्धरतो जिनस्य ।
वितन्वतां यज्ञमजन्यहंत्रीं त्वा देवि जंभे परिपूजयामि ॥ २२१ ॥

ओं ह्रीं जमे . . . . ।

चिरं जगन्मोहविषेणसुप्तं स्याद्वादमंत्रेण विबोधयंतम् ।
श्रीबुद्धमाराधयता हि मोहे त्वां मोहयतीमहितान्महामि ॥ २२२ ॥

ओं ह्रीं मोहे . ... ।

बोलकर अजिताको जलादि चढावे ॥ २१९ ॥ "पराजि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर अपराजिताको जलादि आठ द्रव्य चढावे ॥ २२० ॥ "व्यामोह" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर जभा देवी पर जलादि चढावे ॥ २२१ ॥ "चिर" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर

जिनं महाभव्यविशुद्धिभावमासादसुस्तंभमुपास्ति यस्तम् ।
प्रकुर्वतं स्तंभयतां स्तभंतं स्तंभे सृजंतीं भवतीं यजामि ॥ २२३ ॥

ओं ह्रीं स्तंभे देवि . . .. ।

प्रवादिनां स्तंभयतोत्र मानस्तंभेन दूरादपि मंक्षु मानम् ।
जिनेस्य यद्वर्चनया सपत्नधीस्तंभिनि स्तंभिनि संस्तुवे त्वाम् ॥ २२४ ॥

ओं ह्रीं स्तंभिनि देवि . ... ।

इत्येताः पृथुयशसो जयादिदेव्यो वेश्मामभिरुचिते जिनेंद्रयज्ञे ।
पूर्णाहुतिमिह कांभिताः प्रपूज्य श्रेयांसि प्रददतु भव्यभाक्तिकेभ्यः॥ २२५ ॥

पूर्णाहुति ।

प्राच्याद्याग्नेयकोणादिपत्रेष्विष्टाः क्रमादिमाः। अष्टौ जयादिजंभादिदेव्य. शांतिं वितन्वताम् ॥

इष्टप्रार्थना । इति जयादिदेवतार्चनविधानम् । अथ दिक्पालान् द्वारपालान् यक्षांश्च संक्षेपेण सत्कुर्यात् । इति बहिर्मंडलचतुष्टयार्चनविधानम् ।

मोहा देवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२२ ॥ "जिनं" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभादेवीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२३ ॥ "प्रवादि" इत्यादि तथा "ओं ह्रीं" बोलकर स्तंभिनीको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ २२४ ॥ "इत्येताः" इत्यादि श्लोक बोलकर स-

इत्यं निष्ठितपूज्यपूजनविधिः शक्रो महार्घेण तां
त्रिर्वेदीमवतार्य भूतिभरतो भक्त्या परीत्यानतः ।
सद्भूपाश्चतुरोष्ट वा सुकुसुमैस्तं जापयन् मतस-
द्रूपं मंत्रमनादिसिद्धमुरुधीरीशानवेदीं यजेत् ॥ २२७ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहुमंगलं केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगोत्तमा अरहंतलोगोत्तमा सिद्धलोगोत्तमा साहुलोगोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारिसरणं पव्वज्जामि अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ह्रौं स्वाहा । अनादिसिद्धमंत्रः । इति मूलवेदिकार्चनविधानम् । अथोत्तरवेदिकार्चनम् ।

वेद्यां चान्यां सुरगिरिशिलावेदिवत्कर्णिकायां
प्राग्वन्मंत्रानथ कजदलेष्वष्टसु श्र्यादिदेवीः ।

बको पूर्णार्घ देवे ॥ २२५ ॥ "प्राच्या" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्टवस्तुकी प्रार्थना करे ॥ २२६ ॥ इसतरह जया आदि देवताओंकी पूजा हुई । इसके बाद दिकपाल, द्वारपाल और यक्षोंका संक्षेपसे सत्कार करे ॥ इसप्रकार बाह्य मंगलचतुष्ककी पूजाविधि जानना । "इसप्रकार" वह इन्द्र पूजाविधि करके अनादि सिद्ध मंत्रको जपता हुआ ईशानवेदीको पूजे ॥ २२७ ॥ "णमो" इत्यादि स्वाहातक अनादिसिद्ध मंत्र जानना ॥ इसतरह मूलवेदी-

अर्हद्रादीन् क्षितिपुरवाहिर्दिक्षु देवीजयाद्यां
न्यस्य द्वारेष्वनु च चतुरो यक्षदेवान् यजामि ॥ २२८ ॥

ईशानवेद्यां यागमंडलपूजाप्रतिज्ञानाय पुष्पाजलिं क्षिपेत् । अथ पूर्वविधिना कर्णिकात स्थापिता परब्रह्मादिपूजा विधाय पद्मदलेष्वष्टौ श्र्यादिदेवी. पूजयेत् । तथाहि ।

याः सामानिकपर्षदंबुजपरीवारान्वया धूर्ध्वभू
पद्मादिह्रदपुष्करेंदुविंशदमासादवासा मुदा ।
सेवंते बहुधा जिनेंद्रजननीं श्र्यादीश्वयंत्यो गुणान्
भांती पुष्पमुखैः करात्तकलशैस्ताः श्र्यादिदेवीर्यजे ॥ २२९ ॥

श्र्यादिदेवीसमुदायपूजाविधानाय पत्राष्टके कुंकुमाद्युलितपुष्पाक्षत क्षिपेत् । अथ पृथगिष्टिः ।

की पूजाविधि हुई । अब उत्तरवेदीकी पूजा कहते हैं । "वेद्यां" इत्यादि श्लोक पढकर ईशानवेदीमें यागमंडलकी पूजा करनेके लिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २२८ ॥ अब पहले कही हुई विधिके अनुसार कर्णिकाके मध्यमें स्थापित अरहंत आदि परमेष्ठीकी पूजा करके आठ कमलपत्रोंपर श्री आदि आठ देवियोंकी पूजा करे । उसीको कहते हैं । "याःसामा" इत्यादि श्लोक बोलकर श्रीआदि देवीयोंके समूहकी पूजा करनेके लिये आठ पत्तोंपर केशरसे लेपे हुए पुष्पअक्षतोंको क्षेपण करे ॥ २२९ ॥ अब जुदी जुदी पूजा कहते हैं । "श्र्याद्याः"

भयाधोः संशन्दये युष्मानायात सपरिच्छदाःअत्रोपविशतैता वो यजे मत्येकमादरात्॥२३०॥

आवाहनादिपुरस्सरप्रत्येकपूजाप्रतिज्ञानाय पत्रेपु पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

क्षोण्या पार्श्वततेंद्रकार्मुकताडिद्दंदद्युतिं तन्वतो
हिम्याद्रेरुपरित्यमुज्ज्वलयतः पद्महृदं पुष्करात् ।
यत्यद्रव्यवरैः सुरालहृदतैर्गर्भं विशोध्य श्रियं
तन्वाना जिनमातरं भजति या सा श्रीस्तडिभ्राभ्यर्चते ॥ २३१ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते श्रीदेवि आगच्छागच्छ इद् जल . ।

नानारत्नमयूखपार्श्वखचितक्षीरादवेलाक्षिपो
मूर्द्धन्युल्लसतो महाहिमवतः पद्मान् महापाद्मिके ।
संविद्वालसखीमुपेत्य विनयाल्लज्जां दृशोर्व्यंजती
यार्हन्मातुरुपासनां वितनुते सा ह्रीर्जपाभार्च्यते ॥ २३२ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर आवाहनादिपूर्वक हरएककी पूजा करनेकी प्रतिज्ञा करनेके लिये पत्तोंपर पुष्प और अक्षत क्षेपण करे ॥ २३० ॥ "क्षोण्या" इत्यादि तथा "ओं सुवर्ण" बोलकर श्रीदेवीको जल आदि आठ द्रव्य चढावे ॥ २३१ ॥ "नानारत्न" इत्यादि तथा "ओं रक्त" इत्यादि बोलकर ह्री देवीको अर्घ चढावे ॥ २३२ ॥ "उद्यंतं" इत्यादि तथा "ओ

ओं रक्तवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते ह्रीदेवि इद . . ।

उद्यंत सहृतोभितो हरिधनुष्कीर्णा रविं सीकरै—
मूर्द्धोर्वी निपधस्य चुंवति महापद्मादपि ज्यायसी ।
कंजादेत्य तिगिंछ एधितरुचेर्धैर्यं परं पुष्यतीं
या जैना भजतेंबिकामुपहरे तां चीनवर्णां धृतिम् ॥ २३३ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते धृति देवि इद . .... ।

पार्श्वोद्भासिविचित्ररत्नरुचिरां वैदूर्यगात्रीं गदां
द्वीपेनेव धृतां पुनात्युपरिमे नीलाचलं नीरजात् ।
भातः केसरिणि श्रियेत्य विधिवद्या सज्जयंती स्तुतौ
रुक्माभा वरिवस्यतीशजननीं तां कीर्तिमर्चाम्यहम् ॥ २३४ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते कीर्तिदेवि इद.... ।

भास्वद्भक्तिविचित्रितोभयवपुर्भोगेंद्रनागमती—
क्ष्मिणो रुक्मिगिरेर्महांतमुपरित्यं पुंडरीक श्रितात् ।

छ" इत्यादि बोलकर धृति देवीको जलादि चढावे ॥ २३३ ॥ "पार्श्वो" इत्यादि तथा "ओं छ" इत्यादि बोलकर कीर्ति देवीको अर्घ चढावे ॥ २३४ ॥ "भास्वद्भ" इत्यादि तथा "ओं छ" इत्यादि बोलकर बुद्धिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३५ ॥ "रत्नोद्य" इत्यादि तथा "ओं

याञ्जादेत्य हिरण्यरुक्परिचरत्यर्हत्सवित्रीं जग—
ध्दोधं कंदलयंत्यलं बलिमहं तस्यै ददे बुद्धये ॥ २३५ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते बुद्धिदेवि इद . .. ।

रत्नांशुच्छुरितोभयांतकनकश्रोणीध्रशृंगस्निहः
रकुर्वाणमधित्यकां शिखरिणो यत्पुंडरीकं श्रिया ।
आवभाति ततोंबुजादुपरतावार्यै भवोद्भासिनी
भर्माभा जुषतेंबिकां जिनपतेर्लक्ष्मीं यजे तामहम् ॥ २३६ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते लक्ष्मी देवि इदं .. ....।

दृश्यादृश्यवपुर्भिरस्फुटशची साक्षात्सुखं श्र्यादिभि–
स्तत्तन्मंगलधारणादिविधिभिर्देव्या यदुद्भाव्यते
तत्भत्पूर्ववहिष्कृतं विदधती तस्या मनोनिर्वृतिं
कांचित्कांचनकांतिरुत्किरति या शांतिर्मया साच्यर्ते ॥ २३७ ॥
ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते शाति देवि इदं . ।

सु" इत्यादि बोलकर लक्ष्मीदेवीको अर्घ चढावे ॥ २३६ ॥ "दृश्यादृस्य" इत्यादि तथा "ओं
सु" इत्यादि बोलकर शांतिदेवीको जलादि चढावे ॥ २३७ ॥ "संक्रांते" इत्यादि तथा "ओं

संक्रांतिंदु यथामुखीनवलवकुक्षिं जिनाध्यासितं
बिभ्रत्यावपुषीश्वरे गुणगणे भोगेषु भक्तेषु च ।
देव्याः पुष्टिमनुक्षणं प्रगुणयंत्यन्यासु या स्तभ्यते
गांगेयांगरुगर्हतोर्हति महे सा पुष्टिरिष्टिं न काम् ॥ २३८ ॥

ओं सुवर्णवर्णे चतुर्भुजे पुष्पमुखकलशहस्ते पुष्टिदेवि इदं . . . ।

इत्यष्टैता दिक्कुमारीर्जिनांबापरिचारिकाः। प्रसाद्य हविषां पूर्णाः पूर्णाहुत्यो विदध्महे ॥२३९॥

पूर्णाहुति ।

एवं संभाविताः कर्तुर्जिनजन्ममहोत्सवम्। श्रीमुख्यदेवतास्त्वष्टास्तुष्ट्ये संतु यज्वनाम् ॥२४०॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिं क्षिपेत् । एव श्र्यादिदेवीरभ्यर्च्य दिक्पालादीन् पूर्ववत्क्रमेण पूजयेत् ।

इत्युत्तरवेदिकार्चनविधानम् ।

ऐतिह्यादिति यागमंडलमहं निर्वर्त्य वेदीविधिं
चिद्वृत्यं शुभभावसंपत्तिपरा निर्माप्य भव्यात्मनाम् ।

सु" इत्यादि बोलकर पुष्टि देविको जलादि चढावे ॥ २३८ ॥ "इत्यष्टै" इत्यादि श्लोक बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ २३९ ॥ "एव" इत्यादि श्लोक बोलकर इष्ट वस्तुकी प्रार्थनाकेलिये पुष्पोंका क्षेपण करे ॥ २४० ॥ इसप्रकार श्री आदि देवियोंको पूजकर दिक् पालोंको पूर्व क-

दृष्टामृश्य च सर्वशः प्रतिकृतीराशाधरोंतश्चरत्—
कीर्तिः सोत्तरसाधकोनुरहसं गच्छेत्पुरा कर्मणे ॥ २४१ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि यागमडलपूजाविधानीयो नाम तृतीयोऽध्याय ॥ ३ ॥

दे हुए क्रमसे पूजे। इस तरह उत्तर वेदीकी पूजा विधि हुई। मैंने (आशाधरने) यह वेदीका विधान शास्त्रके अनुसार कहा है। जो कोई इस विधीको जानकर और विचार कर करेगा वह मुमुक्षु भव्यजीव उत्तम सुखको अवश्य प्राप्त होगा ॥ २४१ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें यागमडलकी पूजाविधी कहनेवाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथो विविक्तदेशस्थः प्रतिष्ठाचार्यकुंजरः । प्रतिष्ठाविधये कुर्यात् परिकर्मेदमादृतः ॥ १ ॥
प्रागेकां सुखसचार्यां प्रातिहार्यादिशालिनीम् । पुरोधाय सुरम्यार्च्यां प्रतिष्ठेयं निरूपयेत्॥२॥

शस्ताशस्तात्मभावार्जितदृपदृजिनच्छेदहृप्यत्परा यः
स्वर्गाच्छुभ्रादथैत्य त्रिजगदुपकृतिव्यक्तिमाहात्म्यसपत् ।
शक्राद्यैर्योतिरागादहमहमिकया सेव्यते सिद्धयधीशः
पश्यंत्यज्ञास्तदर्चा स्वचितामिह नये स्थाप्यतेऽर्हम तेभ्यः ॥ ३ ॥

अब चोथा अध्याय कहते हैं । याग मंडलकी पूजाके बाद उत्तम प्रतिष्ठाचार्य एकान्तस्थानमें प्रतिष्ठा विधिके लिये इस आगे कहेजानेवाली क्रियाको करे ॥ १ ॥ सबसे पहले एक प्रतिमाको लावे । जोकि अच्छीतरह अपलेपर चल सके, प्रातिहार्य आदि सहित हो और देखनेमें बहुत अच्छी हो ॥ २ ॥ "शस्ता" आदि श्लोकोंमें जैसा प्रतिमाका वर्णन किया है वैसी प्रतिमाको न्यायपूर्वक पैदा किये हुए द्रव्यसे बनवाकर प्रतिष्ठा कराते हैं वे

कल्याणैः श्रितभूतभाविसुनयत्रिल्वौभयेः पंचाभि-
श्चित्तं वित्तमशेषमोहमथनाद्भासत्यविद्याभिदि ।
प्रत्यग्ज्योतिपि तीर्थकृत्वनियतं निर्बीजयोगे स्फुरद्
ध्यात्वार्चा स्थिरचित्क्षणाएकपदे यो क्षेत्रबीजाक्षरम् ॥ ४ ॥

द्रव्यैः स्वैः सुनयार्जितैर्जिनपतेर्बिम्बं स्थिरं वा चल
ये निर्माप्य यथागमं सुद्दपदाद्यात्मात्मनान्येन वा ।
लग्ने वाल्गुनि लंभयंति तिलकं पश्यंति भक्त्या च ये
ते सर्वेपि महोदयांतमुदयभव्यां लभंतेऽद्भुतम् ॥ ५ ॥

प्रतिष्ठेयनिरूपणा । अथ सकलीकरणम् । अत्रादावनेन मत्रेण स्वहस्तौ पवित्रयेत् । ओं णम
अरहताण णमो केवल्णिे सुअगदेवि पसत्थ हत्थेहिं हुं फट् स्वाहा । हस्तद्वयपवित्रकरणमत्र· । तत

भव्यजीव उत्तमपदको पाते हैं ॥ ३ । ४ । ५ । यह प्रतिमाका वर्णन हुआ । अब सकली
करण क्रिया कहते हैं । उसमें पहले " ओं णमो " इत्यादि मंत्रसे अपने हाथ पवित्र करे
उसके बाद सुरभिमुद्रा धारण करके इस आगेकी पवित्र विद्याको सात वार चिंतवन करे । व
विद्या "ओं णमो" से लेकर स्वाहा तक कही है। उसके बाद अंगन्यास करे वह इसप्रकार है

सुरभिमुद्रा धृत्वा इमा शुचिविद्या ससवारान् न्यसेत्। ओं णमो अरहताण णमो सिद्धाणं णमो आगासगामीणं णमो विज्झायाण णमो सव्वोसाहिपत्ताण णमो सय बुद्धाणं णमो केवलिणे स्वाहा । इमा च। ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं हन हन क्षां क्षीं क्षु क्षौं क्षः क्षीरधवले अमृतसमवे व व हूं स्वाहा । शुचीकरणमत्रौ । ततः सकलीकुर्यात् । ओं अ नमः सुहृदये, ओं सिं स्वाहा शिरासि, ओं आ वषट् शिखाया, ओं ओं घे घे कवच, ओं साहू फट् स्वाहा अस्त्र, ओ हौं वषट् नयनयोः । पुनः ओं ह्रा णमो अरहताण स्वाहा हृदये, ओं ह्रीं णमो सिद्धाण स्वाहा ललाटे, ओं ह्रू णमो आइरियाण स्वाहा शिरोदक्षिणे, ओं ह्रौं णमो उवज्झायाण स्वाहा पश्चिमे, ओ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूण स्वाहा वामे । पुनस्तान्येव पदानि ललाटे मूर्ध्नि दक्षिणे पश्चिमे वामे चेति न्यसेत् । सकलीकरणमत्र । तत ।

ओं " उसहाइजिण पणमामि सया अमलो विरजो वरकप्पतरू ।
सवकामदुहा मम रक्ख सदा पुरु विज्जणही पुरु विज्जणिही ॥ ६ ॥

"ओं" इत्यादि पहला मत्र बोलकर हृदय स्थानको स्पर्श करे । दूसरेसे मस्तकको, तीसरेसे चोटीको चौथेसे कवचको पाचवेंसे अस्त्रको और छठेमत्रसे नेत्रोंको छुए। अथवा "ओ ह्रां" इत्यादि पहले मत्रसे हृदयका स्पर्श करे, दूसरेसे मस्तकका, तीसरेसे शिरके दाहिनी तरफका, चौथेसे पश्चिमकी तरफका, पाचवेंसे बांई तरफका स्पर्श करे। इन्हीं पदोंको बोलकर मस्त-

सा०

६ ॥

ओं " अठ्ठत्र य अठ्ठसया अठ्ठसहस्सा य अठ्ठकोडीओ ।
रक्खंतु ते सरीरं देवासुरपणमिया सिद्धा ॥ ७ ॥ स्वाहा ।

अनेन स्वस्यागप्रत्यगपरामर्श कार्यं । ततः ओं धनु धनु महाधनु । स्वाहा । इमां धनुर्विद्यां वामकरांगुलिपर्वसु विन्यस्य प्रतिमाग्रे वामपादांगुष्ठेन सरेफाग्रपुरस्सरं धनुरालिख्य वामपादेनाक्रम्य कायोत्सर्गेण स्थितः सन् ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं थभेइ जल जलण चिंतियमित्तेण पंचणमोकारो अरि मारि चोर राउल घोरुवसग्गं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः विणासेइ स्वाहा । इदं सप्तवारान् समुच्चार्य अष्टोत्तरशतं धनुर्विद्यामावर्तयेत् । इति सकलीकरण विधानं । अथ प्रतिष्ठा ।

करके दक्षिण पश्चिम ओर बायें भागमें स्थापन करे ॥ यह सकलीकरण मन्त्रकी क्रिया हुई । उसके बाद छठे सातवें दो श्लोकमंत्र पढकर अपने अंग उपांगोंको छुए ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके पीछे " ओंधनु" इत्यादि धनुषविद्याको बांये हाथकी उंगलियोंके पोरुओंमें स्थापनकर प्रतिमाके आगे बायें पैरके अंगूठेसे रेफ सहित बाणयुक्त धनुषको लिखकर बाये पैरसे आच्छादितकर खड्गासनसे "ओं णमो" इत्यादि स्वाहा पर्यंत मंत्रको सातवार मनमें बोलकर एकसौ आठवार धनुषमंत्रको जपे । इसतरह सकलीकरण क्रियाका कथन किया । अब प्रतिष्ठा करनेकी विधि कहते हैं:—सकलीकरणादि कर्म करनेके बाद प्रतिष्ठाचार्य वेदीके पूर्वसिंहासनके

कृतकर्माधुनावेदीं प्राच्यपीठाग्रभूतले । इह गंधांबुसंसेकसत्पुष्पप्रकारांचिते ॥ ८ ॥
भद्रासनं निवेश्यात्र विश्वकर्मसमक्षतः । गर्भावतारकल्याणं स्थापयामीदमर्हताम् ॥ ९ ॥

ॐ मूलवेद्या पूर्वस्या दिशि जयादिपीठस्य पुरस्ताद्भद्रासन निवेशयामीति स्वाहा । भद्रासननिवेशनम् ।

वंशक्षायिकदृक्समिद्धसुधियां योस्मिन्मनूनामभू-
द्ये चेक्ष्वाकुकुरूग्रनाथहरियुग्वशाः पुरोवेधसा ।
आधानादिविधिप्रवंशमहिताः सृष्टास्तदुत्थार्यभू-
भर्तृस्वामिकजीविता सुकुलजा जैन्यो जयंत्यंत्रिकाः ॥ १० ॥
मृत्यादित्रयदृग्विशुद्ध्यनुगचित्सत्कर्मणोआगम-
द्रव्यो गोतमगोत्रभागभिजनो नेमिस्तथा सुव्रतः ।
तद्वत्काश्यपगोत्रिणस्तदितरे णोकर्मनोआगम
द्रव्योघेष्वभवन स्वयं यदुदरेष्वंबाः प्रसीदंतु ताः ॥ ११ ॥

आगेकी जगहको गंधोदकसे छिड़ककर पुष्पोंको क्षेपण कर उस जगह पर कारीगरके सामने उत्तम सिंहासन रखे और "मैं अर्हत्प्रभुका गर्भकल्याणक स्थापन करता हूं" ऐसा कहे। उस समय "ॐ मूल" इत्यादि मंत्र बोलना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ "वंश" इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिनमाताओंकी स्तुती करे ॥ १० ॥ ११ ॥ अब जिनमाताओंके नाम कहते है,—

मरुदेवीं वृषस्यांना विजयामजितस्य च । सुषेणां संभवेशस्य सिद्धार्थां नंदनप्रभोः ॥१२॥
सुमंगलाख्यां सुमतेः सुसीमां पद्मरोचिषः । वसुंधरां सुपार्श्वस्य लक्ष्मणां चंद्रलक्ष्मणः॥१३॥
रामां श्रीपुष्पदंतस्य सुनंदां शीतलार्हतः । विष्णुश्रियं श्रेयसश्च वासुपूज्यप्रभोर्जयाम् ॥१४॥
सुशर्मलक्ष्मीं विमलार्हतोऽनंतस्य सुव्रताम् । ऐरिणीं धर्मनाथस्य कमलां शांत्यधीशिनः १५
सुमित्रां कुंथुनाथस्य अरभर्तुः प्रभावतीम् । मल्लेः पद्मावतीं वप्रां सुव्रतस्य मुनीशिनः॥१६॥
विनतां नमिनाथस्य शिवां नेमिजिनेशिनः। देवदत्तां च पार्श्वस्य वीरस्य प्रियकारिणीम्॥१७॥
चतुर्विंशतिमप्येताः मातृींस्तीर्थकारिणाम् । स्थापयामीह तद्गर्भपवित्रितजगत्त्रयाः ॥ १८ ॥

ऋषभनाथकी मरुदेवी अजितकी विजया, संभव नाथकी सुषेणा, अभिनंदनकी सिद्धार्था, सुमतिजिनकी सुमंगला, पद्मप्रभकी सुसीमा, सुपार्श्वकी वसुधरा, चंद्रप्रभकी लक्ष्मणा, पुष्पदंतकी रामा, शीतलनाथकी सुनंदा, श्रेयांसनाथकी विष्णुश्री और वासुपूज्य प्रभुकी जया है ॥ १२ ॥ ॥१३॥१४॥ विमलनाथकी सुशर्मलक्ष्मी, अनंतनाथकी सुव्रता, धर्मनाथकी ऐरिणी, शांतिनाथकी कमला, कुंथुनाथकी सुमित्रा, अरनाथकी प्रभावती, मल्लिनाथकी पद्मावती, मुव्रतप्रभुकी देवदत्ता और महावीरप्रभुकी प्रियकारिणी—इन चौबीस जिनमाताओंकी स्थापना इस जगह करता हूं । इन्हींके गर्भसे तीन जगत पवित्र होता है । १५।१६।१७।१८ ॥ "ओं"

ओं मरुदेव्यादिजिनेंद्रमातरोत्र सुप्रतिष्ठिता भवत्विति स्वाहा । जिनमातृस्थापनार्थं भद्रपीठस्योपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

षण्मासान् भुवमेष्यतां नवदिवश्चाजग्मुषामर्हतां
पित्रोः सौधमपीद्धमुत्सृजति या रैदो महेंद्राज्ञया ।
स्वर्णा गावधुतामरद्रुमफलासारभ्रमं कुर्वतीं
व्यक्तुं तामिह त्वद्दृष्टिमुचितं मुंचामि पुष्पोच्चयम् ॥ १९ ॥

ओं धनाधिपते अर्हत्पितासौधे रत्नवृष्टिं मुंच मुंचेति स्वाहा । कनकशलाका रत्नपंचकविमिश्रचित्रकुसुमाजलिं भद्रपीठस्याग्रत प्रकिरेत् । रत्नवृष्टिस्थापन ।

सर्वर्तुकामिवरवस्त्रफलप्रसूनशय्यासनाशनविलेपनमंडनानि ।
तत्तत्क्रियोपकरणानि तथेप्सितानि तीर्थेमशातुरुपदीकुरुता धनेशः ॥ २० ॥

इत्यादि बोलकर जिनमाताओंकी स्थापनाके लिये सिंहासनके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे । "षण्मासान्" इत्यादि तथा ' ओं " इत्यादि बोलकर सोंनेकी सलाई पाच तरहके रत्न—इनसे मिले हुए पुष्पोंको सिंहासनके आगे बखेरै । इस तरह रत्नवर्षाका स्थापन हुआ॥१९॥ "सर्वर्तु" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर उत्तम कपडे अगूठी हार फल पत्र पुष्प आदिको सिंहासनके आगे रखे । इन सब वस्तुओंको शिल्पी ग्रहणकरे ॥ २० ॥ उसके बाद

ॐ निर्वीश्वर जिनेश्वरमात्रे भोगोपभोगागान्युपनयोपनयेति स्वाहा । चारुवस्त्रमुद्रिकाहारफल-पत्रपुष्पादिक पीठाग्रे प्रतिष्ठयेत् । तच्च सर्वं विश्वकर्मा गृह्णीयात् ।

माताको सोलह स्वप्नोंका देखना। गर्जताहुआ सफेद ऐरावत हाथी १ बैल २ सिंह ३ देव हस्तियोंसे स्नान कराई गई लक्ष्मी ४ लटकतीं दो फूलोंकी मालायें ५ चांदनीयुक्त पूर्णचंद्रमा ६ ऊगता हुआ सूर्य ७ कमलोंसे ढके हुए सुवर्णमई कलशे ८ सरोवरमे क्रीडा करता मछलियोंका जोडा ९ दिव्य सरोवर १० चंचल लहरोवाला समुद्र ११ रत्नजडा सिंहासन १२ मणियोंसे जटित विमान १३ नागेंद्रका भवन १४ प्रकाशमानरत्नोंकी राशि १५ धूमरहित जलती हुए अग्नि १६—ये सोलह स्वप्न है इनको देखकर माताको जगना । उसके वाद अपने पतिसे स्वप्नोंका फल सुनना । वह इस तरह है—पहले स्वप्नमे सफेद ऐरावत हाथी देखनेसे उत्तम पुत्रका होना, बैलके देखनेसे तीन लोकका गुरु होना, सिंह देखनेसे अनत बलसहित होना, स्नान कराई गई लक्ष्मीके देखनेसे इद्रोंकर सुमेरु पर्वतपर अभिषेक होना, पुष्पमाला देखनेसे धर्मतीर्थका प्रवर्तक होना, पूर्णचद्रमा देखनेसे संसारको आनंदित करना, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होना, दो सुवर्णके घडे देखनेसे रत्नादिकी खानिका स्वामी होना, मछलियोंका जोडा देखनेसे बहुत सुखी होना, सरोवर (तालाब) देखनेसे शुभलक्षणो सहित होना, समुद्रके देखनेसे केवलज्ञानी होना, सिंहासनके देखनेसे बडे भारी राज्यका अधिकारी होना, विमान देखनेसे स्वर्गसे आकर जन्म होना, नागेद्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानी

मंद्रं गर्जतमैन्द्रं द्विपमुडुपशयं तरसगंधं गवेंद्रं
सिंहं शैलेन दंतं जलरुहि कमलां स्नाप्यमानां सुरेभैः ।
दाम्नी खे लंबमाने भ्रमदलिपटले चंद्रिकाकीर्णदिक्क
चंद्रं प्रद्योतमर्कं सरसि झषयुगं क्रीडदन्योन्यरक्तम् ॥ २१ ॥
कुंभौ हेमौ सुधाढ्यौ स्फुटकमलमुखौ छन्नमच्छाप्सरोब्जे-
श्चचद्रत्नोर्मिमत्रिं तडिदुचितमरुच्चापजित्सिंहपीठम् ।
कांत्यान्योन्यं हसन्त्या सुरफणिसदने द्या करे रंजयंतं
रत्नौघं प्रज्वलंतं ज्वलनमपि निशातुर्ययामे द्विरष्टौ ॥ २२ ॥
स्वप्नान् दृष्ट्वा प्रबुद्धा झटिति घटितमुच्छृण्वती तूर्यनादान्
पत्युः प्रीता तदुक्त्या सुतनु सुतमिभस्ते स तादृग्महांतम् ।
व्रते विश्वाग्रिम गौः कारिकुलकापितानंतवीर्यं रमेंद्रे-
र्मेरौ स्नाप्य द्विमालं वृषसमयकरत्नौः प्रजाह्लादहेतुम् ॥ २३ ॥
भास्वान् दीप्रं विशारिद्वयमतिसुखिन कुंभयुग्मं निधीशं
कासारो लक्ष्मसारं परविदमुदधिर्विष्टरं प्राज्यराज्यम् ।

होना, रत्नराशिके देखनेसे अनेक गुणोंका खजाना होना, निर्धूम अग्निके देखनेसे कर्मरूपी इंधनका जलाना—ये स्वप्नोंको फल है ॥ २१ । २२ । २३ । २४ ॥ स्वप्नोंको देखना स्थापन

धरेतारं सुरौकः फणिगृहमवधिज्ञानिनं सद्गुणाब्धि
रत्नौघोद्दोम्रमग्निः स्तमितिविदितसतत्फलैपार्हदंवा ॥ २४ ॥

षोडश सत्पुष्पाणि तावंत्येव च सत्फलानि परिवर्त्य पीठाग्रत स्थापयेत् । स्वप्नावलोकन-स्थापनम् ।

श्री ह्री धृते कीर्तिमती च लक्ष्मि शांति च पुष्टे च सहेत्य जिष्णोः ।
आज्ञानियोगेन तथा स्वभक्त्या पित्रे निवेद्यात्ततदभ्यनुज्ञाः ॥ २५ ॥
विशोध्य गर्भं सुपवित्रदिव्यद्रव्यैर्यथास्थाननियोगमेनाम् ।
सुभक्त्या गूढमुपास्यमानां शच्या भजध्वं पुरुदिक्कुमार्यः ॥ २६ ॥

ओं दिक्कुमार्यो जिनमातरमुपेत्य परिचरत परिचरतेति स्वाहा । सद्वस्त्रालंकारा अष्टौ वरकुमारीमंगलतानूलहस्ता संनिधाप्य पीठं परित सकुंकुमरंजितपुष्पाक्षत क्षिपेत् । गर्भशोधनपूर्वादिक्कुमारी-परिचर्यास्थापनं ।

करनेकेलिये सोलह उत्तम पुष्पोंको तथा सोलह उत्तम फलोंको सिंहासनके आगे स्थापन करे । श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी शांति पुष्टि—इन देवियोंकर गर्भ शोधन करना ॥ २५ । २६ ॥ आठ कुमारी कन्याये स्वच्छ वस्त्र आभूषणोंको पहनके हाथमे फल आदि मंगलीक द्रव्य लेकर सिंहासनके पास आके केशर मिले हुए पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे । य-

सर्वौषधिचंदनपंचमृद्भिर्विलिप्य तीर्थोदकपंचकेन ।
विशोध्य पीठं जिनमज्जगर्भे गर्भापमेस्मिन्नवतारयामि ॥ २७ ॥

तामेव रहसि पुरा निरूपितप्रतिष्ठेयामर्हत्प्रतिमा नूतनसितनसितसद्वस्त्रप्रच्छादिता पुरस्सरैट-किकाकरविश्वकर्मसौधर्मेन्द्रौ महोत्सवेनानीय सुविशुद्धभद्रासनगर्भपद्मे निवेशयेता ।

यो गंगांसुरत्नपुष्पकृतभूपस्कारामिंद्रासन—
द्रूकूपं प्रमदाकुलीकृतजगद्गर्भं प्रविश्योत्तमे ।
लग्ने वामातिरंजयन् रविरिह प्राची परानुग्रह-
प्राद्दाग्रधृतिवर्द्धतेस्म सुदृशा सोऽयं जिनस्तन्मुदे ॥ २८ ॥

ओं णमोर्हते केवलिने परमयोगिने शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मेन्धनाय सौम्याय शांताय वरदाय

---

८ गर्भशोधन और दिकुमारियोंकी सेवाविधि स्थापन कीजाती है । सर्वौषधि चंदन आदिसे सिंहासनको पवित्र करके कारीगर और सौधर्मेंद्र दोनों उत्तम वस्त्रसे ढकी हुई प्रतिष्ठेय प्रतिमाको महान उच्छवके साथ लाकर शुद्ध सिंहासनके भीतर कमलपत्रमें स्थापित करें ॥ २७ ॥ उसके वाद " यो गंगां " इत्यादि तथा " ओंणमो " इत्यादि बोलकर कुंकुसे रंगे हुए चमेलीके पुष्प तथा अक्षतोंको मूलनायक और दूसरी प्रतिमाओंके ऊपर क्षेपण करे ॥ २८ ॥ गर्भावतार विधि कहते हैं । "द्रक्र " इत्यादि दो श्लोक बोलकर

अष्टादशदोषविवर्जिताय स्वाहा । जात्यकुंकुमार्पिंजरितजातिपुष्पाक्षत तस्या अन्यासा च प्रतिष्ठेयमाना-नामुपरि क्षिपेत् । गर्भावतारण ।

दृक्शुद्ध्यादिविशेषवद्धसुकृतस्कंधेग्रसर्गांगिक-
स्फूर्जच्छुष्माणि विश्वकर्माणि निजव्यापारयोग्यं वपुः ।
सृष्टमस्तभरास्त्रिबोधरुचिभागास्येन योर्काब्दवद्
गर्भे मातुरिभाकृतिर्वसाति वै सोत्रावतीर्णः प्रभुः ॥ २९ ॥
इत्युक्त्वा प्रणतामहत्तरिकया निर्दिश्यमाना पृथक्
स्थानाख्यादिभिदा जिनेंद्रजननीमभ्यर्च्य नुत्वा स्फुटं ।
नाथं पत्रमुदाभिनीय पितरं चापृच्छ्य जग्मुः पदं
स्वं शक्राः स जयत्ययं जिनपतेर्गर्भावतारोत्सवः ॥ ३० ॥

जिनमातृपूजनार्थं भद्रासनगर्भनिवेशितप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

अथेंद्रैः सिद्धचारित्रशांतिभक्तिभिरादरात् । गर्भावतारकल्याणक्रिया तत्यास सूरिभिः॥३१॥

जिनमाताके पूजनके लिये सिंहासन (भद्रासन) में स्थापित प्रतिमाके आगे पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २९।३० ॥ उसके बाद वे इंद्र सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति शांतिभक्ति—इन तीनोंको करके गर्भावतार कल्याणकी समाप्ति करें ॥ ३१ ॥ इस तरह गर्भावतार कल्याणककी विधि

इति गर्भावतारकल्याणस्थापना । अथ जन्मकल्याणस्थापना ।

देवानां नमयन् शिरांसि समनोस्याकंपयन्नासना-
न्यभ्रं निर्मलयन् सदिक्सुमनसो देवद्रुमैर्वर्षयन् ।
जन्यन् शीतसुगंधिमंदमनिलं यः सिंधुमुद्वेल-
माधुन्वन स धराधरां च निरगात् कुक्षेः शुभेद्धोपसः ॥ ३२ ॥

वस्त्रापनयनम् ।

किं तां सवित्रीमिह वर्णयामि किं चर्चये लक्ष्मयथास्पदं तत् ।
यदेष देवो भुवनत्रयैकगुरुः स्वयं स्वमसवेधिचक्रे ॥ ३३ ॥
पुण्याहमद्याद्य मनोरथा नः पूर्णा जगंत्यद्य सनायकानि ।
प्रमोदते कोद्य न चेतनोस्मिन्नृजेपि जन्मात्यमिद मपश्ये ॥ ३४ ॥

जिनजन्मस्थापनाय तस्या अन्यासा च प्रतिष्ठेयप्रतिमानामुपरि पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

पूर्ण हुई । अब जन्मकल्याणककी स्थापना कहते हैं । " देवानां " इत्यादि श्लोक पढकर वस्त्रको अलग कर देना ॥ ३२ ॥ " किं तां " इत्यादि दो श्लोक बोलकर जिन भगवानके जन्मकी स्थापना करनेके लिये मूलप्रतिमा तथा अन्य प्रतिष्ठेय प्रतिमाओंके ऊपर पुष्प अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३३।३४ ॥ पसेवरहित शरीर १ मलरहित शरीर २ सम चतुरस्र

निःस्वेदत्वमनारतं विमलता संस्थानमाद्यं शुभं
तद्वत्संहननं भृशं सुरभिता सौरूप्यमुच्चैः परम् ।
सौलक्षण्यमनंतवीर्यमुदितिः पथ्याप्रियासृक्च यः
शुभ्रं चातिशया दशेह सहजाः संत्वर्हदंगानुगाः ॥ ३५ ॥

सनवव्यंजनशतैरष्टाग्रशतलक्षणैः । विचित्रं जगदानंदि यज्जिनांगं तदस्त्विदं ॥ ३६ ॥

सहजदशातिशयस्थापनार्थं प्रतिमोपरि दशपुष्पीमावपेत् ।

भृंगाराब्दातपत्रोज्ज्वलचमररुहाण्युद्वहंत्योष्टशो या
द्वात्रिंशद्दिक्कुमार्यो जिनजनुषि भजंत्यंबिकायाश्चतस्रः ।

संस्थान ३ वज्रवृषभनाराच संहनन ४ सुगंधमय शरीर ५ अत्यंत सुंदर शरीर ६ शुभ एक हजार आठ लक्षणवाला शरीर ७ अतुल बल ८ हितमित वचन ९ दूधके समान सफेद लोहू १० ये दश अतिशय जन्मके साथ स्वभावसे ही उत्पन्न होते है ॥ ३५ ॥ जिनेंद्रका शरीर नौसौ व्यंजन और एकसौ आठ लक्षण सहित होता है वह यही है ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर स्वभावसे उत्पन्न दश अतिशयोंकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके ऊपर दस पुष्प रखे । "भृंगारा" इत्यादि तथा " ओं रुचक " इत्यादि कहकर भद्रासनपर विराजमान प्रतिमाके चारों तरफ कुंकुसे रंगे हुए पुष्प अक्षतोंको वखेरै ॥३७॥ यह विजयादि देवताओंका सत्कार स्थापन

गेहं विद्युत्कुमार्यो रुचकवरनगाग्रास्पदा द्योतयंते

या चाष्टौ जातकर्मा दधाति तदनुगास्ताः स्फुरंत्वत्र धरन्याः ॥ ३७ ॥

ओं रुचकवरागिरींद्रशिखरनिवासिन्यो विजयादिदेव्यो यथास्वमर्हत्प्रभुमिहेदानीं परिचरत्विति स्वाहा । पीठस्थप्रतिमा सर्वत कुंकुमराजितपुष्पाक्षत विकिरेत् । विजयादिदैवतोपास्तिस्थापनं ।

दिव्यद्रव्यविशुद्ध एव जवरे यो रत्नवृष्टिं क्षण—

प्रीतायाः पयसीव पद्मवसन्मातुः स्वयं शुद्धिमान् ।

यन्नामापि विशुद्धयेस्ति जगतो ध्यायाति यं योगिन—

स्तस्याप्याकरशुद्धिमेप विधिरित्यातन्वतां देवताः ॥ ३८ ॥

आकरशुद्धिविधानख्यापनार्थं तीर्थोदकाप्लुतपुष्पाणि प्रतिमोपरि निदध्यात् ।

घंटासिंहासनकजलरुहां निःस्वनैरदेयोस्मै—

ज्ञात्वातुल्यजिनजनिमुपेत्योच्चकैः स्वस्वभूत्या ।

किया । "दिव्य" इत्यादि श्लोक पढकर आकरशुद्धिकी विधि दिखलनेकेलिए तीर्थ जलसे धोये हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे ॥ ३८ ॥ "घंटा" इत्यादि श्लोक बोलकर इन्द्र और यजमान आदिकोंके ऊपर उन अमुक नामवाले इन्द्रादि भावोंको स्थापनके- लिए सौधर्म प्रतिष्ठाचार्य पुष्प और अक्षतोंको क्षेपण करे ॥ ३९ ॥ उसके वाद "अय"

कल्पज्योतिर्वनभवनगीर्वाणनाथाः स्वयं यत्
तत्कल्याण यधुराभिनयत्यत्रतं नाम तेमी ॥ ३९ ॥

इद्रयजमानादिषु तत्तदिंद्रादिभावस्थायनाय सौधर्म पुष्पाक्षत क्षिपेत् ।

अयं शच्या गुप्तं कृतवाति नुतिं छद्मशयना--
न्निमील्यात्रा मायातनयमुपहृत्यार्हति ते ।
समागत्यश्र्यादिव्रजमनुव्रजंत्याक्षिकरणीः
शिरो निधानाद्यैः सफलयति सेंद्रोभ्रगगजः ॥ ४० ॥

इद्राण्या भद्रासनादुद्धृत्य समर्थमाणा प्रतिमा जय जयेति वदन् प्रणतिशिराः करकमलाभ्या गृहीत्वा सर्वसघसमन्वित इमानि वृत्तानि पठन्नुत्तरवेदीं नीत्वा जन्माभिषेकोत्सवाय स्नपनपीठे निवेशयेत् ।

यः श्रीमदैरावणवाहनेन निवेशितोंके विधृतातपत्रः ।
ईशानशक्रेण सनत्कुमारमाहेंद्रसच्चामरवीज्यमानः ॥ ४१ ॥

इत्यादि श्लोक बोलकर इद्राणी भद्रासनसे प्रतिमाको उठाकर जय जय शब्द करती हुई मस्तक नवाकर हस्तकमलोपर रखती हुई सब जनसघके साथ आगे कहे जानेवाले श्लोकोको पढती हुई उत्तर वेदीपर ले जाकर जन्माभिषेक उत्सव करनेके लिए स्नान करनेके आसनपर रखे ॥ ४० ॥ फिर " य श्री " इत्यादि आठ श्लोकोको तथा " ओं ह्रीं " इत्यादिको

शच्यादिभिः श्र्यादिभिरप्युदारं देवीभिरात्तोज्ज्वलमगलाभिः ।
पुरस्सरंतीभिरिवाप्सरोभिरग्रे नटतीभिरुपास्यमानः ॥ ४२ ॥
शेपैस्तु शक्रैर्जय जीव नंद प्रसीद श्वश्वत्प्रतप क्षिपारीन् ।
इत्यादि वागुल्वणितप्रमोदैर्मुहुः प्रमन्नैरुपहार्यमाणः ॥ ४३ ॥
सुरैः स्फुटास्फोटितगीतनृत्यवादित्रहास्योल्लुतवालितानि ।
समगलाशीर्धवलस्तुतीनि स्वैरं सृजद्भिः परिचार्यमाणा ॥ ४४ ॥
अहो प्रभावस्तपसां सुदूरमपि व्रजित्वा प्रतिमास्त्वपीक्ष्यः ।
यः सैप साक्षाद्भुवमीक्षितोर्हन्भेघनादिः स्वयमात्मवंधः ॥ ४५ ॥
सविस्मयानदापिति व्रुवाणैरालोक्यमानोभिमुखागतैः खे ।
देवार्षिभिः स्पर्धितदेवयुग्मं नभोगयुग्मैरपि सेव्यमानः ॥ ४६ ॥
प्रदाक्षिणाध्ववव्रजनेन नीत्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि मेरुशृंगम् ।
निवेश्य तत्रत्यशिलोग्रपीठे क्षीरोदनीरैः स्नपितः सुरेन्द्रैः ॥ ४७ ॥
तं देवदेवं जिनमद्य जातं शय्यास्थितं लोकपितापहत्वम् ।
इम निवेश्योत्तरवेदिपीठे प्राग्वक्रमास्मिन् विधिनाभिपिंचे ॥ ४८ ॥

वोलकर पांडुकशिलाके ऊपर सिंहासनपर विराजमान करे ॥ ४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७। ४८ ॥ उसके वाद आकर शुद्धिके अभिपेक स्वरूप जन्मभिपेकको दिखलाते हैं । "रत्न"

ओं ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवान्निह पाडुकाशिलापीठे तिष्ठ तिष्ठेति स्वाहा । उत्तरवे-
दिकास्नपनपीठे प्रतिमानिवेशनमंत्र । अथात आकरशुद्ध्यभिषेकरूपेण जन्माभिषेकमनुक्रमिष्याम. ।

रत्नस्वर्णमयोत्तरीयरसनासंव्यानमौलिप्रभै—
मेरुर्भाति वनैः सहस्रराहितं यो योजनान्युच्छ्रित ।
लक्षं सोयमियं च पांडुकशिला दीर्घा शतं स्फाटिकी
साष्टौ चार्धशतं तात्र सुरभिः श्रेष्टार्द्धचंद्राकृति ॥ ४९ ॥

सोत्राय पृथुमंडपोह्युपकृतो देव्योर्धहस्ता इमा—
स्तास्तान्याप्सरसाममूनि नटितान्यास्येतता योजनम् ।
निम्नाश्चाष्ट सुरैः पयोर्णवजलैर्भृत्वार्णमाणा इमे
ते कुंभाः स जिनोऽयमस्मि स हरिस्तत्काप्यहो संभृतिः ॥ ५० ॥

अभिषेकप्रकरणसज्जीकरणाय समतात्पुष्पाक्षत विकिरेत् । प्रस्तावना । ओं ऋषभादीदिव्य-
देहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनतचतुष्टयाय परमसुखप्रातिष्ठिताय निर्मलाय स्वयमुवे अजरामरपद-
प्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्टिने अर्हते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यपूज्याय अष्टदिव्यनागप्रपूजिताय देवाधिदे-

---

इत्यादि दो श्लोक कहकर अभिषेक आरमकी तयारी करनेके लिये चारों तरफ पुष्प अक्षत
वखेरे ॥ ४९।५० ॥ " ओ ऋषभा " इत्यादि " स्वाहा " तक मत्र बोलकर प्रतिमाके अग

वार्ये परमार्थसन्निहितोस्मि स्वाहा । अनेन प्रतिमायाः अगप्रत्यगानि परमामृशन् सप्तवारानभिमन्त्र्य सकलीं कुर्यात् । ततो दशापि लोकपालानावाहनादिविधिनोपचरेत् । तथाहि ।

इंद्रा मिश्राद्धदेवा शरपतिवरुणाधाररै देशनाग्रे धिष्णोशा दिक्षु वेधा ? ॥५१॥

इंद्रादिदिक्पालानामावाहनादिपुरस्सरार्घ्यपणाय समस्तहव्यद्रव्य जुहोमीति स्वाहा ।

अथ पृथगिष्टिः ।

दिगीशाः शब्दये युष्मानायात सपरिच्छदाः । अत्रोपविशतैतान्वो यजे मर्त्येक्रमादरात्॥५२॥

दिक्षु पुष्पाक्षत क्षिपेत् । अत्र रूप्याद्रिस्पर्द्धीत्यादि वृत्ताष्टक प्रागुक्तमेव वक्ष्यमाणमन्त्रोपेत प्रयुंजीत । तथाहि ।

उपांगोंको छूकर सातवार मन्त्रितकर सकलीकरण क्रिया करे । उसके बाद दश लोकपालोंका आवाहन आदि विधिसे सत्कार करे । वह इस तरहसे है–" इन्द्रा " इत्यादि तथा " इन्द्रादि " बोलकर हवन करनेकी सामग्रीसे अवाहनादि पूर्वक इन्द्रादिका सत्कार करे ॥ ५१ ॥ अब वेदीपूजा कहते है । " दिगीशा " इत्यादि श्लोक बोलकर दिशाओंमे पुष्प अक्षत क्षेपण करे ॥ ५२ ॥ यहापर " रूप्याद्रि " इत्यादि पहले कहे हुए आठ श्लोकोंका मन्त्र पूर्वक प्रयोग करे । वह इस प्रकार है । " रूप्याद्रि " इत्यादि तथा " हे इन्द्र " इत्यादि

रूप्याद्रि .. ॥ ५३ ॥

हे इंद्र आगच्छागच्छ इद्राय स्वाहा, इद्रपरिजनाय स्वाहा, इद्रानुचराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सौमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा ओं स्वाहा भूः स्वाहा स्व. स्वाहा, ओं इद्राय स्वगणपारिवृताय इदमर्घ्यं पाद्य गंध पुष्प दीप धूप चरु बलिं स्वस्तिक यज्ञभाग च यजामहे प्रतिगृह्यता प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

रुक्मारु . . ॥ ५४ ॥

हे अग्ने आगच्छागच्छ अग्नये स्वाहा . . . ।

कल्पांताः . ॥ ५५ ॥

हे यम आगच्छागच्छ यमाय स्वाहा . ।

आरूढं . ॥ ५६ ॥

हे नैऋत्य आगच्छागच्छ नैऋत्या स्वाहा .. . ।

मंत्र बोलकर इंद्रको जल आदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ५३ ॥ "रुक्मारु" इत्यादि तथा "हे अग्ने" इत्यादि बोलकर अग्निकुमारदेवोंको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५४ ॥ "कल्पांता" इत्यादि तथा "हे यम" इत्यादि बोलकर यमदवको जल आदि चढावे ॥ ५५ ॥ "आरूढं" इत्यादि तथा "हे नैर्ऋत्य" इत्यादि बोलकर नैर्ऋत्य दिक्पालको अर्घ चढावे ॥ ५६ ॥

नित्यांभ ... . ॥ ५७ ॥

हे वरुण आगच्छागच्छ वरुणाय स्वाहा . ।

वलाच्छ... . .. ॥ ५८ ॥

हे पवन आगच्छागच्छा पवनाय स्वाहा .... ।

हंसौघे .. . ॥ ५९ ॥

हे धनदागच्छागच्छ धनदाय स्वाहा ... . ।

साशनावा ... ... ॥ ६० ॥

हे ईशान आगच्छागच्छ ईशानाय स्वाहा .... ।

वक्षौजस्तर्जिपृष्ठश्वसनसमतरः कूर्मराजाधिरूढं

क्षुद्रछीवेभकुंभाक्रमणचणसृणिस्फारणव्यग्रपाणिम् ।

" नित्यांभ " इत्यादि श्लोक तथा " हे वरुण " बोलकर वरुणको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५७ ॥ " वलाच्छ " इत्यादि तथा " हे पवन " इत्यादि बोलकर पवन कुमारको जल आदि द्रव्य चढावे ॥ ५८ ॥ " हंसौघे " इत्यादि तथा " हे धनद " इत्यादि बोलकर कुवेरको अर्घ चढावे ॥ ५९ ॥ " साशनावा " इत्यादि तथा " हे ईशान " इत्यादि बोलकर ईशानको जलआदि आठ द्रव्य चढावे ॥ ६० ॥ " वक्षौज " इत्यादि तथा " हे धरणेंद्र "

सांश्लिष्टं दृक्सहस्राद्वितव्यघृणिफणारत्नरुक्तृप्तवाल-
व्रभौघापीडमर्हच्छ्रितमहि यमधौर्चामि पद्मासमेतम् ॥ ६१ ॥

हे धरणेंद्र आगच्छागच्छ धरणेंद्राय स्वाहा ।

वैरिस्तंवेरमास्रोल्लसदरुणसटाटोपशुभ्रांगर्भाक्—
द्वालेंदुस्पार्द्धिदंष्ट्रोत्क्रमखरनखरारक्तदृक् सिंहसंस्थम् ।
कुंतास्त्रं रोहिणीष्टं कुवलयसुमनः स्रक् श्रितां शंभयुक्तं
ज्योत्स्ना पीयूषवर्षं यज यजनपरं सोममर्घं महामि ॥ ६२ ॥

हे सोम आगच्छागच्छ सोमाय स्वाहा ।

एवं सत्कृत्य दिक्पालानेभ्यो मंत्रैः पुनर्ददे । अप्कुंडे सप्तशः सप्तधान्यमुष्टिभिराहुतिः ॥६३॥

ओं आ क्रौं इंद्राय स्वाहा । अनेन जलपूर्णकुंडे सप्तमे सप्तधान्यमुष्टिभिरिंद्राहुतिं दद्यात् ।

इत्यादि बोलकर धरणेंद्रको अर्घ चढावे ॥ ६१ ॥ "वैरिस्त" इत्यादि तथा "हे सोम" इत्यादि बोलकर सोम दिक्पालको जलआदि अष्ट द्रव्य चढावे ॥ ६२ ॥ "एवं" इत्यादि तथा "ओं आ" इत्यादि बोलकर जलसे भरे हुए कुंडमें सातवार सात धान्योंकी मुठी भरकर आहुतिया दे ॥ ६३ ॥ इसीतरह अग्नि आदिके कुंडमेंभी जानना । उसके बाद फिर

एवमन्यादिभ्योपि । अथ पुनस्तामेव प्रतिमा जिनमत्रेण सप्तवारानभिमन्त्र्याकरशुद्धिं विदध्यात् । जिन-मत्रो यथा । ओं अर्हद्भ्यो नम, पादानुसारिभ्यो नम., कोष्ठबुद्धिभ्यो नम, बीजबुद्धिभ्यो नम । सावधानिभ्यो नम;परमावधिभ्यो नम, ओं ह्रौं वल्गु २ निवल्गु २ महाश्रवण । ओं ऋषभादिव-र्धमानेभ्यो वषट् वौषट् स्वाहा ॥ अथाभिषेक. ।

पूरं पूरमयस्तटावधिपय सिंधोपसृत्यामरै—
र्हस्ताहस्तिकयार्पितैर्गलल्लुलन्मुक्ताफलस्रग्भरैः ।
श्रीखंडद्रवचर्चितैः परिदिनश्रीकर्मणा भर्मणात्
कृष्णैः साष्टसहस्रमानकलितैः कुंभैः सिताब्जाननैः ॥ ६४ ॥

आतोद्यध्वनिगीतमगलरवैः सहर्षहर्षद्युतां
देवानां नटदप्सरोगणवपुः श्रीभिश्च क्षीर्णवरे ।
पार्श्वेन्द्रासनभासि पांडुकशिलासिंहासने प्राङ्मुखं
सौधर्मप्रमुखा निवेश्य जिनपं जन्मन्यसिंचत् किल ॥ ६५ ॥

उसी प्रतिमाको जिनमत्रसे सातवार मन्त्रित करके आकरशुद्धि करे । वह जिनमंत्र " ओ अर्ह " यहासे लेकर " स्वाहा " तक है ॥ अव अभिषेक वर्णन करते हैं । " पूरं " इत्यादि तीन श्लोक पढकर कलशोंपर पुष्प अक्षत और जलको क्षेपण करे ॥६४।६५।६६॥ "गोवृषं"

धूलीपल्लवमंगलौषधिफलत्वग्मूलसर्वौषधी
संपृक्ताखिलतीर्थवारिसुभृतैर्मंत्रातिपूतैः कुटै. ।
अष्टाभिः स्वपदे स्थितं स्थिर मुदा वेद्याचल चारु तद्
विंब चाकरशुद्धिसेचनमिदं तज्जातकर्मार्पये ॥ ६६ ॥

एतत्रय पठित्वा कलशेषु पुष्पाक्षतोदकं क्षिपेत् ।

गोवृंदशृंगतो गजपतेर्दंतान्महातीर्थतः
शैलेंद्रा नृपतोरणादुरुसरित्तीराच्च पद्माकरात् ।
आनीताभिरुपस्कृतेन शुचिभिर्मृद्भिः सुतीर्थांभसा
पूर्णेन स्नपयामि हेमकलशेनार्च्यां जिनार्चां मुदा ॥ ६७ ॥

शिल्प्यादीन् समान्य सूत्रधारेण धूलीकलशाभिषेकः । कुल्याभिषेक ।

कुल्याभिः शुचिभिः सतोः स्वसुरपो पित्रोश्च पत्यात्मजैः
संयुक्ताभिरशल्पिकाभिरनिशं सक्ताभिरर्हन्मते ।

इत्यादि बोलकर कारीगर आदिका सत्कार करके शुद्धवालु आदिसे अभिषेक करे ॥ ६७ ॥ " कुल्याभिः " इत्यादि बोलकर उत्तम कुलकी स्त्रियोंसे प्रोक्षण (जलसे अभिषेक) करावे ॥ ६८ ॥ इन्हीं स्त्रियोंसे प्रतिष्ठा योग्य उवटना करावे । वेल, ऊमर, चपा, आम, वकुल,

सिद्धार्थाक्षतसत्फलोद्गमनिशादूर्वादिमैत्रीद्युया
कांडमुखोद्धृतेन जिनपं संप्रोक्षयामि श्रियै ॥ ६८ ॥

प्रोक्षणकप्रणयनम् । एताभिरेव च स्त्रीभि प्रतिष्ठायोग्यमूलादिवर्तनं कारयेत् ।

बिल्वोदुंबरचंपकाम्रवकुलन्यग्रोधनीपार्जुन—
प्लक्षाशोकपलाशपिप्पलदलप्रच्छादितश्रीमुखैः ।
पुण्याशोष्यसरित्तडागसरसीपूर्वोरुतीर्थांबुभिः
पूर्णैः पूर्णमनोरथैरिव कुंठैः कुर्वे निषेकं विभोः ॥ ६९ ॥

ओं णमो अरहंताण सव्वसरीरावच्छिदे महाभूप आय २ गिण्ह २ स्वाहा । एप मंत्र उत्तरत्रापि योज्यः । द्वादशपल्लवाभिषेक ।

दूर्वापद्मकदनागुरुयवश्रीखंडबर्हिस्तिलै—
र्नंद्यावर्तकजातिकुंदकुसुमैः स्वर्णार्जुनव्रीहिभि ।
भूम्यमात्मपवित्रगोमयनदीकूलोद्यमृद्रोचना—
सिद्धार्थैश्च समं भृतैः सुपयसा कुंभे· प्रभुं स्नापये ॥ ७० ॥

वड़, कदंब, अर्जुन, पाकर, अशोक, ढाक, पीपल इन बारह वृक्षोंके पत्तोंसे ढके हुए जलके कलशोंसे "ओं णमो" इत्यादि मंत्र बोलकर अभिषेक करे ॥ ६९ ॥ यह द्वादश पल्लवका

अष्टादशमंगलद्रव्याभिषेक ।

श्यामाशमींदीवरभृंगविष्णुक्रांतागुडूची सह देविकाभिः ।
मिश्रैः पवित्रैः सलिलैः सुपूर्णैरौप्यैर्जिनार्चां स्नपयामि कुंभैः ॥ ७१ ॥

सप्तौषधस्नपनम् ।

लवंगभल्लातकबिल्वजातीफलाम्रकम्रामलवारिपूर्णैः ।
शुभ्रैर्घटैरिष्टफलाभिहेतोः संस्नापये स्नातकनाथबिंबम् ॥ ७२ ॥

फलपंचकस्नपनम् ।

उदुम्बराश्वत्थशमीपलाशन्यग्रोधकल्कव्यतिकीर्णमर्णः ।
तैर्थं वहद्भिः कलशैर्बलक्षैर्भक्त्याभिषिंचामि जिनेंद्रमूर्तिम् ॥ ७३ ॥

अभिषेक हुआ । " दूर्वा " आदि बोलकर दूब आदि अठारह मंगलीक वस्तुओंसे मिले हुए जलके घडोंसे अभिषेक करे ॥ ७० ॥ यह मंगल द्रव्याभिषेक हुआ । " श्यामा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित श्यामा आदि सात वनस्पतियोंसे मिले हुए जलपूर्णकलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७१ ॥ " लवंग " इत्यादि बोलकर उसमें कहे हुए लवंग, भल्लातक, बेल, जायफल, आम-इन पांच उत्तम फलोंसे मिश्रित निर्मल जलसे भरे हुए घडोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे ॥ ७२ ॥ यह फलपंचक स्नपन हुआ ॥ " उदुंबरा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित

छल्लिपंचकस्नपनम् ।

व्याघ्री गुडूची सहदेवि सिंही वरी कुमारी शतमूलिकानाम् ।
मूलैर्वलायाश्च युतेन सर्वैः कुंभाम्भसाहं स्नपये जिनार्चाम् ॥ ७४ ॥

दिव्यौषधिमूलाष्टकस्नपनम् ।

कर्कूलैला जातिपत्रलवगश्रीखंडोग्रा कुष्ठसिद्धार्थमय्यों ।
सर्वौषध्यावासितैस्तीर्थतोयैः कुंभोद्गीर्णैः स्नापयाम्यर्हदर्चाम् ॥ ७५ ॥

सर्वौषधिस्नपनम् । एव जन्माभिषेकस्यानियमाकरशुद्ध्याभिषेक विधायानेन मन्त्रेण जिनार्चामधिवासयेत् । ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स जस्स चक्कुजलतं गच्छइ आयास पायाले लोयाण भूयाण जूए वा विवादे वा रणागणे वा गयगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताण अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख रक्ख स्वाहा । श्रीवर्धमानमंत्र ।

ऊमर, पीपल, शमी, ढाक, वड–इन पाचोंकी छालसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे स्नपन करे ॥ ७३ ॥ “ व्याघी ” इत्यादि बोलकर उसमें कथित व्याघ्री (परंड) गिलोइ, आदि आठ उत्तम औषधियोंके मूलसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७४ ॥ “ कर्कूलै ” इत्यादि बोलकर उसमें कही गई औषधियोंसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे

अष्टदशमंगलद्रव्याभिषेक ।

श्यामाशमींदीनरभृंगविष्णुक्रान्तागुडूची सह देविकाभिः ।
पिष्टैः पवित्रैः सलिलैः सुपूर्णैरर्घैर्जिनार्चां स्नपयामि कुंभैः ॥ ७१ ॥

सर्वौषधस्नपनम् ।

सर्वांगभल्लातकबिल्वजातीफलाम्रकम्रापकलापरिपूर्णैः ।
शुभ्रैर्घटैरिष्टफलाभिलीनैः संस्नापये स्नातकनाथबिंबम् ॥ ७२ ॥

फलरसस्नपनम् ।

उदुम्बराश्वत्थशमीपलाशन्यग्रोधकल्कव्यतिकीर्णवर्णैः ।
तैर्थं जलैः कलशैरभ्यभिन्यासिंचामि जिनेंद्रमूर्तिम् ॥ ७३ ॥

अभिषेक हुआ । " दूर्वा " आदि बोलकर दूब आदि अठारह मंगलीक वस्तुओंसे मिले हुए जलके घड़ोंसे अभिषेक करे ॥ ७० ॥ यह मंगल द्रव्याभिषेक हुआ । " श्यामा " इत्यादि बोलकर उसमें कथित श्यामा आदि सात वनस्पतियोंसे मिले हुए जलपूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७१ ॥ " सर्वांग " इत्यादि बोलकर उसमें कहे हुए लवंग, भल्लातक, बेल, जायफल, आम इन पांच उत्तम फलोंसे मिश्रित निर्मल जलसे भरे हुए घड़ोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे ॥ ७२ ॥ यह फलस्नपन स्नान हुआ ॥ " उदुंबर " इत्यादि बोलकर उसमें कथित

छल्लिपंचकस्नपनम् ।

> व्याघ्री गुडूची सहदेवि सिंही वरी कुमारी शतमूलिकानाम् ।
> मूलैर्वलायाश्च युतेन सर्वैः कुभांमसाहं स्नपये जिनार्चाम् ॥ ७४ ॥

दिव्यौपधिमूलाष्टकस्नपनम् ।

> कक्कूलैला जातिपत्रलवगश्रीखंडोग्रा कुष्ठसिद्धार्थमय्यो ।
> सर्वौपध्यावासितैस्तीर्थतोयैः कुंभोद्दीर्णैः स्नापयाम्यर्हदर्चाम् ॥ ७५ ॥

सर्वौपधिस्नपनम् । एवं जन्माभिपेकस्थानीयमाकरशुद्ध्याभिपेक विधायानेन मन्त्रेण जिनार्चामविवासयेत् । ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिस्सहस्स जस्स चक्कुजलत गच्छइ आयास पायाल लोयाण भूयाणं जूए वा विवादे वा रणागणे वा गयंगणे वा थभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताण अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख रक्ख स्वाहा । श्रीवर्धमानमंत्र' ।

ऊमर, पीपल, शमी, ढाक, वड–इन पांचोंकी छालसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे स्नपन करे ॥ ७३ ॥ " व्याघ्री " इत्यादि बोलकर उसमें कथित व्याघ्री (एरंड) गिलोय, आदि आठ उत्तम औषधियोंके मूलसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करे ॥ ७४ ॥ " कक्कूलै " इत्यादि बोलकर उसमें कही गई औषधियोंसे मिश्रित जलसे पूर्ण कलशोंसे

इति जन्माभिषेकविधानम् ।

अथोद्धृत्य निजस्कन्धे नामधेयमतीयां मुदा । आरोप्य जयंजयनिद्रस्तमेव परमोत्सवम् ॥८७॥

महेन महता युक्तः प्राप्य तां मुक्तोदिकाम् । त्रिःपरीत्य पठन्मन्त्रमिमं न्यस्येत्तदासने ॥८८॥

ओं " एतद्राजाङ्गण तत्पुरकृतमुपमं सिंहपीठं तदेतत्
देवोऽयं जातकर्माणि [illegible] मनोज्ञ ।
देवी मातोपवीना [illegible]
देवाः [illegible] ॥ ८९ ॥

ओं नमोऽर्हते [illegible]

[illegible]

[illegible]

अंत्र प्रसीद दशमेपु चतुर्निकायगीर्वाणभर्तृपु निधेहि सनम्रवत्सु।
एतास्त्वपद्रिदयितासु ललाटघृष्टपादाग्रभूपु मुदमुल्वणयस्मितेन ॥ ९० ॥
नित्याश्रियेभ्युदयदुर्मदिनां त्वयीशे त्वज्ज्योतिरेतदपि नः परमक्तवत्याम् ।
कर्मस्विहाभ्युदयिकेपु मतेति कोत्र प्राच्याशयोस्तमयपाक्युदयार्कसूतेः ॥९१॥
मग्नाः निमज्जंति जगंत्यमूनि मंक्ष्यंति वा मोहार्णवे कः ।
इहोपगृह्णति भवादृशीदृक् सर्वज्ञबीजं यदि न प्रसूते ॥ ९२ ॥
त्वं कल्याणी त्रिभुवनजनन्येकसूरस्यासि त्व
कीर्तिर्ज्योत्स्नां किरयति सदा क्षालयंती जगत्ते ।
स्त्रीसर्गाग्रे गणयति शिवांगेष्वापि स्वं त्वमेव
त्वत्पूताः स्मो नियतमधुना विश्वमान्ये नमस्ते ॥ ९३ ॥
पीठिकाया कुकुमाक्तकुसुमानि क्षिप्त्वा प्रणमेत् ।
जिनदेवीं जिनाभ्यर्णां स्तुत्वा दिव्यावरादिभिः। प्रसाद्यानंदनाटयेन स्वयं चाराध्य तं पुनः९४

प्रतिमाको रखा जाता है ॥ ८९ ॥ अब जिनमाताके अभिषेककी विधि कहते हैं– " अत्र प्रसीद " इत्यादिसे लेकर तिरानवै तक श्लोक बोलकर वेदीमें कुकुमसे मिले हुए फूलोंको डालकर प्रणाम करे ॥९०।९१।९२।९३॥ उसके बाद जिनदेवीको उत्तम वस्त्रादिसे पूज तथा

रसाना तस्य दिपाधान देवाः परिकर्मणि । भोगसंपादने श्रीद् कीर्तने शक्रपुत्रकान् १५

[illegible] नाकुन मनोज्ञोल्प[illegible] नामनः । यद्दस्थापयत्तद्दनायां स्थापयाम्यहम् ॥१६॥

[illegible] ग्रमश्रीर [illegible] कुरावितृतश करानामृणकम्पन-
[illegible] मोचमृतान स्नानभाजने निराय शिगया निवेशगेत् ।

> सिद्धमुद्राह पदोन्नुकोऽपि तद्वंकमाणकायामये
> नियंगं परयंतुम्यविधिना धर्मेण नामद्राम् ।
> यः मन्नाहिति म्नपने त्रिजगतीनाथोम्नतीदस्तरं
> यो भक्तेति कुमार पर न भजत् भोगान्यमाम्पत्र नम् ॥ १७ ॥

[illegible] प्रभुकी [illegible] लिये दिशाओंको, देवताओंको सेवाके लिये, भोगादि सामर्थ्यके लिये कुबेरको, [illegible] इन्द्रपुत्रोंको, इप पनिकी [illegible] इस [illegible]
प्रो [illegible] जैसे पहले प्रभुके पास रखा था उसी तरह मैं भी इस प्रभुकी प्रतिमाके
सामने स्थापित करता हूं ॥ १५, १६ ॥ ऐसा कहकर उत्तम गन्ध सुगन्धित पदार्थ आ
[illegible] (नवैद्य) शालिधान और अनेक पकवान दूध दही घी मिश्री उत्तम [illegible]
और धूप आदि [illegible] सामग्री [illegible] पात्रोंमें रखकर [illegible] रखे । " सिद्ध
[illegible] रखकर इनके उत्पन्न [illegible] राज्य सम्पदा आदि उपभोगोंकी स्थापना करनेके

पुण्यविपाकसंपादितसौराज्यसंपदुपभोगस्थापनाय कुंकुमारुणितपुष्पाणि प्रतिमोपरि विकिरेत् ।

एवं वैषयिकैः सुखैः सुरनराधीशामपि पार्थितैः

शश्वत्तीतमनाः सुराधिपनृपैः राज्ञार्थिभिः सेवितः ।

कालैकक्षपणीयमोहमहिमान्याधृतिसंसूचक—

प्रेक्षातंकिततीर्थकाच्छिवरतोप्यास्ते द्वितीयाश्रमे ॥ ९८ ॥

देवोपनीतभोगोपभोगानुभवनाय प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति जन्मकल्याणस्थापना ॥ २ ॥ अथ निष्क्रमणकल्याण ।

प्राप्ते स्रामज्वरवदणुता वृत्तमोहे विवेक—

ज्योतिष्युद्यत्यथ किमपि तत्कारणं वीक्ष्य मंक्षु ।

निर्विण्णोर्हत्समरससुधास्वादनौकः सहेत्य

प्रीत्यानत्य सततदुपधीनभ्यनंदत्सुरर्षीन ॥ ९९ ॥

लिये केशरसे रंगे हुए पुष्पोंको प्रतिमाके ऊपर वखेरै ॥ ९७ ॥ "एव" इत्यादि श्लोक बोलकर देवोंसे लाये गये भोग उपभोगोंका अनुभव दिखानेके लिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ ९८ ॥ इस प्रकार जन्मकल्याणकी स्थापना हुई ॥ (२) ॥ अब तपकल्याणकका वर्णन करते है । "प्राप्ते" इत्यादि श्लोक बोलकर शमसुखके एक स्वादी होनेकी स्थापनाके

मशागुरीकणनिकम्थापनार्थ जिनोपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

जिनपस्य जिनाधीश स्वयंभूस्य ध्वनामि । तस्मिन्नार्यमुत्तं ज्योतिः शिवमस्थानमेव नः १००
दृष्पां कामामिषं नित्तं मुद्रव्यादिनतुष्टयी । एनामेत्यपन्वेतु मुष्टूत्माहोयमेश्रताम् ॥ १०१ ॥
कुंभतां नत्परं ज्योतिः मीयंतां प्राणिनोऽखिलाः । भव्यात्मानः प्रबुध्यंतां छिद्यंतां कर्मशृंखलाः
निर्मलोज्ज्वुद्रितानंतशक्तिनेनगिरत्नतः । ज्ञान निःसीमसर्वात्मन् विंदन मतपत्लादे ॥ १०३ ॥
इमं विधिं नियोगेन मागर्मनणयेन वा । यात्वान्येमहि कृत्ये तु त्वादृशो नाग्रयुः स्वयम् १०४
इति स्तुतो त्रिरोयोगं चौकालिकन्तुरः गुरुः । कृतानि तपकल्याणं स्थापयाम्यत्र नं प्रभुम् १०५

नि कमश कल्याणोपकम्थापनाय नःमानुश्रिपुष्पासन प्रतिपोरार्थ क्षिपेत् ।

न्यग्रोधो पद्मांगि मजंग्रुमनदरापे शिरीषोदिता-
मेने नं किन नागमर्जनाद्रिनः श्रीनिंदुकः पाटलः ।
मंन्दारन्मकपित्थनंदकविशाभार तुन्नअंगको
नीगातु रकुम्मोरगाशिकरसो शान्तश्च दीप्तादृपाः ॥ १०६ ॥

जिन भगवानके ऊपर पुष्पोंकी अञ्जलि क्षेपण करे । ९९ ॥ उसके बाद प्रभुके वैराग्य होनेके समय लौकांतिक देवोंकर "स्वयम्भ" इत्यादि छह श्लोकोंसे स्तुति करना । १००।१०१।
१०२।१०३।१०४।१०५ । फिर तपकल्याणका आरम्भ स्थापन करनेके लिये पालनमें स्थित

ओं णमो अरहताण निनदीक्षावनवृक्षा अत्रावतरत्विति स्वाहा । जिनदीक्षावनवृक्षस्थापनाय मूलवेद्या प्रत्याग्निवेशितायाः प्रतिष्ठेयमहाप्रतिमाया पुरस्तात्पुष्पाणि प्रकिरेत् ।

कल्पांतार्णववीचिविभ्रमनिपानाक्रांतदिक्क प्रभुः
शक्रैरेत्य कृता स्तवादिकाविधिः स्वं वर्गमापृच्छ्यमां ।
त्यक्त्वा भूपखगामरोढशिविकामारुह्य गत्वा वनं
पर्यंकस्य उदग्मुखो नतशिवो वा प्राङ्मुखः प्रव्रजेत् ॥ १०७ ॥
सोयं मुक्तिपुरीं प्रयान् विजयतां स्तादस्य पथाःशिवो
नंद्यादस्य मनो विशुद्धिरनिशं सैद्धा गुणाः पात्वमुम् ।
क्रोधादिप्रतिरोधिनोस्य सुतपःशस्त्रैः पतंतु क्षताः
संतश्चैनमनारतं परिचरंत्वेतत्पदं प्रेप्सवः ॥ १०८ ॥

पुष्प अक्षतोंको प्रतिमाके ऊपर क्षेपण करे । " न्यग्रोधो " इत्यादि तथा " ओ णमो " इत्यादि बोलकर भगवानके वड सप्तपर्ण आदि दीक्षावनवृक्ष स्थापन करनेकेलिये मूलवेदीके पश्चिमकी तरफ स्थापित प्रतिष्ठेय महाप्रतिमाके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ १०६ ॥ " कल्पांता " इत्यादि श्लोक बोलकर मूलवेदीके सिंहासनसे प्रतिमाको उठाकर उत्तम पालकीमें वैठाकर महान उच्छवके साथ लेजाकर पहले स्थापनकिये गये दीक्षावन वृक्षके

सिद्धिकनपोनुष्ठानप्रतिष्ठार्थं प्रतिमोपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

ततोर्चां तां पुनर्नन्दी नीत्वा नाभिः महाजमाध्यानान्तनारितजिनां योजयेत् तिलकादिना ११४

एष क्रमश्चलानां विस्तरेण प्रकाशितः । स्थिराणां तु यथास्थाने समर्पणं प्रकल्पयेत् ॥११५॥

[illegible]—गर्भाननागादिविधिः समस्तं स्थानस्थिता नाल्याजिनेन्द्रबिंबे ।

संकल्प्य सिंहासनपादपीठपर्यन्तमेव देवीं निदधे कुलाकाम् ॥ ११६ ॥

[illegible] मार्गश्च [illegible] । इति निःकरण [illegible] ।

[illegible] । [illegible] ।

[illegible] गृहे जनयितुः [illegible]

[illegible] रत्नकनक [illegible] वर्षति ।

[illegible] प्रतिमाके ऊपर [illegible] ॥ ११३ ॥ उसके [illegible] उस प्रतिमाको [illegible] तिलकादि क्रियामें युक्त करे ॥ ११४ ॥ यह क्रम [illegible] प्रतिमा [illegible] गया है परन्तु स्थिर प्रतिमाओंका उसी स्थान पर [illegible] करे ॥ ११५ ॥ [illegible] सिंहासनके [illegible] ॥ ११६ ॥ [illegible] करते हैं । [illegible] करते हैं । जिस [illegible] गर्भमें [illegible]

भत्युर्वी माणिगार्भिणी सुरसरिन्नीरोक्षिता षोडश-
स्वप्नेक्षामुदितां भजंति जननीं श्रीदिक्कुमार्योसि सः ॥ ११७ ॥

प्रच्छन्नं जननीमुपास्य शयनादानीय शच्यार्पितं
यं तत्रास चतुर्णिकायविबुधः श्रीमत्करींद्राश्रितः ।
सौधर्मांकनिवेशितं सुरगिरिं नीत्वाभिषिच्यावया
संयोज्योपचरत्यजस्रमसमैर्भोगैः स भास्येष नः ॥ ११८ ॥

किं कुर्वाण सुरेंद्ररुद्रविषयानंदाद्विरक्तस्तुतो
यो लौकांतिकनाकिभिः शिविकया निःक्रम्य गेहान्महैः ।
दिव्यैः सिद्धनतीद्वयावनतरुं पूत्वा परादीक्षया
भुंक्ते शुद्धनिजात्मसंविदमृतं स त्वं स्फुरस्येष नः ॥ ११९ ॥

महिने तथा आनेके वाद नौ महीने इस तरह पद्रह महीने इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने पिताके घर रत्न आदिकी वर्षा की तथा सोलह उत्तम स्वप्नोंके देखनेसे हर्षित जिनमाताकी दिक्कुमारियां सेवा करती हुईं ॥ ११७ ॥ जिसके जन्म कल्याणकमें इंद्राणीने माताको निद्रामें मग्न करके प्रभु वालकको लाकर इंद्रको सौंप दिया, फिर उसे ऐरावत हाथी-पर विठाके सुमेरु पर ले जाकर इन्द्रादिने अभिषेक किया, उसके वाद राज्यसंपदा आदि भोगोपभोगकी दिव्य सामग्रीसे शोभायमान हुए ॥ ११८ ॥ उसके वाद किसी

मन्दप्रशिक्रमाक्रमभवत्शुभोत्माहेषु तिष्ठन् क्वचित्
धर्मध्यानवलाद्रत्नगलिताधायुस्त्रयः सप्त नः।
दृष्टि प्रमकृती समानपञ्चतुर्जातिनिद्रा द्विधा
स्वभ्रस्थावरसूक्ष्मतिर्यगुभयोद्योतान् कषायाष्टकम् ॥ १२० ॥

क्लैब्यं स्त्रैणमथाद्यमेन नवमे हास्यादिषट्कं ततो
सिम्योदीति पृथक्क्रुधादित्रयमे लोभं कषायाष्टकं।
निद्रा समचलाप्रपत्तिमसमये दृष्टीप्रतिभागतु-
र्दिः पंच सिपले परेण चरमे शुक्लेन मोऽप्यहो ॥ १२१ ॥

जिनेश्वरको पाकर भोगोंसे वैराग्ययुक्त हुए, उससमय लौकान्तिक देवोंने आकर स्तुति की फिर दिव्य पालकीमें बैठाकर वनमें लेगये वहां पर शिलापट्टके नीचे बैठके प्रभुने सिद्धोंको नमस्कार कर आप ही दीक्षा धारण की, केशलोंच करके ध्यानमें मग्न हुए निरन्तरमनःपर्ययका स्वाद लेते हुए। ऐसे प्रभु हमारे कल्याण करो हो ॥ १२० ॥ जिन प्रभुने धर्मध्यान और शुक्लध्यानके बलसे अनादिपापमें ही गुणस्थान क्रमसे कर्म प्रकृतियोंका नाश किया। वह कम कर्मकालमें क्षिप्रतासे क्षिप्रापूर्ण है। क्षिप्रतासे सबको नहीं किया। उसके क्रमसे चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान आदि अनन्त

द्रव्यं भावमथातिसूक्ष्ममधिगम्युक्त्वा वितर्के स्फुर-
दर्थव्यंजनसंगगीरपि पृथक्त्वेनापि संक्रामता ।
कर्मांशानव स्थितेन मनसा मोहार्भकोत्साहवत्
कुठेन द्रुमिवाणुशः परशुना छिंदन् यतिष्वध्यासि ॥ १२२ ॥
क्षुण्णे मोहरिपौ भजन्भुवयथाख्यातधिराज्यश्रियं
शुद्धस्त्वात्मनि निर्विचारविलसत्पूर्वोदितार्थश्रुतः ।
स्वच्छंदो च्छलदुत्कलोज्ज्वलचिदानंदैकभावो लस-
च्छेपारिव्रजवैभवः स्फुटमसि त्वं नाथ निर्ग्रंथराट् ॥ १२३ ॥
विश्वैश्वर्यविघातिघातिदितिजो छेदा गतानंतदृक्
संविद्वीर्यसुखात्मिकां त्रिजगदाकीर्णे सदस्या स्थितः ।
जीवन्मुक्तिमृषींद्रचक्रमहितस्तीर्थं चतुस्त्रिंशता
कुर्वाणोतिशयैः पुनात्यपि पशून् संप्रातिहार्याष्टकैः ॥ १२४ ॥

प्राप्त पाकर सयोगकेवली हुए । उससमय इन्द्रने समवसरणकी रचना की । उसी समय चौंतीस अतिशय आठ प्रतिहार्य तथा पूर्वोक्त अनंतज्ञानादि चार—इसतरह छयालीस गुण मंडित हुए दिव्यध्वनिद्वारा तिर्यंचों आदि जीवोंका कल्याण करते हुए ॥ १२० । १२१।१२२ १२३ । १२४ ॥ उसके बाद प्रभुने योगोंको रोककर शुक्लध्यानके बलसे मोक्षअवस्थाके

देव्यक्तिविशेषसंव्यवहानिव्यक्त्युल्लसल्लांछन-
श्रीमत्त्वत्क्रमपद्मयुग्मसततोशस्तौ नियुक्तं शुभैः ।
यक्षद्वद्वमवश्यमेनदुचितैः प्राच्यैरिदानींतनै-
र्देवेंद्रैरपि मान्यते शिवमुदोप्येष्यद्भिरीशिष्यते ॥ १२५ ॥

द्वौ गंधौ रसवर्णवंधनवपुः घातकान पंचशः
षट् षट् संहननाकृतीः शुभगतिः स्वस्वानुपूर्व्याशुभे ।
खत्रज्ये परघातकागुरुलघूच्छ्वासोपघाता यशो
नादेयं शुभसुस्वरस्थिरयुगैः स्पर्शाष्टकं निर्मितम् ॥ १२६ ॥

ङ्यांगोपांगमपूर्णदुर्भगयुगे प्रत्येक नीचैः कुले
वेद्यं चान्यतरद्विमक्षतिमुपांत्ये मूरयोगं क्षणे ।
आदेयं सनिजानुपूर्व्यनृगतिं पंचाक्षयोऽतिशयः
पर्याप्तत्रसवादराणि सुभगं मर्त्यायुरुच्चैः कुलम् ॥ १२७ ॥

अतके दो समयोंमेंसे पहले समयमें पचासी कर्म प्रकृतियोंमेंसे वहत्तर प्रकृतियोंका क्षय किया और अंतसमयमें अवशेष तेरह प्रकृतियोंका नाशकर कर्मोंसे मुक्त हुए तीनलोकके शिखरपर जा विराजे ॥ १२५ । १२६ । १२७ । १२८ । १२९ ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त श्लोकोंको

वेनैनान्यतरेण तीर्थकमार अष्टादशाप्यंतिमे
निष्कृत्यमकृतरिनुत्तरसमुच्छिन्नाक्रियध्यानतः ।
यः प्राप्तो जगदग्रमेकसमयेनोर्ध्वगमात्माष्टभिः
सम्यक्त्वादिगुणैर्विभाति स भवानत्रार्थितोर्च्याज्जगत् ॥ १२८ ॥
मुक्तिश्रीपरिरंभनिर्भरचिदानन्देन येनोज्झितं
देहं द्राक् स्वयमस्तसंहतितडिद्दामेव मायामयम् ।
कृत्वार्शीन्द्रकिरीटपावकयुतैः श्रीचन्दनाद्यैर्मुदा
संस्कृत्याभ्युपयांति भस्म भुवनाधीशाः स जीयात् प्रभुः ॥ १२९ ॥

एतत्पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पाञ्जलिमार्पयेत् । इति कल्याणपञ्चकारोपणविधान । अथ संस्कारमालाधिरोपणम्।

न्यस्यामथेह विवेष्ट चत्वारिंशतमर्हतः । संस्कारान् दृष्टिलाभादिशिवातपदगोचरान्॥१३०॥

पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि क्षेपण करे । यह कल्याणपंचककी आरोपणाविधि हुई । अब संस्कारमालाकी आरोपण विधि कहते हैं । "न्यस्या" इत्यादि श्लोक बोलकर सम्यग्दर्शनप्राप्तिके संस्कारसे लेकर मोक्षप्राप्तितक संस्कार स्थापनेकी प्रतिज्ञा करे ॥ १३० ॥

सद्दर्शनस्य संस्कारः स्फुरत्वयमिहार्हति । संज्ञानस्यैव सद्वृत्तस्यैष सत्तपसोप्ययम्॥१३१॥
एष वीर्यचतुष्कस्य मात्रष्टतयमंडले । प्रवेशस्यायमेषोष्टशुद्ध्यवष्टंभनिष्ठिते ॥ १३२ ॥
परीषहजयस्यायं त्रियोगासंयमच्युतेः । शीलमस्यायमेष त्रिकरणासंयमारतेः ॥ १३३ ॥
अयं दशा संयमोपरमस्यैषोक्षनिर्जितेः । अयं संज्ञानिग्रहस्य दशधर्मधृतेरयम् ॥ १३४ ॥
अष्टादशसहस्राणां शीलानामयमेषकः । चतुरभ्यधिकाशीतिगुणलक्षसमाश्रयः ॥ १३५ ॥
विशिष्टधर्मध्यानस्य अयमेषोतिशायिनः । अप्रमत्तयमस्यायं सुदृढश्रुततेजसः ॥ १३६ ॥
अकंपप्रकरणश्रेण्यारोहणस्यामुकोसकौ । अनंतगुणशुद्धेश्चाप्यामवृत्तकृतेरयम् ॥ १३७ ॥
अयं पृथक्त्ववीतर्कवीचारप्रणिधेरयम् । अपूर्वकरणस्यैषो निवृत्तिकरणस्य च ॥ १३८ ॥
बादराणां कषायाणामय किट्टिकृतेरयम् । सूक्ष्माणामेष पूर्वेषां किट्टिनिर्लेपनस्य च॥१३९॥
एषोन्येषामयं सूक्ष्मकषायचरणस्य च । प्रक्षीणमोहनस्यायं यथाख्यातविधेरयम् ॥ १४० ॥
अयमेकत्ववीतर्कवीचारध्यानभूरयम् । घातिघातस्य कैवल्यज्ञानदृष्ट्युद्यतेरयम् ॥ १४१ ॥
तीर्थप्रवर्तनस्यायमेष सूक्ष्मक्रियस्य च । शैलेशीकरणस्यायं परसंवरवर्त्यसौ ॥ १४२ ॥
योगकिट्टिकृतेरेष तन्निर्लेपनगाम्यसौ समुच्छिन्नक्रियस्यायं श्रितोयं निर्जरां पराम् ॥१४३॥

"सद्दर्शन" इत्यादि एकसौ पैंतालीस तक श्लोक बोलकर अभिप्राय मनमें धारण करके प्रतिमाके ऊपर पुष्पांजली क्षेपण करे ॥ १३१ से १४५ ॥ इसप्रकार अडतालीस संस्कारोंकी

सर्वकर्मक्षयस्यायमनादिभवपर्ययः । विनाशस्याशुकोनंतसिद्धत्वादिगतेरयम् ॥ १४४ ॥
आदेयसहजज्ञानोपयोगैश्वर्यचार्यसौ । एष देहसाक्षात्येक्षोपयोगैश्वर्यगोचरः ॥ १४५ ॥

एतदर्थारोपणपरायणात.करण पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् । इत्यष्टचत्वारिंशत्सस्कारमालारोपणविधानम् । अथ मंत्रन्यासविधानम् ।

विश्वोद्भासि परब्रह्मव्यंजकं स्यात्पदांकितम्। शब्दब्रह्मेति मंत्रालीं न्यस्यामीह जिनेशिनः१४६

मंत्रन्यासप्रतिज्ञानाय प्रतिमोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

भालनेत्रश्रवोनासाकपोलरदपंक्तिपु । स्कंधयोर्मूर्ध्नि जिह्वाग्रे ओंमायार्हं रमोत्तरान् ॥ १४७॥

स्थापनाका विधान हुआ । अव मंत्रन्यास विधि कहते हैं—मैं स्यात्पदसे चिन्हित, जगतका प्रकाशक और परब्रह्मको कहनेवाले ऐसे शब्दब्रह्म इस मंत्रको अर्थात् ब्रह्म नामको जिनेश्वरमें स्थापित करता हूं ऐसा कहकर मंत्रन्यासकी प्रतिज्ञा प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके ऊपर पुष्पोंकी अंजलि चढावे ॥ १४६ ॥

उसके वाद "भाल" इत्यादि चार श्लोक बोलकर ओं ह्रीं अर्हं श्रींपूर्वक अकारादि वर्णोंको शरदऋतुके निर्मल चंद्रमाके समान चिंतवन करे तथा प्रतिष्ठेय प्रतिमामें हाथसे स्थापन करे। वह इसतरह है—"ओं" इत्यादिको ललाटमें दाहिनी वाईं तरफ स्थापन करे, इसीप्रकार 'इई' को नेत्रोंमें, उऊको कानोंमें, ऋॠ को नाकमें, ऌॡको गालोंपर, एऐ को दांतोंमें, ओ औ को कंधेके दोनों भागोंमें, अं को मस्तकमें, अःको जीभके अगाडीके भागपर, कवर्गको दाहिनी

स्वरान द्विशः पृथक्तद्वद्वाह्वोर्दक्षिणवामयोः । कचवर्गौ तथा कुक्ष्येष्टतवर्गौ पृथक् पफौ ॥ १४८ ॥
ऊर्वोर्व गुह्यके नाभ्यां भं मं मांसलतापदे । देहे य मूर्ध्नि रं लं पृष्टेधिसंधि वं ॥ १४९ ॥
शं जानुनोर्गुल्फयोः पं पादयोः सनिवेश्य हं । सर्वमाणपदे साक्षाज्जिनमेषोवतारये ॥ १५० ॥

ओं ह्रीं अर्हं श्रीं एतत्पूर्वकानकारादिवर्णान शरश्चद्रगौरान् यथोक्तस्थानेपु मनसा ध्यात्वा प्रतिष्ठेयप्रतिमासु करेण विन्यसेत् । तथाहि । ओं ह्रीं अर्हं श्रीं अ आ ललाटे दक्षिणतः प्रभृति न्यसेत्, ओं ह्रीं अर्हं श्रीं इई दक्षिणेतरनेत्रयो । एवं सर्वत्र । उऊ कर्णयोः ऋ ॠ नासापुटयोः, ऌ ॡ गंडयो., ए ऐ ऊर्ध्वाधो दंतपक्त्यो , ओ औ स्कधयो., अ मस्तके, अ जिह्वाग्रे, क ख ग घ ङ दक्षिणभुजे, च छ ज झ ञ वामभुजे, ट ठ ड ढ ण दक्षिणकुक्षौ, त थ द ध न वामकुक्षौ, प दक्षिणोरौ, फ वामोरौ, व गुह्ये, भ नाभिमंडले, म स्फिजो', य शरीरस्थाने उदरे, र ऊर्ध्वरोमाचे मस्तकादिकेशेष्वित्यर्थ , ल पृष्टे, व ग्रीवाकक्षादिसंधिपु, श जानुयुगे, प गुल्फमूलयो., स पदयो , ह सर्वप्राणस्थाने हृदये । इति मत्रन्यासविधानं । अथ प्रतिष्ठातिलकदान ।

भुजामें, चवर्गको बाई बाहमे, टवर्गको दाहिनी कूखमे, तवर्गको बाई कूखमें, प दाहिनी जांघमे, फ बाई जांघमे, व गुह्यस्थानमे 'भ नाभिस्थानमे, म चूतडोंमें, य उदरमे, र शिरके केशोंमे, ल पीठमें, व गले कांख आदिकी संधिओंमें, श घुटनोंमें, ष पैरोंमें, हकारको हृदयस्थानमें, स्थापन करे ॥ १४७ । १४८ । १४९ । १५०॥ यह मत्रन्यास विधि हुई । अब प्रति-

प्रीत्यै पिंगा प्रियंगूफलमचिरफलं मगलार्थ दधि स्यात्
सिद्धार्था वांछितार्थान् ददाति सुमनस सौमनस्य महायुः ।
दूर्वा श्रीखंडलोहप्रभृतिसुरभितावृद्धिवृद्धिश्च वृद्धि
वृद्धिः शैत्यं तुषारो क्षतविशदयशास्यक्षताश्चेत्यमीभिः ॥ १५१ ॥
शुच्या कौसुंभवस्त्राभरणघुसृणसन्माल्यभाजा चतुष्के
तिष्ठत्या भर्तृवस्त्रांचलयुतवसनप्रांतया यब्दपत्न्या ।
कोणोद्भासि प्रदीपामलजलपविताभ्यर्चितायां शिलायां
पिष्टैर्दत्वा गुडार्दीस्तिलकयतु कृतावाहनादिर्जिनार्चाम् ॥ १५२ ॥

चत्वारि मंगलं स्वाहेत्यंतेन प्रणवादिना । प्रियगुः स्थापकैर्जप्त्वा धार्या हैमादिपात्रगा ॥१५३

तिलकद्रव्यसज्जीकरण । अत्र स्थापनानिक्षेपेण यमाश्रित्यावाहनादिमत्रा कथ्यते तद्यथा । ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा एहि २ संवौषट् आवाहन, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा तिष्ठ २ ठ ठ स्थापन, ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा अत्र सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधीकरणं

प्रातिलकदानकी विधि कहते हैं ॥ हरताल आदि तिलक द्रव्य सोनेके पात्रमें रखकर "सि-द्धार्था" इत्यादि तीन श्लोक तथा "ओं" इत्यादिसे आवाहनादि करके जिन प्रतिमामें तिलक लगावे अथवा उसके आगे तिलक द्रव्य चढावे ॥ १५१ ।१५२। १५३ ॥ इसप्रकार वह इंद्र

कृत्वैवं कर्म शक्रोर्चां पूरकेण जिनं स्मरन् । सुलग्ने रेचकेनातः प्रियां वा तत्पदं न्यसेत् ॥ १५४ ॥

तिलकमंत्रः । इति तिलकदानाविधान । अथाधिवासनाविधान ।

गंधाक्षतस्रग्वस्त्राग्रयवालीकंकणेपुभिः । चरुधूपारातिकफलैर्विरूढकयवारकैः ॥ १५५ ॥

सवर्णपूरेक्षुवालिवार्तिभृंगारकैरिमैः । मंत्राभिमंत्रितैश्चित्तैः सार्धस्वस्त्ययनैः क्रमात् ॥ १५६ ॥

एप निष्पतिघो देष्यत्केवलज्ञाननिर्वृतिम् । प्रतिष्ठितमहार्चायां जिनेंद्रमधिवासये ॥ १५७ ॥

स्वासन्नीकृतचदनाद्यधिवासनद्रव्येपु पुष्पाक्षत प्रक्षिप्य तत्कालप्रतिष्ठिताहर्त्प्रातिमा नमस्कुर्यात् ।

कर्पूरगकलवंग एला कररंवितं चंदनौघैः ।

दूरं स्फुरत्परिमलैर्जिनभर्तुरारात् विघ्राणसौरभमदैरपि चर्चयेंघ्रीन् ॥ १५८ ॥

ॐ नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ गध २ गृहाण स्वाहा ।

पूरक प्राणायामसे जिनेन्द्र देवका स्मरण करता हुआ रेचक प्राणायामसे चरणकमलोंमे तिलकद्रव्य चढावे ॥ १५४ ॥ यह तिलकदान विधि हुई । अब अधिवासनाविधि कहते हैं– केवलज्ञान कल्याणसे प्रतिष्ठित हुई महान् अर्हत प्रतिमामे अर्हत्प्रभुको स्थापित करके चदन अक्षत आदिसे पूजा करे ॥ १५५ । १५६ । १५७ ॥ वह पूजा इसप्रकारसे है–पहले आवाहन-नादि करके पुष्प अक्षत क्षेपण करे । फिर "कर्पूर" इत्यादि श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर चंदन चढावे ॥ १५८ ॥ " शुभत " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर अक्षत

शुंभच्छारदपार्विकेंदुसुहृदामामोदनमोंखण-
भ्राणमाणितचेतसां श्रुतटिनीतोयाभिषिक्तात्मनाम् ।
अच्छेदार्जितसाधुशीलयशसां शालयक्षतानां चयै-
राचारैरिव पंचभिः सुरचनैरर्हत्पदाब्जे यजे ॥ १५९ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु २ अक्षतानि गृहाण २ स्वाहा ।

सौरभ्यसांद्रमकरंदपरागजाती मंदारमल्लिकमलादिमयेन दाम्ना ।
कल्याणपंचकरुचिं शरपंचकेन भव्यजता जिनपते रचयामि पूजाम् ॥ १६० ॥

ओं नमोर्हते जय सर्वतो मेदिनीपुष्प वरपुष्पाणि गृहाण २ स्वाहा । पंचशरमालारोपणम् ।

जलपच्छुक्लतया परां विमलतां तात्कालिकीं लभ्यतां
नव्यत्वेन लसद्दशापरिचयेनोत्कर्षपर्याप्तता ।
माहार्घेण महर्घतां च परमध्यानस्य दुर्लक्ष्यतां
सूक्ष्मत्वेन ददे जिनस्य वदने वस्त्रं भनष्टाहृते ॥ १६१ ॥

चढावे ॥ १५९ ॥ "सौरभ्य" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर पुष्प चढावे ॥ १६० ॥
"जल्प" इत्यादि दो श्लोक तथा "ओं नमो" इत्यादि बोलकर वस्त्र और जौमाका सहित सात

भक्तर्द्धिष्टद्धिकृदनुक्षणभाविशर्म सम्यक् फलामितगुणावालिमुद्गिरंत्या ।
रावर्द्धिष्टद्धियवमालिकयार्चितोर्हन् गां सप्तधान्यकमदोर्हतु सप्तभगी ॥ १६२ ॥

ओं नमोर्हते सर्वशरीरावस्थिताय समदनफल सर्वधान्ययुत मुखवस्त्रं ददामि स्वाहा । मुखवस्त्र-दानपूर्वक यवमालामारोप्य जिनस्य पादाग्रत सप्तधान्यान्युपहरेत् ।

मूत्रे रूप्यमयेथ पट्टरचिते प्रोतं विविक्तात्मचि–
दीप्यद्दर्शनबोधवृत्तकृदं रत्नत्रयं स्वात्म यत् ।
रागात् क्षिप्तवरस्रजः शिवरमासंगोत्सुकस्य प्रभोः
जीवनमुक्तिरमाविवाहविधये बध्नाम्यदः कंकणम् ॥ १६३ ॥

ओं " अट्ठविहकम्ममुत्तो तिलोयपुज्जो य संथुओ भयव । अमरणरणाहमहिओ अणाइणिहणो सिव दिसओ " स्वाहा । कंकणबंधनम् ।

पंचोन्मादनमोहने स्मृतिभुवः संतापनं शोपणं
बाणान् मारणमप्यपार्थितव्रत चत्वारि विघ्नच्छिदे ।

अनाजोंको भगवानके चरणकमलोंके आगे चढावे ॥ १६१ । १६२ ॥ "सूत्रे" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर कंकणबंधन करे ॥ १६३ ॥ 'पंचो' इत्यादि बोलकर धनुषका स्था-

शुक्लध्यानविकल्पना निवसनप्रतिपुकांडान्यमू-
न्युद्यत्पंखमयूखते जिन फलान्यारोपयाम्यर्हतः ॥ १६४ ॥

काडस्थापनमन्त्रः ।

भाज्याज्यं परमान्नमुत्कटसितं पक्वान्नवर्गं वर-
भक्षानक्षसुखान् शशांककिरणभ्रष्टान् समं शालनैः ।
शाल्यन्नं सुरसैः सुगंधिविशदं पेयं पयःपूर्वकं
सान्नाय्यं कनकादिपात्रविततं श्रीरोचिभर्त्रे ददे ॥ १६५ ॥

ओं नमोऽर्हते सहभूतायानतसुखतृप्तायाग्रे चरु विस्तारयामि स्वाहा ।

धूपैर्यौगिकगंधसारविधिद्रव्याण्यायविर्भवत्
सौरभ्यातिशयैः शिखिव्यतिकराद्धूमायमानैर्मुहुः ।
सद्ध्यानानलदह्यमानतनुकैरिवाधिष्ठित-
क्रोडान् साधुजनाशयान् प्रतिदिशं न्यस्यामि कुंभान् प्रभोः ॥ १६६ ॥

पन करे ॥ १६४ ॥ "भाज्य" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर नैवेद्य (पक्वान्न) चढावे ॥ १६५ ॥ "धूपै" इत्यादि तथा "ओं" इत्यादि बोलकर आठों दिशाओंमे आठ धूपदान रखे

वह्निवर्तिकास्थापनम् ।

सूत्रार्थैरिव निर्मलैर्मतिफलैराह्लादिभिः शीतलैः
पीयूषैरिव जीवनादिकगुणग्रामस्फुरद्गौरवैः ।
पूर्णं तीर्थजलैः सुपल्लवमुखं हैमं सदूर्वाक्षतं
दिव्यांगं दधतं न्यसामि धृतये भृंगारमग्रेऽर्हतः ॥ १७४ ॥

भृंगारस्थापनम् ।

एवं देवे विश्वदेवाप्तसेव्ये न्यस्तेऽर्चायां चारुवस्तूपचारैः ।
व्यक्तात्यंतोदात्तशक्त्यानुभावे प्रांशुकामानर्घमभ्युद्धरामः ॥ १७५ ॥

पूर्णार्घम् ।

आदिनाथोऽस्तु नः स्वस्ति स्वस्ति स्तादजितेश्वरः ।
शंभवो भवतु स्वस्ति भूयात्स्वस्त्यभिनंदनः ॥ १७६ ॥
अस्तु वः सुमतिः स्वस्ति पद्माभ स्वस्ति जायताम् ।
सुपार्श्वः स्वस्ति भवतात् स्वस्ति स्ताच्चंद्रलांछनः ॥ १७७ ॥

प्रकाशित करके चढावे ॥ १७३ ॥ "सूत्रार्थै" इत्यादि बोलकर जलसे भराहुआ सोनेका छोटा कलश चढावे ॥ १७४ ॥ "एवं देवे" इत्यादि बोलकर पूर्णार्घ चढावे ॥ १७५ ॥ "आदि-

सतां स्वस्त्यस्तु सुविधिर्भवतु स्वस्ति शीतलः ।
श्रेयान् संपदतां स्वस्ति स्वस्त्यस्तु वसुपूज्यजः ॥ १७८ ॥
राज्ञोस्तु विमलः स्वस्ति स्वस्ति भूयादनंतचित् ।
भूयाद्धर्मचितः स्वस्ति शांतीशः स्वस्ति जायताम् ॥ १७९ ॥
संघस्य कुंथुः स्वस्त्यस्तु भवतु स्वस्त्यरप्रभुः ।
स्वस्ति मल्लिजिनेंद्रोस्तु स्वस्त्यस्तु मुनिसुव्रतः ॥ १८० ॥
जगतोस्तु नमिः स्वस्ति स्वस्ति स्तान्नेमिनायकः ।
स्वस्ति पार्श्वजिनो भूयात् स्वस्ति सन्मतिरस्त्विति ॥ १८१ ॥
भरिमध्निमे स्वस्त्ययने भक्तिरागादघातिनाम् ।
स्वस्तिपंतः स्वयं शश्वत्संतु स्वस्त्ययनं जिनाः ॥ १८२ ॥
एतानामर्थं पठित्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । स्वस्त्ययनविधान ।

अथ केवलज्ञानकल्याणस्थापनम् ।

इत्यधुणकृतानि[illegible]नभिः [illegible] निधायार्हतः
कोशे नित्यपदार्थमर्थ[illegible]चितं पद्मा निधायार्पितं ।

[illegible] इत्यादि सात श्लोक बोलकर पुष्पोंकी अंजलि चढ़ावे ॥ १७८ से १८२ ॥ यह स्वस्ति-

स्वीकार्यापि शिवाय सद्वृतमिमे कुर्मोवतार्यार्तिकं
तस्योतिक्षप्य च धूपमध्वमघवत्तच्छ्रीमुखोद्घाटनम् ॥ १८३ ॥

ॐ उसहादिवड्ढमाणाणं पचमहाकल्लाणसंपण्णाणं महइ महावीरवड्ढमाणसामीण सिज्झउ मे महइ महाविज्जा अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं सयलकलाधराण सज्जोजादरूवाण चउतीसातिसयविसेससजुत्ताणं वत्तीसदेविंदमाणिमउडमत्थयमहियाण सयलछोयस्स सतिपुट्ठिकल्लाणाओ आरोगाकराण नल्देववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजदिअणागारोवगूढाण उहयलोयसुहयफलयराण थुइसयसहस्सणिलयाण परापरपरमप्पाणं अणाइणिहणाण वलिवाहुवलिसाहिदाण वीरवीरे ओं हा क्षा सेणवीरे वड्ढमाणवीरे हंसं जयंतं धराइएवज्जसिथलममयाण ससंसदवमपइट्ठियाण उसहाइवीरमगलमहापुरिसाण णिच्चकालपइट्ठियाणं इत्थ सण्णिहिदा मे भवतु मे भवतु ठ ठ क्ष क्ष स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमन्त्र ।

येनोन्मील्य समस्तवस्तुविशदोद्भासोद्भटं केवल-
ज्ञानं नेत्रमदर्शिमुक्तिपदवी भव्यात्मनामृन्यथा ।
तस्यात्रार्जुनभाजनार्पितसिता क्षीराज्यकर्पूरयुक्
वक्रस्वर्णशलाकया प्रतिकृतौ कुर्वे दृगुन्मीलनम् ॥ १८४ ॥

वाचन विधि हुई । अब केवलज्ञान कल्याणका स्थापन करते हैं–" इत्यभ्र " इत्यादि श्लोक तथा ओं उसहा " इत्यादि श्रीमुखोद्घाटन मंत्र बोलकर भगवानके मुखको उघाडे ॥ १८३ ॥ "येनो" इत्यादि तथा "ओं नमो" इत्यादि नेत्रोन्मीलनमंत्र बोलकर नेत्रोंको उघाडे ॥१८४॥

ओं नमो अरहताण अमियरसायणं विमलतेयाणं सति तुट्ठि पुट्ठि वरद सम्मादिट्ठीणं वृषभं अमयवरसण स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमत्र । अथ गुणाध्यारोपण ।

यत्सामान्यविशेषयोः सह पृथक् स्वान्यत्वयोर्दीपत्र—
बिंबं घोतकमर्हतः समुदभूत्ते दृक् चिदो ये च यत् ।
तद्व्यापारनिर्बंधि वीर्यमपि यत्सौख्यं तदव्याकुली-
भावोऽनंतचतुष्टयं तदिह तद्बिंबे न्यसाम्यांतरम् ॥ १८५ ॥

अनतज्ञानादिचतुष्टयप्रतिष्ठार्थे प्रतिमोत्तमागे चतु पुष्पीमारोपयेत् ।

सौभिक्ष भवातिस्म योजनशत यत्संसदं सर्वतः
सार्धक्रोशयुगोज्झिताक्षितितलं यन्वे स्पृहं सद्गतम् ।
यश्चण्डास्वसितांगसंगवशतोप्यप्रमाणघातोंगिनां
या तावत्यपि विग्रहस्य कवलाहारं विनैव स्थितिः ॥ १८६ ॥
हुंडामप्यवसर्पिणीं प्रतिवदन् यो नोपसर्गोऽस्त्व-
स्तैजोवैभवतश्चतुर्मुखतया वीक्ष्यैकमुख्योपि या ।

अव गुणोंकी आरोपणविधि कहते हैं—"यत्सामान्य" इत्यादि बोलकर अनतज्ञान आदि अनत चतुष्टयकी स्थापनाकेलिये प्रतिमाके मस्तकके ऊपर चार पुष्प चढावे ॥ १८५ ॥ "सौ-

विघ्नास्त्वप्यखिलासु यः परिद्दढीभावो दृढः सर्वदा
यच्छायाविरहस्तिरश्चरदिनेऽप्यंगे क्षिपेयेऽपि च ॥ १८७ ॥
पक्षस्पंदविपर्ययोऽनिशमृत व्याधेः प्रयत्नाच्च यो
यो मूर्तेर्नखकेशवृद्ध्युपरमो मर्त्यप्रकृत्यत्ययात् ।
ते घातिक्षयजा दशाप्यतिशया बाह्याश्च चेतश्चमत्–
कारोद्रेककृतो जिनस्य निहिता विंबे मयात्राधुना ॥ १८८ ॥

घातिक्षयजदशातिशयस्थापनार्थं पीठिकायां दश पुष्पाणि क्षिपेत् ।

धूलीशालोऽतः क्षितौ चैत्यगेहप्रासादाल्यो नाट्यशाला सरांसि ।
मानस्तंभाश्चाधिदिग्वीथ्यतोर्णः पूर्णं खेयं वेदिरम्यं विदिक्षु ॥ १८९ ॥
वेदीभूषा पुष्पवाट्यस्ततोंतो नाट्याशोकाद्याद्यभूर्हेमशाला ।
वेदीरुद्धावेत्रजोर्वीशतारप्राकारांतो नाट्यकल्पद्रुमोर्वी ॥ १९० ॥

वेदीद्वात. स्तूपदिग्पालयोर्वीयत्पार्श्ववर्तिः सनाद्यार्कशाला ।
तन्मध्येऽर्हन्गंधकुट्यासने भात्यत्रास्थानीं तामिह स्थापयामि ॥ १९१ ॥

भिक्ष" इत्यादि तीन श्लोक बोलकर केवलज्ञानके समय होने वाले दस अतिशयोंके स्थापन करनेके दस फूलोंको वेदीपर चढावे १८६ । १८७ । १८८ ॥ "धूली" इत्यादि तीन

समवसरणस्थापनार्थं प्रतिमाया. समतात् पुष्पाक्षत क्षिपेत । इति समवसरणस्थापनम् ।

उपानीयं यतोदैवैर्देवदेवातिशायिनः । चतुर्दशाद्भुता भावाः स्थापयामीह तानपि ॥ १९२॥
ब्रुवतोर्द्धार्द्धसर्वांगि मागधोक्तिमयी प्रभोः । सभायामन्वकार्यंत मागधैर्वागिहास्तु सा॥१९३
जातिकारणवैरैकघस्मरेप्याश्रमे पुष्यन । यया प्रीतिकरा भर्तृभक्तान मैत्रीह भातु सा॥१९४
सर्वर्तुसंपद्भ्राजिष्णु द्रुमा रत्नमयी ध्रुवत । या जिनाब्दतलासर्जि मभुभक्त्यास्तु सा मभुः १९५॥
यो विस्रसा विहरति प्रभौ मृद्धतिलोन्ववात् । यश्चाभूत्परमानंदः सर्वेषा तामिहापि तौ॥१९६॥
समार्जनं योजनं यद्वोर्जिनाग्रेनिलैः कृतम् । या गंधोदकवृष्टिश्च मेघैस्ते भवतामिह ॥१९७॥
यातं तं सर्वतः पद्माः पंक्तिद्वात्रिंशता तताः । सप्तसोधपदोश्चैको यत्तत्पद्मायन त्विदम् १९८
विभुवैभवनिध्यानद्दापिता पुलकानि च । फलभारानतव्रीहिव्याजाद्भूया सा त्विह ॥१९९ ॥
प्रभोर्दिशावसंहर्षाश्चन्नैर्मल्य दधुर्दिशः । तद्योगादिव यत्खं च प्रसन्नं तद्भवत्विह ॥ २०० ॥
वरमदं विभुभक्तुमेनैतेत्यभितो व्यधुः । यद्भावनाः समस्तान्यदेवाज्वनं तदस्त्विह ॥ २०१ ॥
रत्नरुक् चक्रदीपारसहस्रेण रविं क्षिपन । धर्मचक्रं चचाराग्रे यत्मभोस्तत्स्फुरत्विदम्॥२०२॥
छत्रचामरभृंगारकुंभाब्दव्यजनध्वजान् । स्वसुप्रतिष्ठान् यानिंद्रो भर्तुस्तेनेत्र संतु तो ॥२०३॥

श्लोक बोलकर समवसरण स्थापन करनेके लिये प्रतिमाके चारोंतरफ पुष्प और अक्षत फेंके ॥ १८९ । १९० । १९१ ॥ "उपानीयं" इत्यादि बारह श्लोक बोलकर देवकृत अतिशयोंके स्थापन करनेकेलियें वेदीपर चौदह पुष्प चढावे ॥ १९२ से २०३ ॥

चतुर्दशदेवोपनीतातिशयस्थापनार्थं पीठिकाया चतुर्दश पुष्पाणि क्षिपेत् । इति दिव्यातिशय-स्थापनम् ।

स्पृश्याः स्पृशंतो नापद्भिर्यन्नामापि तथापि तम् । येनेंद्रो यष्टभक्त्या तत् मातिहार्याष्टक त्विदम्॥

अष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनाय पीठिकायामष्टपुष्पीं क्षिपेत् ।

रत्नांशुवर्षेन्द्रधनुर्व्यातास्या हरिवाहनम् । यचक्रे धर्मैकात्मा सिंहपीठं तदस्त्वदः ॥२०५॥

ओं सिंहासनश्रियै स्वाहा । सिंहासने पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

भवाम्रभेद्यो मेघौघध्वनिजिद्योजन सद । व्यामुवन् यो न केनापि व्यधाय्येप सतदध्वनिः ॥

ओं ध्वनिश्रियै स्वाहा । सरस्वत्या पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

यक्षैर्दोधूयमानार्हद्देहं छायाछलाश्रिता । या चामरचतु.पष्टिर्नोनटीतिस्म सास्त्वियम्॥२०७॥

ओं चतुःषष्टिचामरश्रियै स्वाहा । चामरधारियक्षयो. पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

चक्षुष्ये पश्यतां सप्त भासयत्यनिशं भवान् । भामंडले ब्रुडन् यत्र विश्वतेजास्यदोस्तु तत् ॥

" स्पृश्या- " इत्यादि बोलकर आठ प्रातिहार्य स्थापन करनेकेलिये वेदीमें आठ पुष्प चढाये ॥ २०४ ॥ " रत्ना " इत्यादि तथा " ओ " इत्यादि बोलकर सिंहासनके आगे पुष्प चढावे ॥ २०५ ॥ " भवाभ्र " इत्यादि तथा ' ओं " इत्यादि बोलकर सरस्वतीके आगे पुष्प चढावे ॥ २०६ ॥ " यक्षै " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर चमर धारण करनेवाले यक्षोंके आगे पुष्पाजलि चढावे ॥ २०७ ॥ " चक्षुष्ये " इत्यादि तथा " ओं " बोलकर मा-

ओं मामडलश्रियै स्वाहा । भामण्डले पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

रत्नरोचि नदद्भृंगखगोवातचलल्लुतः । विश्वाशोकीकृते व्यक्तं योऽशोको नटदेष सः २०९

ओं रत्नाशोकाश्रियै स्वाहा । रक्ताशोके पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

मुक्तमारोहमालधि मुक्त्वा लंबूप लक्षण । छत्रत्रयं स्मात्रत् श्रीनिधिं यन्न व्यात्यदोस्तु तत् ॥

ओं छत्रत्रयाश्रियै स्वाहा । छत्रत्रये पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

सभ्याः शृण्वंत्वसभ्योत्कीर्मेतीवातीव योध्वनत् । सार्धद्वादशकोटयुग्रह्वादित्रोयं स दुंदुभिः ॥

ओं दुदुभिश्रियै स्वाहा । दुदुभौ पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

गंगाभिः सुभगे गुजद्भृंगौघा सुमनस्तमे । सुमनोभिः सुमनसां वृष्टिर्या सर्जे सास्त्वसौ २१२

ओं पुष्पवृष्टिश्रियै स्वाहा । मालाविद्याधरयो. पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

इत्यष्टौ प्रातिहार्याणि प्रतिमायां जिनेशिनः । स्थापितानि च निघ्नंतु भाक्तिकानां सदापदः ॥

मडलके आगे पुष्पाजलि चढावे ॥ २०८ " रत्न " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर लाल अशोकके आगे पुष्पाजलि क्षेपण करे ॥ २०९ ॥ " मुक्त " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर तीन छत्रोंकेलिये पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ २१० ॥ " सभ्या " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर दुंदुभिबाजेकेलिये पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २११ ॥ " गगाभ " इत्यादि तथा " ओं " इत्यादि बोलकर पुष्पमाला धारण करनेवालोंके आगे पुष्पोंको क्षेपण करे ॥ २१२ ॥ " इत्यष्टौ " इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे आठ पुष्पोंको चढावे ॥

प्रतिमाग्रेष्टपुष्पीं क्षिपेत् । इत्यष्टमहाप्रातिहार्यस्थापनम् ।

वंशे जगत्पूज्यतमे प्रतीतं पृथग्विध तीर्थकृतां यदत्र ।
तल्लांछनं संव्यवहारसिद्ध्यै बिंबे जिनस्येदमिहोल्लिखामि ॥ २१४ ॥

लाछने पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

शक्रेण सत्कृत्य सुभाक्तिकत्वात् त्रातुं नियुक्तो जिनशासनं यः ।
कामान् दुहन्नीश जुषां यथास्व प्रतिष्ठितस्तिष्ठतु सैष यक्षः ॥ २१५ ॥

यक्षोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

तद्वत्त्वपूर्थेष्वतिवत्सलत्वान्निवारयंती दुरितानि नित्यम् ।
यथोचित शासनदेवतेति न्यस्तात्र यक्षी मतपत्यसव्यम् ॥ २१६ ॥

शासनदेवतोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

येनेह दर्शनविशुद्ध्यधिदैवतेन विश्वोपकाररसिकेन दिधीव गर्भम् ।
न्यूपे प्रमोदरसचर्वणपर्वणैव सर्वाणि सैष निहताद् दुरितानि नोऽर्हन् ॥ २१७ ॥

॥ २१३ ॥ " वंशे " इत्यादि बोलकर चिन्हके आगे पुष्पाजलि क्षेपण करे ॥ २१४ ॥ " शक्रेण " इत्यादि बोलकर यक्षके ऊपर पुष्पाजलि क्षेपण करे ॥ २१५ ॥ " तद्वत् " इत्यादि बोलकर शासनदेवताके ऊपर पुष्पाजलि चढावे ॥ २१६ ॥ " येने " इत्यादि पांच श्लोक

आधीभिराधिभिरवाविपर्यीकृताया निर्गत्य मातुरुदराज्जनयन् मुदं यः ।
लोकोत्तराणि बुभुजेत्र सुखान्यजस्रं श्रेयांसि स जयतु न सदायम् ॥ २१८ ॥

समयाधिगमास्तमोहतंद्रे स्वयमुद्बुध्य झटित्यपास्तसगम् ।
प्रशमैकरसो चरत्तपो यः स जिनोयं हरतां भवज्वरं नः॥ २१९ ॥

यः सम्यक्त्वरमावगाढदृगुपष्टंभात्सम वेदिता
द्रष्टा विश्वमुपेक्षिताप्तपरमानंदोध्यतिष्ठद्विरम् ।
स्फूर्जत्तीर्थकरत्वनामसुकृतोद्रेकादनुमाणतीं
दिव्यां सभ्यसमीहितार्थकथनीं नस्तत् स्फुरत्वेप नः ॥ २२० ॥

योष्टादशशीलसहस्रसंयुक्तैश्चतुरशीतिगुणलक्षैः ।
परिणम्य कृत्स्नकर्मच्युतोष्ट भजते गुणान् सचेहास्ताम् ॥ २२१ ॥

एतत्पचक पठित्वा कल्याणपंचकस्थापनाभिव्यक्तये प्रतिमाया पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इति सिद्धामरसाक्षाज्जीवन् मुक्तिश्रियं स्वसात्कृत्य ।
भजतो जगतो पत्युः कंकणमिह मोक्षयाम्येपः ॥ २२२ ॥

बोलकर पाचकल्याणोंके प्रगट करनेकेलिये प्रतिमाके आगे पुष्पाजलि चढावे ॥ २१७ से २२१ ॥ "इति" इत्यादि श्लोक तथा "ओं" इत्यादि बोलकर प्रतिमाके आगे पुष्प क्षेपण

पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथातो अभिषेकादिविधानान्यनुसूत्रयिष्यामः । तद्यथा-

आश्रुत्य स्नपनं विशोध्य तदिलां लब्ध्वां चतुःकुंभयुक्
कोणायां सकुशश्रियां जिनपतिं न्यस्तां तमाप्येष्टदिक् ।
नीराज्याम्बुरसाज्यदुग्धदधिभिः सिक्त्वा कृतोद्वर्तनं
सिक्तं कुंभजलैश्च गंधसलिलैः संपूज्य नुत्वा स्मरेत् ॥ १ ॥

इत्यभिषेकविधानं । अथ नलजिनेंद्रप्रीतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रिया । तत्रेयं कृत्यप्रतिज्ञा । भगवन्नमोस्तु ते एषोऽहं नलजिनेन्द्रप्रीतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रियां कुर्यामिति । शेषं समानम् । अथ नलजिनेंद्रप्रीतिबिंबप्रतिष्ठाचतुर्थदिनस्नपनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं इत्युच्चार्य सामायिकदंडकं चतुर्विंशतिस्तवौ पठित्वा

अब अभिषेक आदिकी विधि कहते हैं । वह इसतरह है-वेदीके चारों कोनोंमें जलसे भरे हुए घड़े रखकर भूमिको पवित्रकर बीचमें सिंहासनपर जिन प्रतिमाको विराजमान कर पंचामृताभिषेक करें । उसके बाद उन जलपूर्ण घड़ोंसे अभिषेक करके पूजा करे ॥ यह अ-

सिद्धभक्तिं प्रयुजीत। एव चैत्यपचगुरुशातिसमाधिभाक्तिरपि विदध्यात्। अथ स्थिरे त सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहमित्युच्चार्य सामायिकादिविधिं विधाय सिद्धचारित्रशांतिसमाधिभक्ती प्रयुजीत । अत्र केचिच्चारित्रभक्त्यनतर चैत्यपचगुरुभक्ती अपि प्रयुजते । इति क्रियाप्रयोगविधानं । " ओं जिनपूजामाहूता देवा· सर्वे विहितमहामहा स्वस्थान गच्छत २ ज ज " इति विसर्जनमत्रोच्चारणेन यागमडले पुष्पाजलिं वितीर्य देवान् विसर्जयेत् ।

इह वहिरवतारप्रत्ययेन वुधानां मखविधिपरिपाटया भावशुद्धिं विधाय ।
वहिरिव रविविम्ब ध्वांतमध्यात्मस्थत्सु स्फुरत पुनरखंडं तत्परं ब्रह्म नोथ ॥ २ ॥

अनेन परब्रह्माध्यात्ममध्यासयेत् । इति देवताविसर्जनाविधानम् ।

भिपेकविधि हुई ॥ १ ॥ जिनेद्रकी चल प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन स्नान क्रिया होती है । वहा ऐसी करनेकी प्रतिज्ञा होती है । हे भगवन् आपको नमस्कार है यह मै चल जिन प्रतिमाकी प्रतिष्ठाके चौथे दिन स्नपन क्रिया करता हू । अन्य सर्वविधि समान है । "चल" इत्यादि " करोम्यह " तक बोलकर सामायिक, चौवीसजिनस्तुति पढकर सिद्धभक्ति करे । इसीतरह चैत्यभक्ति, पचगुरुभक्ति, शाति समाधिभक्ति भी करे । और स्थिर प्रतिमामें "तं" इत्यादि " करोम्यह " तक बोलकर सामायकआदि विधि करके सिद्ध चारित्र शाति समाधिभक्तियोंको करे । यह क्रियाओंका प्रयोग कहा । " ओं " इत्यादि विसर्जनमत्र बोलकर पूजाके मांडलेपर पुष्पाजलि चढाकर देवोंका विसर्जन करे । " इह " इत्यादि श्लोक बोल-

शश्वच्चेतयते यदुत्सवमिमं ध्यायति यद्योगिनो
येन प्राणिति विश्वमिंद्रनिकरा यस्मै नमस्कुर्वते ।
वैचित्री जगतो यतोस्ति पदवी यस्यांतरप्रत्ययो
मुक्तिर्यत्र लयस्तनोतु जगतां शांतिं परं ब्रह्म तत् ॥ ३ ॥

अनेन जिनाग्रे शांतिधारा प्रकल्प्येत्थं बलिं दद्यात् । ॐ अर्हद्भ्यो नमः सिद्धेभ्यो नमः सूरिभ्यो नमः पाठकेभ्यो नमः सर्वसाधुभ्यो नमः । अतीतानागतवर्तमानत्रिकालगोचरानंतद्रव्यगुण-पर्यायात्मकवस्तुपरिच्छेदकसम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानचारित्राद्यनेकगुणगणाधारपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः । ॐ पुण्याहं २ प्रीयतां २ ऋषभादि महति महावीर वर्धमानपर्यंतपरमतीर्थंकरदेवान् तत्समयपालिन्यो-ऽप्रतिहतचक्रचक्रेश्वरीप्रभृतिचतुर्विंशतिशासनदेवता गोमुखयक्षप्रभृतिचतुर्विंशतियक्षा आदित्यचंद्र-मंगलबुधबृहस्पतिशुक्रशनिराहुकेतुप्रभृत्यष्टाशीतिग्रहा वासुकिशंखपालककर्कोटपद्मकुलिकानंततक्षकमहा पद्मजयविजयनागा देवनागयक्षगंधर्वब्रह्मराक्षसभूतव्यंतरप्रभृतिभूताश्च सर्वेप्येते जिनशासनवत्सला

कर परब्रह्मका मनमें ध्यान करे ॥ २ ॥ यह देवताविसर्जनकी विधि हुई । " शश्व " इत्यादि बोलकर जिनदेवके आगे शांतिधारा छोडके इसप्रकार पूजन करे ॥ ३ ॥ "ॐ अर्ह" इत्यादि बोलकर पुष्प क्षेपण करे । इसमें राजा प्रजा कुटुंब आदि सब जीवोंके कल्याण होनेका चिंतवन किया जाता है । इसीको पुण्याहवाचन भी कहते हैं "ये सामग्री" इत्यादिसे अंतमें

ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकायष्टृयाजकराजमंत्रिपुरोहितसामंतारक्षिकप्रभृतिसमस्तलोकसमूहस्य शांति-वृद्धिपुष्टितुष्टिक्षेमकल्याणस्वायुरारोग्यप्रदा भवतु । सर्वसौख्यप्रदाश्च सतु । देशे राष्ट्रे पुरे च सर्वदैव चौरारिमारीतिदुर्भिक्षावग्रहविघ्नौघदुष्टग्रहभूतशाकिनीप्रभृत्यशेषानिष्टानि प्रलय प्रयातु, राजा विजयी भवतु प्रजासौख्य भवतु, राजप्रभृतिसमस्तलोकाः सतत जिनधर्मवत्सला पूजादानव्रतशीलमहामहोत्सव-प्रभृतिपूद्यता भवतु, चिरकाल नदतु । यत्र स्थिता भव्यप्राणिन ससारसागर लीलयोत्तीर्यानुपमं सिद्धिसौख्यमनंतकालमनुभवति तच्चाशेषप्राणिगणशरणभूत जिनशासन नदत्विति स्वाहा ।

ये सामग्रीविशेषदृढिमभरहवातिक्षप्तदुर्वारवैरि-
व्रातप्रेष्यत्पताकासततपरिचितज्ञानसाम्राज्यलीलाः ।
भूतार्थोच्छेदकंदव्यवहरणघटोच्छिष्टपृक्तौक्तियुक्ति-
क्षिप्ताप्तं मन्यमाना जगदतिपुनते ते जिनाः पांतु विश्वम् ॥ ४ ॥
स्फूर्जच्छलक्ष्युदर्चिर्भरमसितदशासाकृतैनःपतंगाः
स्वांगाकाराक्षरैकक्षणस्मरनिराकारसाकारचित्काः ।
व्योम्नो विश्वैकधाम्नः कृततिलकरुचः मष्टमात्मंभरीणां
व्यंजंतः स्वं सदान्यज्जिनसमयजुषाः संतु सिद्धाः शिवाय ॥ ५ ॥

कल्याण होनेका चिंतवन है ॥ ४ ॥ "स्फूर्ज" इत्यादि बोलकर सिद्धोंसे कल्याण प्रार्थना॥५॥

श्रुतधृतिबलसिद्धाः पंचधाचारमुच्चैः शिवसुखमनसो ये चारयंतश्चरंति ।
शमरसभरसंविद्भूरयः सूरयस्ते विदधतु जिनधर्माराधनाशिष्टसिद्धिम् ॥ ६ ॥

येऽगप्रविष्टबहिरंगजिनागमाब्धिपारगमा निरतिचारचारित्रसाराः ।
धर्मं यथावदनुशासति शिष्यवर्गान् पुष्णंतु पाठकवृपा जगता नमस्ते ॥ ७ ॥

बुद्धा ध्यानात्परमपुरुषं तत्त्वतः श्रद्दधानाः ये विद्वांस स्वयमुपरतमत्यनीकमतापम् ।
एकीकुर्वत्युदयदशयानदनिष्पीनचितास्ते भव्यानां दुरितमनिशं साधवः संहरंतु ॥ ८ ॥

ये मंगललोकोत्तमशरणात्मानं समृद्धमहिमानः ।
पातु जगत्यर्हत्सिद्धसाधुकेवल्युपज्ञधर्मास्ते ॥ ९ ॥

मूते भेदाभेदरत्नत्रयात्मानाग्रंताद्यतार्थोदितौ भुक्तिमुक्ती ।
सोऽस्मिन् राजामात्यपौरादिलोकान् धर्मस्तन्वन् शर्म पायादपायात् ॥ १० ॥

" श्रुत " इत्यादि बोलकर आचार्यसे इष्टसिद्धिकी प्रार्थना ॥ ६ ॥ " येंग " इत्यादि बोलकर उपाध्यायोंसे प्रार्थना ॥ ७ ॥ " बुद्ध्वा " इत्यादि बोलकर साधुपरमेष्ठीसे इष्टप्रार्थना ॥८॥ " ये मंगल " इत्यादि बोलकर अरहंत सिद्ध साधु धर्म-इन चार मंगल लोकोत्तम शरणसे इष्टप्रार्थना करे ॥ ९ ॥ " मूते " इत्यादि बोलकर धर्मसे इष्टप्रार्थना करे ॥ १० ॥ "यास्ती-

यास्तीर्थकृत्वपदतत्फलतन्निमित्तनित्यानुरक्तमतय प्रभुमाभजंति ।
ता रोहिणीप्रभृतयो दश षट् च विद्यादेव्यः सधर्मनिवहस्य दुहंतु कामान् ॥ ११ ॥

पुरैत्नौद्भूतिपूते निखकरचतुर्वणसर्वमणूते
संभूताः क्षत्रवंशे नु परम परमब्रह्मालिप्सा प्रशस्याः ।
पूज्यंते स्वामिभक्त्या त्रिदशपरवृंदैर्गर्भजन्मोत्सवे याः
सद्भयो द्विर्द्वादशाः श प्रददतु मरुदेव्यादयास्ता जिनांवाः ॥ १२ ॥

लोके यथेष्टमणिमादिगुणाष्टकेन कीडंति ये प्रमुदितप्रमदासहायाः ।
ऐंद्रध्वजादिजिनयज्ञविधावतंद्रा द्वात्रिंशदादधतु ते सुकृतांशमिद्राः ॥ १३ ॥
ये गोमुखप्रमुखयक्षनृपा वृपादितीर्थकरक्रमसरोरुहचंचरीकाः ।
तद्ब्रह्मवर्चसमजस्रमुदग्रयति ते षट्चतुष्कमितयः सुरद ! भव्यान् ॥ १४ ॥
स्फुरत्प्रभावा जिनशासनं याः प्रभावयंत्यो विलसंति लोके ।
यक्ष्यश्चतुर्विंशतिरार्हतानां चक्रेश्वराद्या धुनतां रुजस्ताः ॥ १५ ॥

र्थ " इत्यादि बोलकर सोलह विद्यादेवीयोसे इष्टप्रार्थना करे ॥ ११ ॥ " पुरै " इत्यादि श्लोक बोलकर चौवीस जिनमाताओसे इष्ट वस्तुकी प्रार्थना करे ॥ १२ ॥ " लोके " इत्यादि बोलकर बत्तीस इन्द्रोंसे इष्टप्रार्थना करे ॥ १३ ॥ " ये गोमु " इत्यादि बोलकर चौवीस यक्षोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १४ " स्फुरत्प्र " इत्यादि बोलकर चक्रेश्वरी आदि चौवीस यक्षि-

भ्राजिष्णुशक्तिविभवा भवसिंधुसेतुसर्वज्ञशासनविभासनवद्धकक्षाः ।
याः पूजयंति विविधाद्भुतसिद्धिकामास्ताश्चाष्टविष्टपमवंतु जयादिदेव्यः ॥ १६ ॥
शक्रादेशात्तीर्थकृद्देवमातृर्याः सेवंते स्वस्वयोग्यैर्नियोगैः ।
ताः सर्वज्ञाराधनातत्पराणां संत्वष्टपि श्रेयसे श्र्यादिदेव्यः ॥ १७ ॥

अन्येपि दौवारिकलोकपालग्रहोरगानाहृतयक्षमुख्याः ।

देवा यथास्वं प्रतिपत्तिहृष्टा निघ्नंतु विघ्नान् जिनभाक्तिकानाम् ॥ १८ ॥

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः प्रदेशः संतन्यतां प्रतपतु प्रततं स काल ।
भावः स नंदतु सदा यदनुग्रहेण प्रस्तौति तत्त्वरुचिमाप्तगवी नरस्य ॥ १९ ॥
किं बहुना ।

शांतिः स तनुतां समस्तजगति संगत्वतां धार्मिकैः

श्रेयःश्री परिवर्द्धतां नयधुराधुर्यो धरित्रीपतिः ।

योंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १५ ॥ " भ्राजिष्णु " इत्यादि बोलकर जया आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १६ ॥ " शक्रा " इत्यादि बोलकर श्री आदि आठ देवियोंसे इष्ट प्रार्थना करे ॥ १७ ॥ " अन्येपि " इत्यादि बोलकर इनके सिवाय अन्य देवताओंसे प्रार्थना ॥ १८॥ " तद्द्रव्य " इत्यादि बोलकर द्रव्य क्षेत्र काल भावोंके शुभ मिलनेकी प्रार्थना ॥ १९ ॥ बहुत कहनेसे क्या, सब जगतमें शांति रहे, धर्मात्माओंकी संगति मिले, कल्याण करनेवाली लक्ष्मी

सद्विद्यारसमुद्गिरंतु कवयो नामाप्यघः स्यान्तु मा
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ॥ २० ॥

एतेत्मार्थपरा शक्राः छत्रचामरशालिनीम् । भृंगारहस्ता मुक्तांबुधारापूतपुरो धराम् ॥२१॥
जिनार्चामनुयांतोग्रे प्रनृत्यत्कलशांगनाः । महान् तूर्यस्वनैर्भव्यजयकोलाहलोरवणैः॥ २२ ॥
पूरयंतो दिशः सप्तधान्यपुष्पाक्षतादिभिः । कल्पयंतो बलिं शात्यै त्रिःपरीयुर्जिनालयम् २३

इति बलिविधानम् ।

अथाचार्योऽभिषेक्तव्यः फलपुष्पाक्षतद्युतः । जिनगंधांबुकुंभेन यष्ट्रे दद्याच्चदाशिषम् ॥२४॥

तद्यथा ।

आयुस्तन्वंतु तुष्टिं विदधतु विधुनंत्वापदो भंतु विघ्नान्
कुर्वंत्वारोग्यमुर्वीवलयाविलासितां कीर्तिवल्लीं सृजंतु ।

बढे, न्यायमार्गपर चलनेवाला राजा हो, कविजन उत्तम विद्यारसको प्रगट करें, पापका नाम भी न रहे, अन्य विशेष प्रार्थना क्या करें संसारमें एक मोक्षको दाता जैनधर्मकी ही जय हो ॥ २० ॥ आत्मकल्याण करनेमें लीन, छत्र चमर लिये हुए, स्वच्छ जलसे भरी झारीको हाथमें लिए हुए, जिनमूर्तिके आगे नृत्य करते हुए इंद्र, सात तरहके धान्य पुष्प अक्षत आदि पूजा द्रव्यसे पूजा करते हुए जिनमंदिरकी तीन परिक्रमा दें ॥ २१।२२।२३ ॥ यह बलिविधान हुआ । उसके बाद प्रतिष्ठाचार्य गंधोदक अक्षत पुष्प फल दीप धूपसे प्रतिष्ठाविधि करनेवाले

धर्मं संवर्धयंतु श्रियमभिरमयंत्वर्पयंत्विष्टकामान्
कैवल्यश्रीकटाक्षानपि जिनचरणाः संजयंतु सदा वै ॥ २५ ॥
आज्ञैश्वर्यमकार्यकार्यविचयैः मंतानवृद्धिर्जयः
सौभाग्यं धनधान्यवृद्धिरभयं निःशेषशत्रुक्षयः ।
पाडित्यं कविता परार्थपरता कार्तज्ञमोजस्विता
मानित्व विनयो जयश्च भवतादर्हत्प्रसादेन वः ॥ २६ ॥
कांताः कांतिकलानुरागमधुराः पुण्यास्त्रिवर्गाङ्कुरा
भृत्याः स्वाम्यनुरक्तिशक्तिरुचिरा श्च्योतन्मदाः कुंजराः ।
नाहास्तर्जितशक्रसूर्यतुरगाः शौर्योद्धताः पत्तयो
भूयासुर्भवतां जिनेंद्रचरणांभोजप्रसादात्सदा ॥ २७ ॥
गांभिर्यमौदार्यमजय्यमार्यशौर्यं सशौंडीर्यमवार्यवीर्यम् ।
धैर्यं त्रिपद्यार्जवमार्यभक्तिः सपद्यतां श्रीजिनपूजनाद्वः ॥ २८ ॥

दंवको आशीर्वाद दे ॥ २४ ॥ वाद पसे द कि " आयु " इत्यादि ग्यारह आशीर्वाचक श्लोक पढकर यष्टाके शिरपर अक्षत आदिका क्षेपण करे ॥ २५ से ३५ ॥ यह आशीर्वाद विधि हुई । उसके बाद यष्टा " यज्ञोपवीतं " इत्यादि बोलकर जनेऊ आदिक यज्ञदीक्षाके

भवतु भवतामर्हद्भक्त्या सदा मुदितं मनो
ग्रहमुपाचिता चौरौचित्यं मदासेन परस्परः ।
प्रणयिविवशैः स्वैसंवौसौदयागयमीहितं
स्थितिरपि चित्ते मज्ञापराधपराहतिः ॥ २९ ॥
रक्सशुद्धिरतोन्यतोस्तु भवतामर्हत्प्रतिष्ठाविधे
जातु कष्टि कथचिदीपदापि मा शील व्रतं ग्लायतु ।
दूरादेव-शिरस्यधीरमरयो बध्नतु देवांजलिं
प्रेम्णा सद्गुणसंपदा च सुहृदःश्लिष्यंतु पुष्णंतु च ॥ ३० ॥
यष्टृणा याजकाना प्रतिनुतिकृतामभ्यनुज्ञायकानां
भूयस्यांतःपुरस्य क्षितिपतनुभुवां मंत्रिसेनापतीनाम् ।
सामंतानां पुरोधः पुरविपयवनादिस्थवर्णाश्रमाणां
सर्वेषामस्तु शांत्यै सततमयमिह स्थापितो विश्वनाथः ॥ ३१ ॥
बिचित्रैः स्वैर्द्रव्यं प्रतिसमयमुच्चद्दिपदापि
स्वरूपादुल्लोलैर्जलमिव मनागप्यविचलम् ।

जिन्होंको गुरु (आचार्य) के चरण कमलोंके आगे रखकर नमस्कार करे । यह यज्ञदीक्षा

अनेहो माहात्म्यादितनवनवीभावमखिलं
मणिण्वाणाः स्पष्टं युगपदिह ते पांतु जिनपाः ॥ ३१ ॥
सभुज्यार्थिभिः संविभज्य च यथाविध्येवमेवाथवा
निर्विण्णास्तृणवद्विसृज्य कमलां स्वं स्वं स्वयं केऽपि ये ।
संन्यस्यामलकेवलानलचिदानंदे सदैवासते
ते सिद्धाः प्रथयंतु वः प्रति शिवश्रीसद्विलासान् सदा ॥ ३२ ॥
मत्वा श्रद्धाय तत्त्वं भजति समरसास्वादमानान्यनीहा-
वृत्त्या प्राणानुसर्पन्मरुदनु च क्रमानष्टमे ब्रह्मरंध्रे ।
भेदयत्यत्राय मोहं प्रतिपयति मनः केवलं चापि माया-
च्छून्यध्यानेन येषां प्रपदभरामिमे योगिनस्तन्वतां वः ॥ ३४ ॥
नार्पत्यान् निस्मयार्ताहितपतनरुजो दत्तझंपान्वितन्वन्
निःश्रेणीकृत्य भोगं ग्लपितपृथुतन्मूलपाद्राहितांघ्रि ।
श्रीकुद्रागगृहावनितरुशिखरा यैरवतीर्णः स्ववर्ण-
न्यासंगं संगपस्य व्यथितमनुपदाः वीरनाथः स वोऽव्यात् ॥ ३५ ॥

विसर्जनकी विधि पूर्ण ॥ ३६ ॥ उसके बाद गुरुकी आज्ञासे शांति पाठ करके कार्यको

एता आशिष पठित्वा यष्टुः शिरस्यक्षतान् क्षिपेत् । इत्याशीर्वादविधानम् ।

यज्ञोचितं व्रतविशेषवृतो ध्यतिष्ठन् यष्टा मर्तीद्रसहितः स्वयमे पुरा मत् ।
एतानि तानि भगवज्जिनयज्ञदीक्षाचिन्हान्यथैष विसृजामि गुरोः पदाग्रे ॥ ३६ ॥

एतत्पठित्वा यज्ञोपवीतादियज्ञदीक्षाचिन्हानि गुरुपादमूले सन्यस्य नमस्येत् । इति यज्ञदीक्षा विसर्जनम् । ततो गुर्वनुज्ञया शांतिभक्त्या निष्ठापयेत् । अथ जिनप्रतिष्ठानिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं । शेषं पूर्ववत् । ततश्चैशान्यांदिशमष्टदलकमलमालिख्य चैत्याभिमुखमेतत्पठित्वा पंचांग प्रणामादिक्पालेभ्यो निजनिजमन्त्रपूतयज्ञांगशेषेण सर्वशः पूजां दत्वा जिनगंधोदकतीर्थोदककलशैः सर्वशांतयेऽम्भः सम्प्लवयेत् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाथ शास्त्रोक्तं न कृतं मया तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनप्रभोः ॥ ३७॥

ततश्च क्षमापणविधिमिममनुतिष्ठेत् ।

समाप्त करे । वह ऐसे है कि–" अथ जिन " इत्यादि " करोम्यहं " तक बोलकर समाप्ति विधि करे । उसके बाद समाधि भक्ति करे । उसके बाद ईशानदिशामें आठ पत्रोंवाला कमल बनाकर प्रतिमाके सामने " ज्ञानतो " इत्यादि श्लोक पढकर पंचांग प्रणाम करे । फिर पूजाकी बची हुई सामग्री सबको चढानेकेलिये देकर कलशोंसे जलधारा सब विघ्नोंकी शांतिके लिये चढावे । " ज्ञानतो " इत्यादिका अर्थ–हे जिनेंद्र मैंने जानकर अथवा अज्ञानसे शास्त्रकथितरीतिसे जो क्रिया नहीं की है वह सब आपके प्रसादसे समाप्त ही हो

चतुर्विधमहासंघं मंतर्प्याहारभेषजैः । योग्योपकरणं दत्वा यष्टा संपूजयेत्स्वयम् ॥ ३८ ॥
अत्र ये द्रष्टुमायाता प्रतिष्ठाव्यापृताश्च ये । तांबूलगंधपुष्पाद्यैस्तान् संमान्य विसर्जयेत् ॥ ३९ ॥
प्रतिष्ठाचार्यमानम्य तस्यात्मानं समर्प्य च । वस्त्रैराभरणाद्यैश्च संपूज्य क्षमयेत्ततः ॥ ४० ॥
संमान्य सूत्रधारादीन् स्वर्णवस्त्राम्नभूषणैः । गांधर्वनर्तकादींश्च यथार्हं तत्समर्पयेत् ॥ ४१ ॥
सार्वकालिकपूजार्थं भूसुवर्णार्पणादिकम् । वित्तानुसारतो दद्यात्पूजोपकरणानि च ॥ ४२ ॥

इति क्षमापना ।

॥३८॥ उसके बाद क्षमा करानेकी विधि करे । वह इस तरह है–प्रतिष्ठा करानेवाला यजमान जिनकल्याणक महोत्सवके बाद आहार औषध दानसे मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका–इन चारों संघोंको संतुष्ट करके और उनके योग्य धर्मसाधनके उपकरण (शास्त्र वगैर) देकर आप उनकी पूजा करे ॥ ३८ ॥ उसके बाद जो प्रतिष्ठा देखनेकेलिये आये हों अथवा प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करानेके अभिप्रायसे आये हों उन सबको पान सुपारी फूलोंकी माला आदिसे सत्कार करके जानेको कहे ॥ ३९ ॥ उसके बाद प्रतिष्ठाचार्यको नमस्कार कर उसको कुछ भेट देकर कपड़े और आभूषण आदिसे सन्मानकर क्षमा करावे ॥ ४० ॥ प्रतिष्ठाके सत्रा चक तथा गंधर्व व नृत्यकरनेवालोंको वस्त्र अन्न आभूषण और कुछ धन योग्यताके अनुसार दे ॥ ४१॥ उसके बाद जिनप्रतिमाकी हमेशा पूजा होनेके लिये जमीन रुपया या कुछ जायदाद आमदनीके अनुसार दे कि जिससे मंदिर पूजा हमेशा होती रहे और पूजाके उपकरण (वर्तन आदिक)

इत्यर्हत्प्रतिमान्यासविधिर्व्यासेन वर्णितः । तादृक्सामग्र्यभावेसौ मध्यरत्यपि कल्पितः ४३

तद्यथा ।

कृत्वा पुराकर्म कृतमंडपादिप्रतिष्ठितिः । मन्त्रैरेवार्चयित्वा च मंडलान्यखिलान्यपि ॥ ४४ ॥
प्रतिष्ठेयां निरूप्यार्चां प्रयुक्तसकलक्रियः। संस्कृत्याकरशुद्ध्याथ वेदीपीठे निवेशयेत् ॥४५॥
कृत्वा कल्याणसंस्कारमालामंत्रादिरोहणम् । दत्वा तिलकमंत्राधिवासना संप्रकाशने ॥४६॥
सन्नेत्रोन्मीलने कृत्वा कृत्वा चाभिषवादिकम्। संक्षेपेणाथ शक्तिश्चेद्द्युभक्तः स्थापयेत्प्रभुम्४७
तत्रैकमेव सज्जायाद्यर्चयेद्यागमंडलम् । द्वास्थानंतरमत्रैव यजेच्च श्र्यादिदेवताः ॥ ४८ ॥

वनवाके दे ॥ ४२ ॥ यह क्षमावनीकी विधि समाप्त हुई ॥ इसप्रकार अर्हतकी प्रतिमाकी स्थापना विधि विस्तारसें वर्णन की गई है । यदि उतनी सामग्री न हो तो मध्यमरीतिसे भी स्थापना होसकती है ॥४३॥ यह इसतरह है । मंडपादि वनवाकर मंडलादिकी रचना कर उन सबको केवल मन्त्रोंसे ही पूजकर प्रतिष्ठा होनेवाली जिन प्रतिमाको आकर शुद्धि आदि कही गई विधिसे संस्कारित करके वेदीके सिंहासन पर विराजमान करे ॥ ४४ । ४५ । ४६ ॥ फिर पांच कल्याण संस्कारमालारोपण तिलक अभिषेकादि करे ॥ यह मध्यमरीति है । जिसकी थोडी शक्ति हो वह दो वार भोजनकी प्रतिज्ञा कर प्रभुकी स्थापना करे ॥ ४७ ॥ उसके वाद एक यागमंडलकी पूजा करे फिर द्वारपाल और श्री आदि देवताओंकी पूजा करके मंडपके बाहर शुद्ध स्थानमें ऊंचे आसनपर मूर्तिको विराजमान करके अभिषेक करे ।

ततो मंडपगाग्निकोदेशेर्चाया सुसंस्कृते । कुर्यादाकरशुद्धिं ता शेषं मभ्यवदाचरेत ॥ ४९ ॥

इति मध्यमसंक्षिप्तप्रतिष्ठानुष्ठानविधानम् ।

प्रासादस्य ध्वज चिन्ह तेनासौ शोभते यतः । शुभदश्च सर्वेषां तस्मात्तमधिरोपयेत् ॥ ५० ॥
हस्तत्रिभागविस्तीर्णैरर्धहस्तायतैर्दृढैः । वस्त्रोत्तमसुसंश्लिष्टैर्ध्वजं निर्मापयेच्छुभम् ॥ ५१ ॥
सितं रक्त सित पीतं सितं कृष्णं पुनः पुनः । यावत्प्रासाददीर्घत्व तावत्संघट्टयेत् क्रमात ५२
त्रार्धचंद्रमुक्तास्रक्किंकिणीतारकादिभिः । नाना सद्रूपयुग्मैश्च चित्रैः पत्रैर्विचित्रयेत् ॥ ५३ ॥
अधश्छत्रत्रयं मूर्धस्तस्याधः पद्मवाहनम् । तस्याधः कलश पूर्णं पार्श्वयोः स्वस्तिकं लिखेत् ५४
दीपद्दौ लिखेत्स्वस्ति शिखायाः पार्श्वयोस्तथा । पार्श्वयोरातपत्रस्य श्वेतचामरयुग्मकम् ॥ ५५ ॥

और बाकी क्रियाओंको अर्थात् क्षमावर्ना आदिको पूर्वकथित रीतिसे करे ॥ ४८ । ४९ ॥ यह मध्यम और सक्षेपरीतिसे प्रतिष्ठाकी विधि कही गई है ॥ उसके बाद जिन मन्दिरके शिखरपर धुजाको चढावे उससे मंदिरकी शोभा होती है और सबको कल्याण होता है ॥ ५० ॥ बारह अंगुल लंबी और आठ अंगुल चौडी मजबूत उत्तम कप-ड़की धुजा बनवावे ॥ ५१ ॥ धुजाका कपड़ा सफेद लाल सफेद पीला सफेद काला फिर ये क्रमसे रंगवाला तयार करावे ॥ ५२ ॥ धुजामें चन्द्रमा माला घटरियां तारे इत्यादि अनेक चिन्ह बनाके चित्रित करे ॥ ५३ ॥ कलश सातिया दीपरुद छत्र चमर धर्मचक्र लगकर धुजाके ऊपर जिनबिंबका आकार बनावे। उसमें एक छत्र लगावे। उस धुजामें

मूर्धाधो धवलच्छत्रे ध्वजे वा यक्षमालिखेत् । श्याम चतुर्भुजं हस्तयुग्मेन रचितांजलिम् ५६
पराभ्यां दधतं मूर्ध्नि धर्मचक्रमृजुस्थितम् । जिनबिंबोर्ध्वमूर्धाने ह्येकछत्रसमान्वितम् ॥ ५७ ॥
दीपदंडादिसंयुक्तं नानालंकरणान्वितम् । हस्तिपृष्टसमारूढं सर्वेशाख्यममुं लिखेत् ॥ ५८ ॥
अशोकासननिर्यासचंपकाम्रकदंबकाः । पूगवशादयोन्येपि दंडस्य भवभूरुहाः ॥ ५९ ॥
सादायायाममानार्ध त्रिभाग वा चतुर्थकम्। ध्वजदंडस्य मानं तद्यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥६०॥
प्रासादस्योर्ध्वतुर्यांशे वेदिका वेदिकस्थितम् । आधारं घनदंडस्य यथोक्तं परिकल्पयेत्॥६१॥
अथ मंडलमभ्यर्च्य संक्षेपाद् ध्वजदेवता । प्रतिमाप्यानादिसिद्धमंत्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६२ ॥
स्वधिवास्य ध्वजं स्तुत्वा तन्मंत्रेण घृतादिभिः । अशोकाश्वत्थवत्राग्रदर्भमालाभिवेष्टितम् ६३
ध्वजदडं समभ्यर्च्य ध्यात्वा रत्नत्रयात्मकम् ।तच्चूलिकां तथैवाभिषिच्य धीशक्तिरूपिणीं६४
सचिंत्य मंडपपुरो गर्ते शाल्यादिपूरिते । पूजिते दाधिदूर्वाद्यैस्तदूर्ध्वं स्थापयेद् दृढम् ॥ ६५॥

अशोक चपा आम कदब सुपारी वंश आदिके वृक्ष चिन्हित करे ॥ ५४ से ५९ ॥ धजाके दडेका प्रमाण शोभाके अनुसार होना चाहिये ॥ ६० वह प्रमाण मंदिरकी ऊचाईसे चौथाई हो तो अच्छा है । और वेदीके ऊपर भी धुजा चढाना चाहिये ॥ ६१ ॥ उसके वाद धुजाके मडल और प्रतिमाकी स्तुतिकरके अनादिमत्र (णमोकार मत्र)को एकसौ आठवार जपकर धुजाको दडमे लगाके " ओ नमो " इत्यादि ध्वजारोपणमत्रको बोल शुभ लग्नमें शिखरमें

ध्वजश्च तुर्यसर्धेषु तत्र संयोज्य संध्वजम् । ध्यात्वा सर्वगतज्ञानरूपमर्घेण मानयेत् ॥ ६६ ॥
तस्य दंडमुद्धृत्य प्रासादं परितःश्रिया । महत्या भ्रमयित्वा त्रिः सुलग्ने मंत्रमुच्चरन् ॥ ६७॥

ओं नमो अरहताणं स्वस्ति भद्रं भवतु सर्वलोकस्य शांतिर्भवतु स्वाहा । ध्वजारोपणमंत्र ॥

हिरण्यपयसाकीर्णे तस्याधारे समर्च्य च । प्रतिपर्व ध्वजं मुंचेत् तैर्मंत्राभिमंत्रितैः ॥ ६८ ॥
प्रासाद सप्तधान्यौघविरूढकफलोत्करैः । स्नपयित्वार्चितं नव्यैः सद्वस्त्रैः परिधापयेत् ॥६९
यावंतः प्राणिनः केतौ लग्नाः कुर्युः प्रदक्षिणाम् । तावतः प्राप्नुवंत्यत्र क्रमेण विमलं पदम् ७०
मुक्ते प्राचीं गते केतौ सर्वकामानवाप्नुयात् । उत्तराशां गते तस्मिन् स्वस्थारोग्यं च संपदः७१
यदि पश्चिमतो याति वायव्ये वा दिशाश्रये । ऐशाने वा ततो वृष्टिं कुर्यात्केतुः शुभानि सा ७२
अन्यस्मिन् दिग्विभागे तु गते केतौ मरुद्वशात् । शांतिकं तत्र कर्तव्यं दानपूजाविधानतः७३

राधे ॥ ६२ से ६७ ॥ उस धुजामें यक्षकी मूर्ति बनाके उसका फलआदिसे सत्कार करे। फिर धुजाकी परिक्रमा दे। धुजाके कार्य करनेमें जितने प्राणी सहायता करते हैं वे सब परंपरासे निर्दोष पदवीको पाते हैं ॥ ६८ । ६९ । ७० ॥ धुजा छोडने पर पूर्व दिशाकी तरफ जावे तो यह धुजा सब इष्ट कार्योंको सिद्ध करती है ॥ ७१ ॥ पश्चिमदिशामें, तथा वायव्य व ईशानदिशामें फहरानेसे वह धुजा कल्याण करने वाली होती है ॥ ७२ ॥ अथवा हवाके निमित्तसे अन्य बची हुई दिशाओंमें लहरानेसे दान पूजा विधिसे शांति कर्म करना चा-

कलशादुच्छ्रिते हस्तं ध्वजे नीरोगता भवेत् । द्विहस्तमुच्छ्रिते तस्मात्पुत्रर्द्धिर्जायते परा ॥ ७४॥
त्रिहस्तं सस्यसंपत्तिर्नृपवृद्धिश्चतुःकरम् । पचहस्तं सुभिक्षं स्याद्राष्ट्रवृद्धिश्च जायते ॥ ७५ ॥
अंवरेण कृतो यः स्याद् ध्वजः सम्यक् समंततः । सोतिलक्ष्मीप्रदो राज्ये यशःकीर्तिमतापदः
भूपालवालगोपालकलनानां समृद्धिकृत् । राज्ञां सुखार्थदायी च धान्यैश्वर्यजयावहः ॥ ७६ ॥

अत्र विधिपूजितस्य यागमडलस्याग्रतो वेदिकातले पूर्वस्या दिशि ध्वजमवस्थाप्य तद्देवतामित्थं प्रतिष्ठयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्न यक्ष एहि २ संवौषट् । अनेन पुष्पाजलिं क्षिप्त्वा आवाहयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्नयक्ष अत्र तिष्ठ २ ठ ठ । अनेन तद्वत्स्थापयेत् । ओं ह्रीं सर्वाह्नयक्ष अत्र संनिहितो भव भव वषट् । अनेन तद्वत्संनिधापयेत् । तत सर्वौषधिविमिश्रतीर्थोदकपूर्णान् कलशान् पुर संस्थाप्यामृतादि-मंत्रेण तज्जलमभिमंत्र्य ध्वजालिखितयथाभिमुख पर्णे स्थापयित्वा गधाक्षतपुष्पादीन् मगलोपकरणानि चाग्रे व्यवस्थाप्य ओं ह्रीं सर्वाह्नयक्ष इद स्नपनमर्चनं च गृहाण । ओं स्वस्ति भद्र भवतु स्वाहेति

हिये ॥ ७३ ॥ मंदिरकी शिखरके कलशोंसे एक हाथ ऊंची धुजा आरोग्यताको करती है, दो हाथ ऊंची पुत्रादि संपत्तिको, तीन हाथ ऊंची धान्यसपत्तिको चार हाथ ऊंची राजाकी वृद्धि, पांच हाथ ऊंची सुभिक्षको तथा राज्यवृद्धिको करती है ॥ ७४ । ७५ ॥ अब रखकी वनाई धुजा अत्यंत लक्ष्मीकी देनेवाली तथा राज्यमे यशको फैलानेवाली होती है और राजा प्रजा सबको सुखदाई है ॥ ७६ । ७७ ॥ यहापर विधिसे पूजित यागमंडलके आगे

मन्त्रमुच्चार्य त दर्पणप्रतिबिम्बितयक्ष तज्जलैरभिषिच्य गन्धादिभिश्चार्चयित्वा मुखवस्त्र दत्त्वा नयनोन्मीलनं सुमुहूर्ते कुर्यात् । इति ध्वजदेवताप्रतिष्ठाविधानम् ।

एवं कृत्वा ध्वजारोहं पुण्य प्राप्याद्भुतं कृती । भुक्त्वा तथादिसुभगः श्रेयोनिर्वृतिमश्नुते ॥७८॥

इति ध्वजारोपणविधानम् ।

प्रासादप्रतिमे अनेन विधिना ये कारयित्वार्हता
भक्त्यानिद्भुतशक्तयो विदधते नित्याभिषेकादिकान् ।

वेदीके नीचे पूर्व दिशामें धुजाको रख उसमें चिन्हित यक्ष देवको इसप्रकार प्रतिष्ठित करे। "ओं" इत्यादि बोलकर आवाहन स्थापन सन्निधीकरण करे । उसके बाद सर्वौषधीसे मिलेहुए जलसे भरे कलशोंको आगे रख अमृतादि पूर्व कथितमन्त्रसे उस जलको मंत्रितकर धुजाके आगे रिखे हुए पत्रेको रख चंदन अक्षत पुष्पोंसे "ओं ह्रीं" इत्यादि मन्त्र बोलता हुआ दर्पणमें स्थित यक्षके आकारकी पुजा शुभ मुहूर्तमें करे । यह धुजाकी प्रतिष्ठाविधि कही गई है ॥ इस रीतिसे धुजारोहण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष महान पुण्यका उपार्जन करके तथा पुण्यफल भोगके मोक्षसुखको पाता है ॥ ७८ ॥ यह धुजा चढानेकी विधि पूर्ण हुई । मोक्षके इच्छुक जो भव्यजीव अर्हत जिनका मंदिर और प्रतिमाको तयार कराके अपनी

पूजाज्ञा विभवाधिपत्यमहिमोदग्राः शिवाशाधरा-
स्ते भुक्त्वा पदवीर्भजति परमानंदैकसांद्रं पदम् ॥ ७९ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि अभिषेकादिविधानीयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शक्तिको न छिपाकर भक्तिसहित प्रतिदिन अभिषेक पूजा करते हैं वे उत्तम भोगोंको भोगकर परमानंद स्वरूप मोक्ष पदको पाते हैं ॥ ७९ ॥

इसप्रकार पं० आशाधर विरचित प्रतिष्ठासारोद्धारमें अभिषेकादि विधिको कहनेवाला पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

विन्यस्यानाहतेंते शिरसि विरहितं चांतरालेषु चार्थं
पंचानां सतायनां वलयतु कुशलः कोंरुधामा यथार्त्तिः ॥ ११ ॥
पत्रांतर्मंत्रपूर्वजिनावितनुचतुस्तीर्थसमेधचक्र—
पाद्रू वाक्यैर्ण...ततनुमयानाहतग्रंथनाद्यैः ।
स्वस्वस्थानास्थिताशेषमुपरि दधतं सप्तकं वारकं वा
स्वर्णा ब्रह्माण च स नग्रहमवनिष्टतं सत् करि रं करोति ॥ १२ ॥

इति बृहत्सिद्धचक्रोद्धरणम् ।

सामी साधेंदुशीर्ष अ . . .. ।

पेतोग्रसारं विनयमुखगुरूद्दिष्टवर्णाविशिष्टं
मंत्रेद्धां सिद्धचक्रं विदधतु सुधियोऽध्यात्ममध्यात्मबुद्धाम् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा इद वारि गधं . . . ।

ऊर्ध्वांधो रयुतं सबिंदु सपर ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्त्वान्वितम् ।

यह बृहत्सिद्धचक्रका उद्धार हुआ । "सामी" इत्यादि श्लोकमें कथित रीतिसे लघु सिद्ध-चक्र बनाके "ओं" इत्यादि बोलकर जलादि चढावे ॥ १३ ॥ "ऊर्ध्वांधो" इत्यादिमें

अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुत ह्रींकारसंवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ १४ ॥

इति लघुसिद्धचक्रोद्धरणं । अत्रायं मत्र. । ओं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं अर्हं स्वाहा । शेप पूर्ववत् ।

ततोभिषिच्य तीर्थांभःकुंभैः प्रागुक्तकल्पनैः । गुणैरिवार्चामष्टाभिः सिद्धस्तोत्रं पुरो हितम् ॥१५॥
पठित्वा तद्गुणारोपप्रभ्टत्यापाद्य तां स्मरन् । साक्षात्सिद्धं तिलकयेच्चंदनेन सहेंदुना ॥ १६ ॥

आकारशुद्धिं कृत्वा यस्यानुग्रहेत्यादि सिद्धस्तोत्रमधीत्य प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् । तत —

आकारैर्वियुतं युतं च युगपन्निध्यातृबोद्धृस्फुटं
विश्वं स्वाभिनिवेशसौम्यमसमानंदैकसंवेदनं ।
स्वस्वादक्षसमक्षपाक्षयतमस्थामावगाहोत्तमं
भात्वत्रागुरुलघ्वनतगुणमप्यष्टात्मसैद्धं वपुः ॥ १७ ॥

कहे गये सिद्धचक्रका उद्धार करके " ओं " इत्यादि मंत्रका जाप करे ॥ १४ ॥ यह लघुसिद्धचक्रका उद्धार हुआ । शेप विधि पहलेकी तरह करें । फिर सिद्ध प्रतिमाका जलसे भरे हुए घड़ोंसे अभिषेक कर आठ गुणोंको स्मरण करता हुआ तिलक विधि करे ॥ १५।१६ ॥ आकारशुद्धि करके " यस्यानुग्रह " इत्यादि पूर्व कथित सिद्ध स्तोत्रका पाठ करके प्रति-

एतत्पठन्नर्घ्यं समन्तात् परामृशेत् । गुणारोपणम् । ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः अत्रागच्छ । ओं ह्रीं तिष्ठ २ ठ ठ स्वाहा । ओं ह्रीं मम सन्निहितो भव २ वषट् स्वाहा । आह्वानादिमन्त्र । अ सि आ उ सा सिद्धाधिपतये नमः । तिलकमन्त्र ।

ततश्च मुखवस्त्रादिविधानं कृत्वा वदेत् क्रियाम् । सिद्धभक्त्यैवमाचार्याद्यर्चान्यासेऽपि कल्पयेत्॥

ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रं ददामीति स्वाहा । मुखवस्त्रमन्त्र । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये मुखवस्त्रमपनयामीति स्वाहा । श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः । ओं ह्रीं सिद्धाधिपतये प्रबुध्यस्व २ व्यातृजनमनांसि पुनीहि पुनीहीति स्वाहा । नेत्रोन्मीलनमत्र. । ओं ह्रीं सिद्धाधिपति तीर्थोदकेनाभिषिञ्चामीति स्वाहा । तीर्थोदकस्नपनम् । ओं ह्रीं पुंड्रेक्षुरसप्रवरनैराभिषिञ्चामीति स्वाहा । रसस्नपन । ओं ह्रीं हैय्यगवीनघृतेन स्नपयामीति स्वाहा । घृतस्नानम् । ओं ह्रीं धारोष्णगव्यक्षीरपूरेणाभिषुणोमीति स्वाहा । दुग्धस्नपन । ओं ह्रीं जगन्मंगलेन दध्ना स्नपयामीति स्वाहा । दधिस्नपन । ओं ह्रीं दिव्यप्रभूतसुरभिकषायद्रव्यकल्ककृतानुद्वर्तनं करोमीति स्वाहा । उद्वर्तनादिविधानम् । ओं ह्रीं विचित्रपवित्रमनोरमफलैर-

---

माके ऊपर पुष्पांजलि क्षेपण करे । उसके बाद "आकारे" इत्यादि बोलकर प्रतिमाको चारोंतरफसे स्पर्श करे ॥ २७ ॥ "ओं ह्रीं" इत्यादि मन्त्रसे आवाहनादि करे "असि" इत्यादि तिलकमन्त्रसे तिलकदान विधि करे । उसके बाद मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन सिद्धभक्ति आदि विधी करे । इसीतरह आचार्य आदिकी भी प्रतिमास्थापनामें पूर्वकथित

वतारयामीति स्वाहा । फलावतारणं । ओं परमसुरभिद्रव्यसदर्भपरिमलगर्भतीर्थाम्बुसपूर्णसुवर्णकुम्भाष्टकतो-
येन परिषेचयामीति स्वाहा । कलशाष्टकाभिषेकः । एष मन्त्र आकरशुद्ध्यभिषेकेपि योज्य । ओं ह्रीं
परमसौमनस्यनिबधनगंधोदकपूरेणाप्लावयामीति स्वाहा । गंधोदकस्नपनमन्त्रः । ओं ह्रीं असि आ
उ सा सिद्धाधिपतिं लोकोत्तरनीरधाराभिः परिचरामीति स्वाहा । तीर्थोदकमन्त्रः । एवं हरिचंदनेप्यूह्यं
मन्त्राष्टकम् । हरिचदन इव कलमक्षतपुंजाष्टकमंदारप्रमुखकुसुमदामार्द्धे विविधसान्नायघनसारदशामुख
प्रदीपितदीपकाष्टकसुगधद्रव्यसयोजनाविशेषसमुत्थध्वजधूपघटाष्टकबन्धुरगधवर्णरसप्रीणितनहिरंत करणम-
हाफलस्तवकाष्टकजलादियज्ञा दूर्वादर्भदधिसिद्धार्थादिमगमद्रव्याविनिर्वर्तितमहार्घसत्कारोपचारैः परिचरा-
मीति स्वाहा । जलाद्यर्घोतसपर्याविधानम् । तत क्रिया कृत्वाभिमतप्रार्थनार्थमिद पठित्वा पुष्पाजलिं
प्रकल्पयेत् ।

आयुर्द्राघयतु व्रतं दृढयतु व्याधीन् व्यपोहत्वयं
श्रेयांसि प्रगुणीकरोतु वितनोत्वासिंधु शुभ्रं यशः ।
शत्रून् शातयतु श्रियोभिरमयत्वश्रांतमुन्मुद्रय-
त्वानंदं भजतां प्रतिष्ठित इह श्रीसिद्धनाथः सताम् ॥ १९ ॥

क्रिया ५२ ॥ १८ ॥ " ओं " इत्यादि मन्त्र बोलकर मुखोद्घाटन नेत्रोन्मीलन जलादि अभि-
षेक पूजा आदि क्रिया करनी चाहिये । उसके बाद इष्ट प्रार्थनाके लिये " आयु " इत्यादि

ततश्च पूर्ववाह्विसर्जनादिकमनुतिष्ठेत् इति सिद्धप्रतिष्ठाविधानम् । अथाचार्यप्रतिष्ठाविधानम् ।

गणभृद्वलयं वेद्यामभ्यर्च्य स्नपयेच्च तम्। पंचाचारान स्मरेत्पंच फलशांश्चतुरः पुनः ॥ २० ॥
चतुरोत्रानुयोगांश्च .. . .   निर्त्रीणि तन्मनाः ॥ २१ ॥
ततो महर्षिस्तवनं पठित्वा चतुरो विधीन्। कृत्वा तिलकयेत्साक्षात्सूर्यादीन प्रतिमा स्मरन्॥२२
मुखवस्त्रादिकर्माणि विधाय च त्रिधिं ततः। क्रियाकाण्डोदितां कृत्वा यथावद्विधिमाचरेत् ॥२३॥

अथ गणधरवलयमनुशिष्यते । पूर्वं षट्कोणचक्रे क्ष्मावीजाक्षर लिखेत् तदुपरि अर्हं इति न्यसेत् तस्य दक्षिणतो वामतश्च ह्रीं विन्यसेत् पीठादध श्रीं न्यसेत् । तत ओं अ सि आ उ सा स्वाहेत्यनेन श्रीकारस्य दक्षिणतः प्रभृत्युत्तरतो यावत्प्रादक्षिण्येन वेष्टयेत् । तत कोणेषु षट्स्वपि मध्ये अप्रतिचक्रे फट्‌िनि मध्येन स्थापयेत् । तथा कोणांतरालेषु विनकाय स्वाहेति पञ्चीनानि झौंकारोत्तराणि अपसव्ये

श्लोक पढ़कर पुष्पांजलि क्षेपण करे ॥ १९ ॥ फिर पूर्वकी रीतिसे विसर्जन आदि करे। यह सिद्धप्रतिमाकी प्रतिष्ठा विधि कही गई ॥ अब आचार्यप्रतिष्ठाकी विधि कहते हैं । बुद्धिमान गणधर वलय (चक्र) को वेदीमें स्थापन कर पांच कलशोंसे स्नपन करे और दर्शनाचार आदि पांच आचारोंको स्मरण करता हुआ उस चक्रकी पूजा करे ॥ २० ॥ फिर चार अनुयोगोंका चिंतवन करके महर्षिस्तवन पढ़के तिलकादि क्रिया करे ॥ २१।२२ २३ ॥

विन्यसेत् । तद्बहिर्वलय कृत्वाष्टसु पत्रेषु णमो जिणाण, णमो, ओहिजिणाण णमो कुट्ठबुद्धीण, णमो वीजबुद्धीण, णमो पदाणुसारीण—इत्यष्टौ पदानि क्रमेण लिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वत् षोडशपत्रेषु णमो सभिण्णसोदाराणं, णमो पत्तेयबुद्धाण, णमो सयं बुद्धाण, णमो बोहियबुद्धाण, णमो उजुमदीण, णमो विउलमदीण, णमो दसपुव्वीण, णमो अट्ठगमहाणिमित्तकुसलाण, णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताण, णमो सिज्जाहराण, णमो चारणाण, णमो समणाण, णमो आगासगामीण, णमो आसिविसाणं, णमो दिट्ठिविसाण—इति षोडशपदानि विलिखेत् । ततस्तद्बहिस्तद्वच्चतुर्विंशतिपत्रेषु णमो घोरगुणपरक्कमाण, णमो घोरगुणवभयारीणं, णमो आमोसहिपत्ताण, णमो खेल्लोसहिपत्ताण, णमो जल्लोसहिपत्ताण, णमो विडौसहिपत्ताण, णमो सव्वोसहिपत्ताण, णमो मणवलीण, णमो वचिवलीण, णमो कायवलीण, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीण, णमो महुरसवीण, णमो अमियसवीण, णमो अक्खीणमहाणसाण, णमो वड्ढमाणाण, णमो लोए सव सिद्धायदणाण, णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीण । चतुर्विंशतिपदान्यालिख्य ह्रींकारमात्रया त्रिगुण वेष्टयित्वा क्रौंकारेण निरुद्धय बहि पृथ्वीमंडलं ह्रीं श्रीं अर्हं असि आउसा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा । अनेन मध्यपूजा विदध्यात् । णमो अरहताण णमो जिणाण इत्यादि ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौ ह्रः असि आउसा अप्रतिचक्रे झ्रौं

" अथ " इत्यादिसे कहे गये गणधरचक्रको बनावे । और पूर्वकी तरह आकरशुद्धि आदि क्रिया करके " निर्वेद " इत्यादि महर्षि स्तवन पढता हुआ आचार्य आदिकी प्रतिमाको

ह्रौं स्वाहा। एतेष्ट चत्वार.। अथ पूर्ववदाकरशुद्ध्यादिक कृत्वा निर्वेदेत्यादि महर्षिस्तवन पठ-
न्नर्चा समतात्परामृश्य गुणारोपण कुर्यात्। ओं ह्रू णमो आइरियाण आचार्यपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट् ओं ह्रू तिष्ठ २ ठ २, ओं ह्रू मम सन्निहितो भव २ वषट्। तथा ओं ह्रीं णमो उवज्झायाण उपाध्यायपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ सवौषट् ओं ह्रौं तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रौं सन्निहितो भव भव वषट्। तथा ओं ह्र णमो लोए सव्वसाहूण साधुपरमेष्ठिन्नत्र एहि २ संवौषट्। ओं ह्र तिष्ठ २ ठ ठ, ओं ह्रः सन्निहितो भव २ वषट्। इत्याचार्यादीनामावाहनादिमन्त्रा। ततश्च ओं ह्रू णमो आइरियाण धर्माचाराधिपतये नमः इत्यादिमन्त्रै सिद्धप्रतिमावत्तिलकादिविधीन् विदध्यात्। एवमुपाध्यायसाधुपरमेष्ठिनोरपि क्रम कल्पयेत्॥ इत्याचार्यादिप्रतिष्ठाविधानम्। अथ श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम्।

वेद्यां सारस्वत्य यत्रं विलिख्य तस्य शोधनम्। अनुयोगैरिवाचार्यश्चतुर्भिस्तीर्थवार्घटैः॥२४

यत्रेर्चा न्यस्य तां स्तुत्वा कृत्वा कर्मचतुष्टयम्।... ..त यन्मूलमंत्रेणान्यं विधिं सृजेत्२५

स्पर्श करके उसमें गुणोंका स्थापन करे। फिर "ओं ह्र" इत्यादि बोलकर आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुका आवाहन आदि करे। उसके बाद "ओं ह्र" इत्यादि मंत्रसे सिद्ध प्रतिमाकी तरह तिलक आदि विधि करे। यह आचार्य आदि धर्मगुरुकी प्रतिष्ठाविधि हुई॥ अब सरस्वतीकी प्रतिष्ठा विधि करते हैं। प्रतिष्ठाचार्य वेदीमें सारस्वत यंत्र लिखकर उसको सामनेके दर्पणमें प्रतिबिंबित कर चार जलके घडोंसे अभिषेक करे। उस यंत्रमें सरस्वतीकी मूर्तिको रख स्तुतिपूर्वक पूजा करे तथा सरस्वतीमंत्रका जाप करे॥ ॥ २४। २५॥

अथ सारस्वतमंत्रमनुशिष्येत् । पूर्वं कर्णिकाया ह्रींकारमालिखेद्वाह्ये हकार सविसर्गसकार च लिखित्वा ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नम. इत्यनेन मूलमन्त्रेण वेष्टयेत् । तद्बहिः पूर्वादिक्रमेण चतुर्षु ओं वाग्वादिन्यै नम., ओं भगवत्यै नमः, ओं सरस्वत्यै नमः, ओं श्रुतदेव्यै नम. । इति चतुराख्या लिखेत् । तद्बहिरष्टसु पत्रेषु ओं नदायै नम., ओ स्तभिन्यै नम॰ इत्यादि चाष्टौ देवीर्लिखेत् । तद्बहिश्च षोडशपत्रेषु ओं रोहिण्यै नम इत्यादि मत्रैः षोडश विद्यादेवी स्थापयेत् । तत पूर्वाद्यष्टदिक्षु इन्द्राय स्वाहेत्यादिमन्त्रैरष्टौ दिक्पालान विन्यसेत् । पूर्वेशानदिशोश्चांतराले ओं अधोनागेभ्य॰ स्वाहेति नागान् विन्यसेत् । पश्चिमदिक्पालस्योपरिष्टाच्च ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नम इति परमब्रह्म प्रतिष्ठयेत् । इन्द्राद्धश्च ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नम इति वागधिदेवता स्थापयेत् । ततस्त्रिर्मायामात्रया क्रौंकारेण निरुध्य तद्बाह्येच्च बहि पृथ्वीमडल विलिखेत् इति । अथ ओं ह्रीं श्रुतदेव्य॰ कलशस्नपन करोमीति स्वाहा । इत्यनेन कलशानभिमन्त्र्याकर शोधयेत् । ततो बोधेनेत्यादि श्रुतदेवीस्तवन पठित्वा प्रतिमोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

वारह अंग गिज्जा दंसणतिलया चरित्तवच्छहरा ।
चोदसपुव्वहराणं ठावे दव्वाय सुयदेवा ॥ २६ ॥

अब सरस्वतीयत्रका उद्धार दिखलाते हैं । पहले काणका (बीचका भाग) में "ह्रीं" लिखे उसके बाहर "हं स" लिखकर "ओं ह्रीं श्रीं वद २ वाग्वादिनि भग-

आचारं शिरसि सूत्रकृत् वक्रा तु कंठिका । स्थानेन समवायागव्याख्याप्रज्ञप्तिदोलताम्॥२७
वाग्देवतां ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तनी । अंतकृद्दशसन्नाभिमनुत्तरदशां गतः ॥ २८ ॥
सुनितवा सुजघना प्रश्नव्याकरणश्रुतात् । विपाकसूत्रदृग्वादचरणांबरां ? ॥ २९ ॥
सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दश विभूषणाम् । तावत्प्रकीर्णकोदीर्णचारुपत्रांकुरश्रियम् ॥ ३० ॥
आप्तदृष्टप्रवाहां तद्द्रव्यभावाधिदेवताम् । परब्रह्म मथादृशां स्याद्युक्ति भुक्तिमुक्तिदाम् ॥३१॥
सर्वदर्शनपाखंडदेवदैत्यं खगार्चिता । जगन्मातरमुद्धर्तुं जगदत्रावतारयेत् ॥ ३२ ॥

ऽति सरस्वति ह्रीं नमः " इस सरस्वतीमंत्रको चारों तरफ वेढे । उसके बाहर पूर्व आदि दिशाके क्रमसे चार पत्तोंपर " ओं वाग्वादिन्यै नमः " इत्यादि चारोंको लिखे । उसके बाहर आठों पत्तोंपर " ओं गंगायै नमः " इत्यादि आठ देवियोंको लिखे । उसके बाहर सोलह पत्तोंपर " ओं रोहिण्यै नमः " इत्यादि सोलह विद्यादेवियोंको लिखे । उसके बाद पूर्व आदि आठ दिशाओंमें " इन्द्राय स्वाहा " इत्यादि मंत्रोंसे आठ दिक्पालोंको स्थापन करे । पूर्व और ईशान्य दिशाओंके बीचमें " ओं अधो नागेभ्यः स्वाहा " लिखकर नागकुमारकी स्थापना करे । पश्चिमदिशाके दिक्पालके ऊपर " ओं ऊर्ध्वब्रह्मणे नमः " ऐसा लिखकर परमब्रह्मकी स्थापना करे । इसके नीचे " ओं ह्रीं मयूरवाहिन्यै नमः " लिखकर सरस्वती देवीकी स्थापना करे । उसके बाद तीनबार ह्रींकारसे तथा क्रों से वेढकर बाहर पृथ्वीमंडल लिखे ॥ फिर " ओं नि " इत्यादि मंत्रसे कलशोंको मंत्रितकर

ओं अर्हन्मुखकमलवासिनि पापानि क्षय कर श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वालिते सरस्वति मम पापं हन २ क्षा क्षीं क्षू क्षौ क्ष क्षीरवरधवले अमृतसभवे व वं हु स्वाहा। एतत्पठन् प्रतिमाया अग-प्रत्यगपरामर्शं कुर्यात्। गुणारोपण। ओं ह्रीं श्रीं अत्र एहि २ सवौषट्, ओं ह्रीं तिष्ट २ ठ ठ, ओं ह्रीं सन्निहितो भव वषट्। आवाहनादिमन्त्र'। ततो मूलमन्त्रेण तिलक दत्वा पूर्ववदाधिवासनाविधीन विदध्यात्।

शुभे शिलादावुत्कीर्य श्रुतस्कधमपि न्यसेत्। ब्राह्मीन्यासविधानेन श्रुतस्कंधमिह स्तुयात् ३३
सुलेखकेन संलिख्य परमागमपुस्तकम्। ब्राह्मीं वा श्रुतपंचम्यां सुलग्ने वा प्रतिष्ठयेत् ३४

आकरशुद्धि करे। उसके बाद " बोधेन " इत्यादि श्रुतदेवीका स्तवन पढकर प्रतिमाके ऊपर पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे। उसके बाद " बारह " इत्यादि सात श्लोक तथा " ओं अर्ह " इत्यादि मत्र बोलकर सरस्वतीप्रतिमाके अगोका स्पर्श करें ॥ २६ से ३२ तक ॥ फिर गुणोका स्थापन करे'। उसके बाद " ओं " इत्यादि मत्र बोलकर आवाहन आदि करे। उसके बाद मूलमत्रसे तिलक देकर पूर्वरीतिके अनुसार अधिवासना आदि क्रियाओंको करे। उत्तम शिला आदिमे सरस्वतीकी मूर्ति खुदवाकर स्थापना करके स्तुति करे ॥ ३३ ॥ अथवा परमागमके शास्त्रोंको अच्छे विद्वान् लेखकसे लिखवाकर श्रुतपंचमीके दिन शुभ लग्नमे सरस्वतीप्रतिष्ठा करे ॥ ३४ ॥

अत्र त्वाकारशुद्ध्यादिविधिमादर्शविंविते । कुर्यादिति श्रुतस्कंधं स्तुयात्सूत्रोदित स्मरेत ॥३५॥
आचार्यादिगुणान् शस्य सतां वीक्ष्य यथायुगम्।गुर्वादेःपादुके भक्त्या तन्न्यासविधिना न्यसेत्
घटयित्वा जिनगृहे तत्प्रतिष्ठामहोत्सवे । निषेधिकां प्रतिष्ठाय रक्षकांगो जनाव्रनौ ॥ ३७॥
नीत्वा निवेशयेदत्र पठित्वाराधनास्तवम् । ध्यायेत् प्रसिद्ध संन्यासं समाधिमरणादिषु॥३८
वहिर्वाथ निर्माप्य ता स्वस्थाने निवेशिताम्। स्वयं जप्त्वा प्रियं वार्हत्प्रतिष्ठातिलकक्षणे॥३९
माप्य तिलकं तत्र गत्वा शेषविधिं स्वयम्।कुर्यादिद्रः सः ततः संघः कुर्याद्यथागमम् ४०
तत्र वा प्रतिष्ठोक्तविधिं सर्वं समासतः । कृत्वा प्रतिष्ठयेल्लग्ने तां वा वीरशिवक्षणे ॥ ४१ ॥
इति श्रुतदेवतादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ यक्षादिप्रतिष्ठा ।

यहांपर अभिषेक आदि क्रिया दर्पणमें प्रतिबिंबित करके करनी चाहिये । इस प्रकार जिनसूत्रकथित रीतिसे श्रुतस्कंधकी पूजा करे ॥ ३५ ॥ आचार्य आदिके गुणोंकी स्तुति करके गुरुकी पादुका (चरणयुगल) बनवाके उनकी स्थापना करे ॥ ३६ ॥ जिनमंदिरमें एक समाधिकी जगह बनावे वहां गुरुकी पादुकाओंको स्थापन करके उनके गुणोंका तथा समाधिमरणका चिंतवन करे ॥ ३७ । ३८ ॥ ३९ ॥ वहांपर तिलक आदि विधि वह इंद्र आप भी करे तथा अन्य श्रावकोंसे शास्त्रानुसार करावे ॥ ४० ॥ उस जगह यदि संक्षेप विधि करनी हो तो आगमके अनुसार सरस्वती आदिकी प्रतिष्ठा गुरुप्रतिष्ठाके समय तथा महावीर प्रभुके मोक्षकल्याणके दिन

यक्षादयो जिनार्चाकमस्तकास्तत्प्रतिष्ठया । प्रतिष्ठेयास्ततोन्येषा प्रतिष्ठाविधिरुच्यते ॥ ४२॥
अव्युत्पन्नदृशां शातक्रूरैहिकफलांश्च ते। त   प्रकाशार्थं मंत्रवादे स दर्शितः ॥४३॥
सत्पुष्पमंडपे रात्रौ पचतीर्थजलोक्षिते । यक्षादिप्रतिबिंबे   .धिवासयेत् ॥ ४४ ॥
अर्थों ह्रीं क्रों मुख स्थाप्यमावाहनादिगर्भितम् । संवौषट् होमपर्यंतमंत्रं पद्मवरे लिखेत्४५
प्रकीर्णचूर्णे दर्भेण वेदिपृष्ठे तथाष्टसु। आदिदेर्वातले ओंकारेषु चतुर्ष्वतः ॥ ४६ ॥
तेजोमायादिहोमांतान् लिखेत्पचदश क्रमात् । तिथिदेवान् ग्रह   .   पुरान् ॥ ४७ ॥
आयुधान्यष्ट तुर्ये तु पंचमं भूपरे लिखेत् । पत्रमंडलमभ्यर्च्य विधिवत्तं प्रतिष्ठयेत् ॥ ४८ ॥

ओं ह्रीं क्रौं सुवर्णवर्णवृषभवाहनपरशुफलाक्षमालावरदानांकितचतुर्भुजवृषचक्रधर्मचक्राळकृ त-मस्तकगोमुखयक्षाय सवौषट् स्वाहेति मत्र कर्णिकायामालिख्य तद्बहिरष्टसु पत्रेषु ओं ह्रीं क्रो श्रियै

शुभलग्नमे करे ॥ ४१ ॥ इसतरह श्रुतदेवताकी प्रतिष्ठा विधि समाप्त हुई । अब यक्ष आदिकी प्रतिष्ठा कहते हैं । यक्ष आदिक देव भगवानकी प्रतिमाके रक्षक होते हैं इसलिये उनकी मूर्तिकी भी प्रतिष्ठा करे ॥ ४२ ॥ जो अज्ञानी है वे " शात क्रूर इस लोकके फलके देनेवाले है " ऐसा समझकर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते है यह कथन मत्रवाद शास्त्रोमें दिखाया गया है ॥ ४३ ॥ यक्षादि देवोकी प्रतिष्ठा पाच स्थानोंके जलसे प्रतिबिंबका अभिषेककर रात्रिमे करनी चाहिये ॥ ४४ ॥ " अर्थों " इत्यादि चार श्लोकोंमें कथित क्रियासे आवाहन आदि करे ॥ ४५ से ४८॥"ओ"

मंत्रोपद स्वाहेत्यादि दिक्कुमारीमन्त्रानष्टौ तद्बहिर्वलयात, ॐ ह्रीं क्रों यक्षवैश्वानररक्षो नहतपन्नगासुरकुमारसनिश्वविश्वमालिनमरौरोचनमहात्रियमारोविश्वेश्वरपिंडभुगभिधानपञ्चदशतिथिदेवान् संस्थापयामि स्वाहेति तिथिदेवा. पञ्चदश तद्बहिर्वलयात, ॐ ह्रीं क्रों सूर्यसोमागारकसौम्यगुरुभार्गवशनिराहुकेतून् संस्थापयामि स्वाहेति ग्रहान्वाक्षव तद्बहिर्मण्डलात, ॐ ह्रीं क्रों किन्नरेंद्रकिंपुरुषेंद्रमहोरगेंद्रगंधर्वेंद्रयक्षेंद्रराक्षसेंद्रभूतेंद्रपिशाचेंद्रान् संस्थापयामि स्वाहेति विलिखेत् । एवमण्डलं वर्तयित्वा स्वस्वमंत्रैर्यक्षादिदेवान् जलगन्धादिभिरभ्यर्च्य कलशाष्टकादिभिर्भूषयेत् । अथ स्नपनमण्डपे तां प्रतिमामानीय दर्भप्रस्तरे शालिप्रस्तरे वा स्थापयित्वा क्रमेण स्नापयेत् । ततस्तत्र वेदिकायां नवकलशान् सर्वालंकारोपेतान् सर्वौषधिमिश्रशुद्धयत्नमन्त्रान्विततीर्थजलपरिपूर्णान् शालिप्रस्तरोपरि लिखितमायाबीजं सर्वलेख्य तत्पश्चिमभागे स्नपनपीठं स्थापयित्वा प्रक्षाल्यालंकृत्य तदुपरि भुवनाधिपतिं लिखित्वा अक्षतपुष्पदर्भान् विन्यस्य तत्प्रतिमां तत्र संस्थापयित्वा पञ्चोपचारविधिनाभ्यर्च्य गृहनाष्टकलशैर्मंत्रपूर्वकमभिषिच्य चतुर्नीराजनं कृत्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेदेकादशमभिषेकं गन्धकेशनामृतमंत्रेण कुर्यात् ।

तेजोपाद्यादिकाख्यानं क्रियान्वितम् । तदात्पल्लवसंयुक्तं करोभ्यंतपदं स्मरेत् ॥ ४९ ॥

इत्यादिमें कथित विधिसे पूजा करे । अमृतमंत्रसे यक्षप्रतिमाका अभिषेक करे । "तेजा" इत्यादि बोलकर "अथैत" इत्यादिमें कही हुई विधिसे स्थापना करे ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार

अथैवमाकारशुद्धिं विधाय मूलवेद्या नवधौतवस्त्रसदर्भाक्षतपुष्प प्रस्तीर्य तत्र तत्प्रतिमा निवेश्याभ्यर्च्य काण्डाग्रदूर्वाग्रेण प्रोक्षण विधाय शांतिहोम यक्षमन्त्रेण कृत्वा पुण्याह घोषयित्वा पूर्वोक्तविधिना सुमुहूर्ते तिलक दद्यात् ततोऽधिमानादिविधिं विधाय वस्त्राभरणमाल्यादिभिरभ्यर्च्य निसर्जनादिक कुर्यात् । तत प्रभृति च तानि सपूजयेत् ।

एष एव च शेषाणां यक्षाणां स्थापनाविधिः । यक्षीणा च मितः भेदाश्रयौ भवेत् ५०
क्षेत्रपालं कर्णिकायां मन्त्रपनायुधादिभिः । सचूर्णवेधामालिख्य पत्रेष्वष्टसु संलिखेत् ॥५१॥
समंत्रान् दिक्पतीनिंद्रादधोभागानुपर्यपि । वरुणस्य लिखेत्सोमं मायोर्वीभ्यां च वेष्टयेत् ५२
तत्पश्च पूजयेद्गंधपुष्पधूपाक्षतादिभिः । अथ तत्प्रतिमां रात्रिमुषितां दर्भसंस्तरे ॥ ५३ ॥
तीर्थांबुस्नापितां तत्र निवेश्यारोप्य तद्गुणान् । आवाहनादि कृत्वा च सूत्रयुक्त्या प्रतिष्ठयेत् ५४

ओं ऱ्हा क्रौं घोराधकारसप्रभमण्डलगदाधारणव्यग्रोग्रचतुर्भुज अत्र क्षेत्रपालाय संवौषट् स्वाहेति कर्णिकायामालिख्य पूर्वादिदलेष्वष्टसु । ओं ऱ्हीं इंद्राय स्वाहेत्यादिक्रमेण दिक्पालान संस्थाप्य इंद्राध ओं ऱ्हीं नागेभ्य. स्वाहेति वरुणादूर्ध्वं च ओं ऱ्हीं सोमाय स्वाहेति विन्यस्य बहिर्मायामात्रया नि प-रिक्षिप्य क्रौंकारेण निरुध्य भूमण्डलेन वेष्टयेदिति मण्डलवर्तनम् ।

यक्षी क्षेत्रपाल वरुण आदिकी प्रतिष्ठा "एष" इत्यादि पांच श्लोकोंमे कथित रीतिसे

इत्यनुर्ध्वभुजा धृतासिफलकः मन्येन राह्वासितं
श्वानं सिंहसमं करेण भयदामन्येन विभ्रद्गदाम् ।
नागालंकरणः किलाशु डमरुकारावोल्वणांघ्रिक-
सेवत्वरमत्रयोस्त्यधिकृतः क्षेत्रे स साक्षादयं ॥ ५५ ॥

ओं ह्रीं नियुक्तक्षेत्रपाल अत्रावतरावतर संवौषट् आवाहन, ओं ह्रीं अत्र तिष्ठ २ ठ २ स्थापन, ओं ह्रीं मम सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधापनम् । तत सूत्रोक्तविधिना तिलक दत्त्वा अधिवासनादिकं कृत्वा सद्वस्त्रभूषादिभिः सत्कुर्यात । इति यक्षादिप्रतिष्ठाविधानम् । अथ पत्रादिप्रतिष्ठा ।

श्रीचंदनादिवेद्यां तु पट्टादौ सम्यगुद्धृतम् । सिद्धचक्रादि सपूज्य तत्पत्रं पुष्पमंडपे ॥ ५६ ॥
मंगलद्रव्यसर्वौषधिपुनिमिश्रतीर्थवारिणि । निशासुपितमानीयं निवेश्य स्नपनमंडपे ॥ ५७ ॥
आप्लाव्य दुग्धदध्याज्यैः मागन्मंत्राभिमंत्रितैः । प्रक्षाल्य मृत्स्ना श्रीखडं तीर्थपाक्षोभिरादरात्

करे ॥ ५० से ५४ ॥ " ओं ह्रां " इत्यादि कथित रीतिसे मांडला बनावे । "इत्य" इत्यादि श्लोक तथा " ओं ह्रीं " बोलकर क्षेत्रपालका आवाहन आदि करे ॥ ५५ ॥ उसके बाद जिनशास्त्र कथित विधिसे तिलक देकर अधिवासना करके उत्तम वस्त्र आभूषणादिकोंसे सत्कार करे ॥ यह यक्षादि प्रतिष्ठाकी विधि हुई । अब तावे आदिके खुदे हुए पत्रोंकी प्रतिष्ठाविधी कहते है । चंदन आदिकी बनी हुई वेदीमे पटे पर सिद्धचक्र आदिकी पूजा करे ॥ ५६ ॥ फिर मंगलद्रव्य सर्वौषधिसे मिले हुए जलाशयके जलमें अभिषेक करे ॥ ५७।५८ ॥

पूर्वपूजितचक्राग्रे न्यस्य ध्यात्वा च तन्मयम्। तत्प्रक्षालनमादाय तत्स्थाने न्यस्य नेन तत्५९
संस्नाप्य सुमुहुर्तेंतभूतत्वे विस्तीडया । मूलमंत्र प्रजपते स्थापयेच्चंदनद्रुना ॥ ६० ॥
ततोऽभिषिंच्य सपूज्य महार्घेणाभिराध्य तत्। कुर्याच्छेपविधिर्नित्यं पूजयेच्च तदादि तत्।६१।
चित्रादिर्वा प्रतिष्ठायामपि योज्योल्पशो विधिः। स एवाकरशुद्ध्यादिविधिः कुर्यात्तु दर्पणे६२॥
अक्षादिस्थापना त्वद्य जिनादीनां न कारयेत्। प्रायो लोकः कलौ क्षुद्रः कल्पयत्यन्यथा हि ताम्
एकाशीतिपदं प्राच्यं स्थाप्यमर्हत्स्त्रभाग्रपि । लोकं जिनादि तच्चैत्यं निचिताशत्तु सस्मरेत्॥६४

एवं व्याससमासदर्शनपरं स्वोपज्ञधर्मामृत—
ग्रंथांगं जिनयज्ञकल्पमकरोदाशाधरः श्रेयसे ।

उसके बाद जिसका यन्त्र हो उसके मूलमन्त्रका जाप करे। जाप करनेके बाद अभिषेक पूर्व-क उस यन्त्रकी पूजा करे। इसतरह प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये ॥ ५९ । ६० । ६१ ॥ चित्राम आदिकी अभिपेकविधि दर्पणमें प्रतिविंवित करके करनी चाहिये ॥ ६२ अर्हंत आदि मूर्तिकी तदाकार स्थापना करनी चाहिये। क्योंकि कलियुगमें मिथ्याती पुरुष विपरीत ही कल्पना कर डालते हैं । इसलिये चौपडकी तरह मूर्तिकी अतदाकार स्थापनाका निपेध किया गया है ॥ ६३ ॥ पूर्वकथित इक्यासी पत्रोंका यन्त्र पूजाकर प्रतिमाकी स्थापना करनी योग्य है ॥ ६४ ॥ इसप्रकार विस्तारसे तथा सक्षेपसे जिनप्रतिष्ठा आदिकी

एन सम्यगधीत्य ये गुरुमुखात्नुध्वा तदर्थं क्रिया
निर्मास्यंति सुमेधसो नुभनताः भाप्स्यंति ते निर्वृत्तिम् ॥ ६५ ॥

इत्याशाधरविरचिते प्रतिष्ठासारोद्धारे जिनयज्ञकल्पापरनाम्नि सिद्धादि
प्रतिष्ठाविधानीयो नाम षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

विधिको कहनेवाले जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रंथको मुझ " आशाधरने " कल्याण होनेकेलिये किया है। जो भव्यजीव गुरुके मुखसे इसको पढकर इसकी क्रियाय करेंगे वे बुद्धिमान देवोंसे पूजित हुए परंपरासे मोक्षको पायेंगे ॥ ६५ ॥

इसप्रकार प० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प दूसरे नामवाले प्रतिष्ठासारोद्धारमें
सिद्ध आदिकी मूर्तिप्रतिष्ठाको कहनेवाला छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

ग्रंथकर्तुः प्रशस्तिः ।

श्रीमानस्ति सपादलक्षविषयः शाकंभरीभूषण-
स्तत्र श्रीरतिधाम मंडलकरं नामास्ति दुर्गं महत् ।
श्रीरत्न्यामुदपादि तत्र विमलव्याघ्रेरवालान्वया-
च्छ्रीसल्लक्षणतो जिनेंद्रसमयश्रद्धालुराशाधरः ॥ १ ॥

सरस्वत्यामिवात्मानं सरस्वत्यामजीजनत् । यः पुत्रं छाहड गुण्यं रंजितार्जुनभूपतिम् ॥२॥

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः काव्यामृतौघरसपानसुतृप्तगात्रः ।
सल्लक्षणस्य तनयो नयविश्वचक्षुराशाधरो विजयतां कलिकालिदासः ॥ ३ ॥

इत्युदयसेनमुनिना कविसुहृदा योभिनंदितः प्रीत्या ।
प्रज्ञापुंजोसीति च योभिमतो मदनकीर्तियतिपतिना ॥ ४ ॥

म्लेंच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति-
त्रासाद्विंध्यनरेंद्रदोःपरिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि ।
प्राप्तो मालवमंडके बहुपरीवारः पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः ॥ ५ ॥

आशाधरत्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौंदर्यमजर्यमार्य ।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपंचः ॥ ६ ॥

इत्युपश्लोकितो विद्वद्बिल्हणेन कवीशिना । श्रीविंध्यभूपतिमहासाधिविग्रहिकेण यः ॥ ७ ॥
श्रीमदर्जुनभूपालराज्ये श्रावकसंकुले । जिनधर्मोदयार्थं यो नलकच्छपुरेऽवसत् ॥ ८ ॥

यो द्राग्व्याकरणाब्धिपारमनयच्छुश्रूषमाणान्न कान्
सत्तर्कं परमास्त्रमाप्य नयतः प्रत्यर्थिनः कौक्षिपत् ।
चेरुः केऽस्खलितं न येन जिनवाग्दीपं पथि ग्राहिताः
पीत्वा काव्यसुधां मतश्च रसिकेष्वापुः प्रतिष्ठां न के ॥ ९ ॥

स्याद्वादविद्याविशदप्रसादः प्रमेयरत्नाकरनामधेयः ।
तर्कप्रबंधो निरवद्यविद्यापीयूषपूरो वहतिस्म यस्मात् ॥ १० ॥

सिद्ध्यंकं भरतेश्वराभ्युदयसत्काव्यं निबंधोज्ज्वलं
यस्त्रैविद्यकवींद्रमोदनमयं स्वश्रेयसेऽरीरचत् ।
योऽर्हद्वाक्यरसं निबंधरुचिर शास्त्रं च धर्मामृतं
निर्माय न्यदधात मुमुक्षुविदुषामानंदसांद्रे हृदि ॥ ११ ॥

आयुर्वेदविदामिष्टां व्यक्तुं वाग्भटसंहिताम् । अष्टांगहृदयोद्योतं निबंधमसृजच्च यः ॥ १२ ॥

यो मूलाराधनेष्टोपदेशादिषु निबंधनम् । व्यधत्तामरकोशे च क्रियाकलापमुज्ज्वगौ ॥ १३ ॥
रौद्रटस्य व्यधात्काव्यालंकारस्य निबंधनम् । सहस्रनामस्तवनं सनिबंधं च योर्हताम् ।१४।
अर्हन्महाभिषेकार्चाविधिं मोहतमोरविम् । चक्रे नित्यमहोद्योतं स्नानशास्त्रं जिनेशिनाम् ॥१५॥
रत्नत्रयविधानस्य पूजामाहात्म्यवर्णनम् । रत्नत्रयविधानाख्यं शास्त्रं वितनुतेस्म यः ॥१६॥

प्राच्यानि संचर्च्य जिनप्रतिष्ठाशास्त्राणि दृष्ट्वा व्यवहारमैंद्रं ।
आम्नायविच्छेदतमश्छिदेयं ग्रंथः कृतस्तेन युगानुरूपः ॥ १८ ॥

खाण्डिल्यान्वयभूषणाल्हणसुतः सागारधर्मे रतो
वास्तव्यो नलकच्छचारुनगरे कर्ता परोपक्रियाम् ।
सर्वज्ञार्चनपात्रदानसमयोद्योतप्रतिष्ठाग्रणीः
पापात्साधुरकारयत्पुनरिमं कृत्वोपरोधं मुहुः ॥ १९ ॥

विक्रमवर्षसपंचाशीति द्वादशशतेष्वतीतेषु ।
आश्विनसितांत्यदिवसे साहसमल्लापराख्यस्य ॥ १९ ॥
श्रीदेवपालनृपतेः प्रमारकुलशेखरस्य सौराज्ये ।
नलकच्छपुरे सिद्धो ग्रंथोऽयं नेमिनाथचैत्यगृहे ॥ २० ॥

अनेकार्हत्प्रतिष्ठाप्तप्रतिष्ठैः केल्हणादिभिः । सद्यः सूक्तानुरागेण पठित्वायं प्रचारितः ॥ २१ ॥

अलमतिप्रसंगेन ।

यास्त्रिलोक्यां जिनमंदिरार्चास्तिष्ठंति शक्रादिभिरर्च्यमानाः ।
तास्वजिनादिप्रतिमाप्रतिष्ठाः शिवार्थिनोऽनेन विधापयंतु ॥ २२ ॥

किंच ।

नंद्यात्खांडिल्यवंशोत्थः केल्हणो न्यासवित्तर ।
लिखितो येन पाठार्थमस्य प्रथमपुस्तकम् ॥ २३ ॥

इति प्रशस्तिः ।

इत्याशाधरविरचितो जिनयज्ञकल्पापरनामा प्रतिष्ठासारोद्धारः समाप्त ।

अब ग्रंथकारकी प्रशस्ति कहते हैं–" श्रीमान " इत्यादि श्लोकसे लेकर २३ तक प० आशाधरका वक्तव्य दिखलाया गया है ॥ १ से २३ ॥

इति प० आशाधर विरचित जिनयज्ञकल्प द्वितीय नामवाला प्रतिष्ठासारोद्धार समाप्त हुआ ॥

समाप्तोऽयं प्रतिष्ठापाठः ।

१ " सनिबंध यश्च जिनयज्ञकल्पमरीरचत् । त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्रं यो निबन्धालंकृतं व्यधात् ॥ १ ॥
यह श्लोक सागारधर्मामृतकी प्रशस्तीमें है ।

प्रतिष्ठासारोद्धारका परिशिष्ट ।

मत्यात्मावृतिहानिमूलविभव लब्ध्यक्षराद्यागमग्रामोद्दामवपु प्रकाडमुचिताचारादिशाखोच्चयम् ।
बाह्यश्रुत्युपशाखमुक्तिसुदल सद्युक्तिपुष्पश्रुतस्कधं स्वर्थफलाकुल घनशमच्छाय भजेभ्रच्छिदे ॥ १ ॥
पट्त्रिंशत्त्रिशतैरवग्रहमुखै. स्मृत्यादिभि सोजसा मत्यै स्वावरणक्षयोपशमस्वस्वातोत्थयात्मा यया ।
देशेनेहसि सकरव्यतिकरापोहेन वस्तूचिते योग्य द्वादशधा बहुप्रभृतिभिर्विद्यात्पुरश्चारुदृक् ॥ २ ॥

एतद्द्वय पठित्वा श्रुतस्कधस्थापनार्थे पुस्तकोपरि पुष्पाजलिं क्षिपेत् ।

लोकालोकदृश सदस्यसुकृतैरास्याद्यदर्थश्रुत निर्यात ग्रथित गणेश्वरवृपेणान्तर्मुहूर्तेन यत् ।
आरातीयमुनिप्रवाहपतित यत्पुस्तकेष्वर्पित तज्जैनेंद्रमिहार्पयामि विधिना यष्टु श्रुत शाश्वतम् ॥ ३ ॥

विधियज्ञप्रतिज्ञानाय पुस्तकोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

सर्पच्छीकरवारवारितपतद्बाधभृगव्रज निर्यत्या कनकाद्रिशृंगसदृयोभृंगारनालाननात् ।
स्वर्गगाद्युपनीतपूतसुरभिद्रव्याढ्यवार्धारया स्यात्कारजननीं जगद्विजयिनीं जैनीं यजे भारतीम् ॥४॥ जल।

---

१ यहांसे सरस्वतीदेवीकी पूजाका आरभ है । इससे पहलेका " इंद्र " इत्यादि पाठ दूसरे अध्यायमें आगया है ।

अतस्तापनिवर्हिणी बहु बहिस्तापच्छिदा शान्तिना मदामोदविधायिनीमनुपदामोदानुलानीलिना ।
स्याद्वादामृतगर्भिणीं परिणमत्कर्पूररेणुश्रिणा श्रीखण्डेन महान्यखण्डमहिमव्रव्रातयेर्हद्गिरम् ॥ ५ ॥ गंधं ।
घ्राणाप्रीणनचातुरीचणगुणोत्कर्षाविशेषोन्मिषज्जिघ्रामापरिवद्धधोरणिरणत्सारगणानोन्मदान् ।
प्रत्याख्यातमरामदान्मधुरिमोद्गारानवल्गद्रसान् । वाग्देवीमभिपूजयामि ललितान् शाल्यक्षतानक्षतान् ॥६॥

अक्षत ।

मदाराद्दिमुरद्रुमे मरसिजैर्जातीजयापाटलामल्लीनपकनीपकुंदवकुलाशोकादिजैश्च स्मितैः ।
सत्पुष्पैर्मकरन्दमेदुररजःकिंजल्कगुञ्जन्मधूगैः काचनपुष्पकादिभिरपि प्रार्चामि जैनीं गिरम् ॥७॥ पुष्पम् ।
शाल्यन्नं शुचिहेमपात्रनिचितं चाप्पायमाणं मुहुः पक्वान्नं घृतपाकखण्डतुहिनज्योपादिसंस्कारवत् ।
नानाव्यञ्जनजातमुत्कटरसं गैर्निष्णुपुण्यद्रुमे रुच्यं चारु चरूकरोमि भगवद्वाग्देवताया पुर ॥८॥ नैवेद्यम् ।
निःशेषान्धपरम्पराकृतहरिमकाधकारोदयैर्नित्यानन्दसुधाप्लुतं नयनमुत्पापूपवर्णक्रियैः ।
नत्स्याशी. स्तुतिगीतमंगलमिलद्वादित्रनादोत्त्वण श्रीवाणीं मणिदीपकैरुपचराम्यानन्दभक्तिग्रह ॥९॥ दीपम् ।
दूर्संयोगविशेषमज्जितजगद्घ्राणे कृपेयस्फुरत्पर्यायातरनारुणधल्हरीरज्यत्सिलिपत्रजे ।
नासाद्वद्वन्द्वतर्पणतपन्मृद्वश्मिपगोच्छलद्धूमन्यासकदुन्मुखैर्भगवतीं गां धूपयाम्याहतीम् ॥ १० ॥ धूपं ।
आम्रैर्लुंगिमनोरमैरुपचितैर्भ्रोचैर्गुलुन्छोचितैर्मोचैर्नवुभिरम्लुदोदयमुदैरन्यैरपीदृग्विधैः ।
ईषत्यक्वमपक्वपाकविहितोत्मुकश्यामरागैनरक्तपृथग्वर्णगणासमाश्रयैः जिनोक्ति फलै ॥ ११ ॥ फल ।

सावित्रप्रियधर्मभक्तिरसिका मेधाविनेयात्मना कर्तुं सूरिवरैरनुग्रहमिमा सर्वज्ञवाक्पद्धतिम् ।
ता न्यस्तामिह पुस्तकेष्वधिकृतश्रीदेवतागेपु वा सद्वस्त्रैः परिधापयामि विविधै सद्बोधसंसिद्धये॥ १२॥वस्त्र ।
गधाढ्योदकधारया हृदयहृद्गंधैर्विशुद्धाक्षतै रोचिष्णुप्रसवैर्विचित्रचरुभिः स्फारस्फुरद्दीपकैः ।
गीर्वाणस्पृहणीयधूमविलसद्धूपैः सुधारुक्फलस्तोमैः स्वस्तिकपूर्वकैश्च रचित श्रुत्यै ददेर्घं विभो ॥ १३ ॥

पुष्पांजलि । नमोस्तु श्रुतज्ञानभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् णमो अरहंताणमित्यादि ।

देवि श्रीचतुराननप्रभुमुखाभोजाधिवासोत्सवे ब्राह्मि ब्रह्मकलाविकाशिनि जगन्मातस्तमोनाशिनि ।
एतानस्खलितस्वभक्तिनटितानध्यास्य शश्वद्यशोविद्यायुर्वसुविक्रमैरुपचिनु ब्रह्माद्ययज्ञे धिनु ॥ १४ ॥

एतत्पठित्वा प्रणमेत् । इति श्रुतपूजाविधानम् ।

अथ गुरुपूजा[1] ।

सदा सम्यक्त्वार्के प्रतपति विधूताघतमस लसद्विश्वालोक विलसति वितार्केकनयने ।
भजंते ये वृत्तामृतमपि जने संविभजते घटत्पुष्टिं तेषामिह गणभृता मानुचरणा ॥ १५ ॥

पादुकास्थापनम् ।

इमास्तिस्रो गुप्तीरिव शमयितु कल्मषरजश्चरतीं चिच्छक्तीरिव बहिरुतान्वेष्टुमहितान् ।
सुवर्णालूनालात्सुरभिवपुराशानुपतिता लुठतीरब्धारा क्रमभुवि गुरूणा प्रणिदधे ॥ १६ ॥ जलधारा ।

---

1 अब गुरु पूजा कहते हैं ।

मुमुक्षूणा प्रेंखन्नखमणिमयूखव्यतिकराद भीक्ष्ण शीर्षाणि प्रणतिषु पुन शेखरयत. ।
भवाम्भोधे सेतून् गिरिवृषभपादान् वृषभज स्तनाम श्रीखण्डद्रवतिलकलक्ष्माविलसितान् ॥ १७ ॥ गंध ।
गुणग्रामप्रेमगुणनपरिणामोल्वणमनोवच कायोपायार्जितसुकृतपुञ्जप्रतिभटे ।
शरण्यं श्रीगुण्यप्रणयनमनाचार्यचरणानुपस्कुर्मोऽमीभिस्त्रिभिरमलशाल्यक्षतचये ॥ १८ ॥ अक्षत ।
स्वाम्युद्यद्भक्तिप्रणतसुमनोमौलिसुमन समागच्छद्भृङ्गोन्मदनमकरन्दैकरुचिभि ।
परागोद्गाराभि प्रवरसुमनोभि सुमनसा नमस्यामस्तेभ्यो मुनिपरिवृढाधीनरहत ॥ १९ ॥ पुष्प ।
निनिम्नस्वश्वासानयनरमनाह्लादनगुणैर्ययास्व स्वमादिप्रकृतिषु सुपात्रेषु निचितै ।
परत्र स्वास्वादप्रमदभरनिर्वाणमनसा क्रमेणाचार्याणा वयमुपचरामश्चरुवरै ॥ २० ॥ चरुं ।
त्रिसर्पत्कर्पूरप्रणयमधुरामोदनगनप्रियार्चि सदोहप्रमथितनम स्तोममभगे ।
प्रदीपैर्न्दीपीकृतमुकृतपाथेयमुपथा स्फुरच्छायीकुर्मश्चरणकमलान्यार्यमहताम ॥ २१ ॥ दीप ।
इमैर्भूमैर्धूमध्वजमुखपतद्धूपपटलादिसर्पद्भिः स्वैर प्रतिदिशमुपास्तिव्यसनिनाम् ।
मनांसि प्रीणद्भि सुमितमनसामाचारचतुरै स्वय भूयासमश्चरणारविन्दानि चरणान ॥ २२ ॥ धूप ।
नगच्छ्रीमानगोत्रस्वस्त्यागमपगाम्भितच्छायैः श्रेयश्चायमुदयबीज फलयितुम् ।
श्रीगोभोनाब्जमुकुलपूरप्रभृतिभि फलै स्फारीकुर्मो गणिचरणपीठाग्रधरणीम् ॥ २३ ॥ फलं ।

पयोधारात्रय्यामलयजरसैरक्षतचयैः प्रसूनैर्नैवेद्यै प्रमदभरतो दीपनिकरैः ।
वरैर्धूपोद्गारै फलचयकुशाद्यैश्च रचित विदन्मोर्घं सूरिक्रमसरसिजोत्तारुचिरम् ॥ २४ ॥ अर्घं ।
पंचाचाराचरणसचिवाचारणैकक्रियाणा स्फारस्फूर्जद्गणान्वितयशःशुभ्रिताशान्तराणाम् ।
सेत्सूरीणामिति विधिकृताराधनाः पादपद्माः श्रेयोस्मभ्यं ददतु परमानदनिःस्यंदसाद्रम् ॥ २५ ॥

एतत्पठित्वा पचांगपणामं कुर्यात । गुरव पात्वित्यादि ।

अथ प्रतिष्ठासारसंग्रहस्य श्लोकाः ।

शुद्ध शुद्धात्मसद्भाव सिद्धसज्ज्ञानदर्शनम् । सिद्ध शुद्धप्रमाणाप्तिनिरस्तपरदर्शनम् ॥ १ ॥
विश्वकर्मार्थिलोकस्य विश्वकर्मोपदेशकम् । विश्वकर्मक्षयार्थिभ्यो विश्वकर्मक्षयप्रदम् ॥ २ ॥
आदिदेव जिन नौमि विश्वकर्मजय प्रभुम् । शेपाश्च वर्धमानातजिनान् प्रवचन गुरून् ॥ ३ ॥
विद्यानुवादसत्सूत्राद्वाग्देवीकल्पतस्तत । चद्रप्रज्ञप्तिसज्ञाया सूर्यप्रज्ञप्तिसन्निकात् ॥ ४ ॥
तथा महापुराणार्थात् श्रावकाध्ययनश्रुतात् । सारं सगृह्य वक्ष्येह प्रतिष्ठासारसग्रहम् ॥ ५ ॥
तत्र तावत्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । तस्योपदेशतो वक्ष्ये विश्वकर्मप्रवर्तनम् ॥ ६ ॥
शरण्य सर्वभूताना वरागगुणभूपणम् । नत्वा जिनेश्वर वीर वच्म्याचार्येंद्रयोर्गुणम् ॥ ७ ॥

---

१ यहासे वसुनंदि आचार्यकृत प्रतिष्ठासारसग्रहका आरभ है ।

आचारादिगुणाधारो रागद्वेषविवर्जित । पक्षपातोज्झित शात साधुवर्गाग्रणीर्गणी ॥ ८ ॥
अशेषशास्त्रवित्सु प्रत्यक्ष लौकिकस्थितिः । गभीरो मृदुभाषी च स सूरि. परिकीर्तितः ॥ ९ ॥
कुलीनो जातिसपन्न कुष्ठाहीन सुदेशज । कल्याणागो रुजाहीन प्रसन्नः सकलेंद्रिय ॥ १० ॥
शुभलक्षणसपन्न सौम्यरूप सुदर्शन । विप्रो वा क्षत्रियो वैश्यो विकर्मकरणोज्झितः ॥ ११ ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा सम्यग्दृष्टिर्जितेंद्रियः । नि कषाय प्रशातात्मा वेश्यादिव्यसनोज्झित ॥ १२ ॥
उपासकव्रताचार्यो दृष्टसृष्टक्रियोऽसकृत् । श्रद्धालुर्भक्तिसपन्न. कृतज्ञो विनयान्वित ॥ १३ ॥
व्रतशीलतपोदानजिनपूजासमुद्यत । जिनवदनकर्मादिष्वनुष्ठानपर शुचि ॥ १४ ॥
श्रावकाध्ययने दक्ष प्रतिष्ठाविधिवित्सुधी । महापुराणशास्त्रज्ञो वास्तुविद्याविशारद ॥ १५ ॥
एवगुणो महासत्त्व प्रतिष्ठाचार्य इष्यते । नचार्थार्थी न च द्वेषी भ्रष्टलिंगी कल्कवान् ॥ १६ ॥
नेव पाखडिपुत्रो वा देवद्रव्योपजीविक । नाधिकागो न हीनागो नातिदीर्घो न वामन ॥ १७ ॥
न निकृष्टक्रियावृत्तिर्नातिवृद्धो न बालक । गीतवाद्योपजीवी नो भाटो वैतालिको नट ॥ १८ ॥
उन्मत्तो ग्रहग्रस्तो वा भोजने पक्तिवर्जित । गर्भाधानादिसंस्कारैर्विहीनो नातिमोहवान् ॥ १९ ॥
ज्ञाता उपासकाध्ययने न ग्रपो न महाव्रती । शान्वदः कुलजातोपि वर्जनीयस्तथाविध ॥ २० ॥
एव समासत प्रोक्त प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् । प्रतिमाद्रव्यशुद्धि भणिष्यामो यथागमम् ॥ २१ ॥

यदि मोहात्तयाभूत' प्रतिष्ठा कुरुते तदा । पुर राष्ट्र नरेंद्रश्च प्रजा सर्वा विनश्यति ॥ २२ ॥
न कर्ता फलमाप्नोति नापि कारयिता स्वकम् । अथोक्तलक्षणापेतो यदि पूजयते त्वमुम् ॥ २२ ॥
प्रशस्तलक्ष्मा यदि पूजयेत पुमान् । जिनेंद्रचद्रार्चितपादपकजम् ।
पुर च राष्ट्र च नृपश्च वर्धते स्वय जन. कारयितानुपगतः ॥ २४ ॥
अथोक्तलक्षणोपेत' प्रतिष्ठाचार्यसत्तमः । जलमत्रव्रतस्नान त्रिसंध्यं वंदना भजेत् ॥ २५ ॥

इति श्री वसुनंदिसैद्धांतविरचित-प्रतिष्ठासारसंग्रहे प्रथमः परिच्छेदः ।

---

१ यहांतक ही लिखी पुस्तकोंमें मिलता है इसलिये आवश्यक समझकर अंतमें लगाया गया है ।

श्रीप्रतिष्ठासारोद्धारकी विषयसूची ।

विषय	पृ सं
इंद्रकर स्तुतिपूर्वक किया गया ताडव नृत्य	९९
मूलवेदीमें प्रतिमाका निवेशन तथा जिनमातृस्नपन	९९
प्रभुकेलिये भोग उपभोगकी सामग्रीका इंद्रकर किया गया प्रबंध	१००
तपकल्याणका विधान, उसमें कारण वश भगवानको वैराग्य होना तथा लौकांतिक देवोंको आकर स्तुतिकरना	१०१
पालकीमें बैठाकर दीक्षा लेनेको वनको लेजाना	१०२
वहांपर दीक्षावृक्षोंका स्थापन तथा स्वयं दीक्षा ग्रहण करना	१०२
केश लोंच आदि क्रिया और उसी समय चौथे ज्ञानको प्रगट होनेका विधान	१०३
तिलकदानविधि	१०३
संस्कारमालारोपण विधि	१०६
मंत्रन्यासविधि	१०७
मुखोद्घाटनविधि	१०८
अधिवासन	१११
केवलज्ञान कल्याणका स्थापन	११२
श्रीमुखोद्घाटन	११२

विषय	पृ. सं
नेत्रोन्मीलन क्रिया	११२
गुणोंका आरोपण	११३
केवल ज्ञानके समय होनेवाले दस अतिशयोंका स्थापन	११३
समवसरणकी स्थापनाका विधान	११४
देवकृत चौदह अतिशयोंका स्थापन	११४
आठ महाप्रातिहार्योंका स्थापन	११५
अर्हंतदेवका साक्षात्करण	११६
मोक्षकल्याणककी स्थापना	११७

पांचवा अध्याय ॥ ५ ॥

विषय	पृ. सं
अभिषकविधि	११७
सब देवोंके विसर्जनका विधान	११८
परब्रह्म श्रीअर्हंतदेवका ध्यान शांतिधारा	११८
पुण्याहवाचन अर्थात् राजा आदिक सबके कल्याण होनेकी प्रार्थना	११८
जिनालयकी प्रदक्षिणा	१२१
यजमानको प्रतिष्ठाचार्यका सत्कार करना	१२१
प्रतिष्ठाचार्यको आशीर्वाद देना	१२१
प्रतिष्ठाचार्यको गुरुके पास परदीक्षाका लेना	१२३
समाप्तीकी विधि यजमानको करना	१२३

पण्डितप्रवर श्रीआशाधर विरचित

प्रतिष्ठासारोद्धार

(संक्षिप्त भाषाटीकासहित)

समाप्त ।